प्रो० प्रेमलता शर्मा

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

निवेदिका: डॉ० श्रीमती अर्चना दीक्षित

प्रो० प्रेमलता शर्मा

पंजाब के अति संस्कारी परिवारमें जन्मी, वैष्णव संस्कारोमें पली, बढी अत्यंत मेधावी कन्या, अनुशासनबद्ध जीवन शैली, असाधारण कर्मठता एवं अत्यंत लगनसे विद्या के उच्चतम शिखर पर पहुँची । संयोग से आपको उत्तमोत्तम गुरुजनोंसे शिक्षा प्राप्त करनेका सुअवसर मिला । ज्ञानकी नगरी 'काशी' आपकी कर्मस्थली बनी । आपने संगीत शास्त्राध्यापनकी प्राचीन विशृंखल परंपरा पुनर्जीवित की एवं देशको अनेक संगीतशास्त्री दिये । जीवनभर संगीत एवं संगीतशास्त्रकी सेवाव्रती प्रो० प्रेमलता शर्मा ने अनेकानेक प्राचीन ग्रंथोंके पाठ संशोधन, संकलन एवं अनुवाद तैयार किये जो देशी विदेशी जिज्ञासुओं के लिये अति उपयोगी सिद्ध होंगे ।

विविध विषय विदुषी प्रो० प्रेमलता शर्मा व्यक्तित्व एवम् कृतित्व

निवेदिका
डॉ० श्रीमती अर्चना दीक्षित
रीडर, गायन विभाग
संगीत एवम् मंचकला संकाय
का०हि०वि०वि० वाराणसी

२२ अगस्त, २००२ श्रावणी पूर्णिमा; वि०सं०२०५७

प्रकाशक

डॉ0 श्रीमती अर्चना दीक्षित

प्राप्ति स्थान

१. संगीत एवं मंचकला संकाय
का०हि०वि०वि० वाराणसी

२. एच0 6 जोधपुर कॉलोनी
का0हि0वि0वि0 वाराणसी

3. संगीत कार्यालय, हाथरस

4. विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी

प्रथम संस्करण 500 प्रतियाँ

मूल्य—200) रु0

मुद्रक

महावीर प्रेस

बी0 20/44, भेलूपुर,
वाराणसी-221010
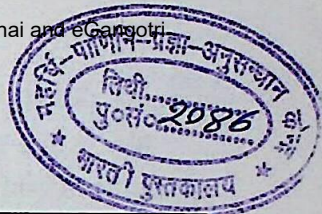
समर्पण

संगीत के सुसंस्कार सींचने वाले मेरे
माता-पिता को
तथा
बाल्यकाल से आज तक मुझे संगीत एवं
संगीतशास्त्रका ज्ञान प्रदान करनेवाले
समस्त आचार्यों को
एवं
मेरे बौद्धिक, मानसिक एवं शैक्षणिक उत्कर्ष के लिये
मुझे निरंतर प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं सहायता
प्रदान करने वाले मेरे उदारमना पति
प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित को
सादर समर्पित !

'नादतनु'
बी० ३३/३३-३१
रोहितनगर कॉलोनी, नरिया,
पो०, का०हि०वि०वि० वाराणसी

पद्मश्री
पं० बलवन्तराय भट्ट 'भावरंग'
श्रीमती वसुन्धरा भट्ट
दि० ५-५-२००२

आशीर्वचन

विविध विषय विदुषी प्रो० प्रेमलता शर्माजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लेखनकार्य करने के लिये मैं अपनी पुत्रीवत् प्रिय छात्रा डॉ० श्रीमती अर्चना दीक्षित, अधुना काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित संगीत एवं मंचकला संकाय के गायन विभाग की प्राध्यापिका, को उनकी सफलता के लिये आशीर्वाद देता हूँ।

भविष्य में भी डॉ० श्रीमती अर्चना दीक्षित को ऐसे सत्कार्यों में सफलता मिलती रहे, ऐसी शुभकामना करता हूँ।

इति शिवम् !

शुभ चिन्तक
बलवन्तराय भट्ट[1]

---

१. स्व० पं० ओम्कारनाथ ठाकुर के प्रमुख शिष्य एवं अवकाशप्राप्त रीडर, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, का० हि० वि० वि० वाराणसी हजारों सांगीतिक रचनाओं के रचयिता।

मंगलकामना

–राय आनंदकृष्ण[1]

डॉ० सौ० अर्चना दीक्षित से मैं सदा से प्रभावित रहा हूँ। दीक्षित दंपति ने भारतीय संगीत की आजन्म सेवा की है, उच्चस्थ कलाकारों के रूप में भी, शिक्षकों के रूप में भी। आप लोगों के सक्रिय जीवन का बहुत बड़ा भाग काशी में व्यतीत हुआ। हम लोग उन्हें काशीवासी ही मानते हैं।

सौ० अर्चनाजी ने स्वर्गीया बहनजी (डॉ० प्रेमलताजी शर्मा) के शिष्यत्व में वर्षों तक विद्या-लाभ किया, यह बड़े गर्व का विषय है। उसी गुरु-ऋण को चुकाने के लिए उन्होंने बहनजी के व्यक्तित्व और कृतित्त्व का गहन अध्ययन किया। फलस्वरूप प्रस्तुत ग्रंथ, "विविध विषय विदुषी प्रो० प्रेमलता शर्माजी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व" साकार हुआ। सौ० अर्चनाजी इस महत्तर कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त व्यक्ति हैं। उन्हें पूज्या बहनजी का नैकट्य प्राप्त होने का सुअवसर मिला था। पूज्या बहनजी और उनमें, आचार-विचार-व्यवहार में अत्यंत सन्निकटता थी फलतः अर्चनाजी ने बहनजी की परंपरा को भली भाँति आत्मसात् किया। प्रस्तुत ग्रंथ उसी प्रक्रिया का एक सुखद परिणाम है। आशा है, यह ग्रंथ भविष्य में प्रकाशित होने वाले ग्रंथों के लिए मार्ग दर्शन का कार्य करेगा। साथ ही आशा है, सौ० अर्चनाजी इसी धारा में पूज्य पंडित ओंकारनाथजी एवं पूज्य बलवंतरायजी भट्ट पर भी ऐसे ही ग्रंथों के प्रकाशन करेंगी।

---

1. अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं डीन, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पूर्व सदस्य एक्जिक्यूटिव कौंसिल, का०हि०वि०वि०, अध्यक्ष, राज्य ललित कला अकादमी, उ० प्र०, आदि।

पूज्या बहनजी सारे समाज की "बहनजी" थीं, हमारी, आपकी, सभी की। सारे समाज की उनके प्रति एक समान श्रद्धा थी। जीवन के अनुभवों में पवित्रता के कुछ प्रतीक होते हैं, चंदन, तुलसीदल, गंगाजल। बहनजी का जीवन और व्यक्तित्व, मानों गंगा में श्वेत् कमल उग आया हो, वैसा ही पद्म-पत्र इवाम्भसा था।

बहनजी ने एक से एक बड़े और दुष्कर कार्य उठाये, सभी को संपन्न किया, जो बच गये हैं उनका भार उनकी विशाल शिष्य-मंडली पर है। वस्तुतः वे एक व्यक्ति नहीं एक संस्था थीं। उनकी शिष्य मंडली उनका परिवार है। हिन्दुस्तानी संगीत-शास्त्र संबंधी शिक्षा और अनुसंधान प्रायः अकेले बहनजी की देन थी। बाद में विश्वविद्यालय की इस ओर उदासीनता को देखकर उनका विषण्ण भाव स्वाभाविक ही था। परन्तु उनके शिष्य प्रशिष्य देश के कोने कोने में उनकी अलख जगाए हुए हैं।

पूज्य पंडित ओंकारनाथजी ठाकुर ने १९५० में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत पठन-पाठन का कार्यक्रम चलाया। वट वृक्ष के समान वह नन्हा सा बीज आज अपने पूर्ण विकसित रूप में संपूर्ण गौरव को प्राप्त है। नींव के पत्थर के रूप में प्रारंभिक वर्षों में उसके संचालन और व्यवस्थापन का भार बहिनजी पर ही था। पाठ्यक्रम तैयार करने के साथ-साथ पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में भी बहिनजी का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

वे अत्यन्त सरल व्यक्तित्व की धनी थीं। उनके साथ बैठने पर तनिक भी मान नहीं होता था कि ऐसे शिखर व्यक्तित्व से बातें हो रही हैं। मेरे चुटकुलों को वे प्रायः दोहराया करतीं, अपने गंभीर हास्य के साथ, हम लोग समान रूप से रसास्वादन करते रहते।

उन्होंने संगीत की विधिवत् शिक्षा ली थी, उसमें वे पारंगत थीं। कंठ भी सुमधुर था। लोकसंगीत से लेकर ध्रुपद-धमार तक में उनकी

गहरी पैठ थीं । स्वयं पूज्य ओम्कारनाथजी की बड़ी अभिलाषा थी कि बहनजी मंचीय कलाकार (स्टेज आर्टिस्ट) के रूप में स्वयं को स्थापित करें परंतु संभवतः बहनजी के संकोचवश यह न हो पाया । फिर भी हम लोगों के अत्यन्त आग्रह पर उदाहरण देने के लिए, वे दो एक पंक्तियाँ गा कर दोहरा देतीं । आशा है, किसी संग्रह में बहिनजी की संगीत प्रस्तुति का टेप सुरक्षित होगा ।

पूज्य पंडितजी ने काशी आते ही पूज्य जयशंकर प्रसादजी की अमर कृतियाँ, "कामायनी" - "कामना" को संगीत बद्ध किया था, बहिनजी की उसमें सक्रिय सहभागिता थी । उनकी (और मेरी भी) योजना थी कि उनके पुनर्मंचन हों । बहिनजी उनके लम्बे अंशों को स्वयं गा गा कर हमारे अनुरोध पर सुनाया करतीं । कुछ (तत्कालीन) छात्र-छात्राओं से भी उन्होंने संपर्क किया था पर यह योजना साकार न हो पाई ।

स्वयं उन्होंने अनेक स्वर-रचनाएं प्रस्तुत कीं । एक सुप्रसिद्ध रास-पंचाध्यायी की थी । सगर्व कहने का अवसर है कि "राय कृष्णदास न्यास' ने उसकी प्रस्तुति करवाई । "न्यास" ने उनके आदेशानुसार पद्मभूषण, सुश्री सोनल मानसिंह द्वारा बौद्ध साहित्य के मंचन का भी भार उठाया । बहिनजी के सहयोग से "न्यास" ने लोक कलाकारों का गंगातट पर कार्यक्रम प्रस्तुत कराया जिसमें काशी की अपार जनता सम्मिलित हुई । ऐसे अन्य कार्यक्रमों की, जिनमें "न्यास" की सहभागिता होती, उनकी परिकल्पनाएं थीं । उन्होंने अनेक कलाकारों को जगत्प्रसिद्धि दिलाई जिनमें श्रीमती तीजन बाई और श्रीमती असगरी बाई विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं अन्यथा ये दोनों ही रत्न देश के एक अज्ञात कोने में छिपे थे ।

हम सगौरव कह सकते हैं कि "राय कृष्णदास न्यास" ने "भरत निधि" के सहयोग से पूज्या बहिनजी की स्मृति में प्रति वर्ष एक विचार

चर्चा और संगीत प्रस्तुति के आयोजन का निश्चय किया है । उसके दो सफल कार्यक्रम विगत वर्षों में हो चुके हैं । आशा है, इन आयोजनों का उत्तरोत्तर विकास होता रहेगा और हम अनुभव करते रहेंगे कि बहनजी हमारे बीच में ही हैं ।

काशी ७-५-२००२

राय आनंदकृष्ण

●

शुभाशंसा

डॉक्टर श्रीमती अर्चना दीक्षित की कृति 'विविध विषय विदुषी प्रोफेसर प्रेमलता शर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' का 'स्थालीपुलाकन्यायेन' अवलोकन मैंने किया । यह कार्य परमविदुषी, चिन्तिका एवं बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न स्वर्गीया प्रोफेसर प्रेमलता शर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सामान्य परिचय प्रस्तुत करता है । बहन प्रेमलता शर्मा के व्यक्तित्व का अप्रतिम पक्ष उनके संस्कृत भाषा एवं प्राचीन वाङ्मय के अनेक आयामों पर असमान्य अधिकार, हिन्दी साहित्य विशेषतः मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के साथ-साथ मराठी, गुजराती, बांग्ला, उर्दू, फारसी साहित्य के गम्भीर अनुशीलन, अंग्रेजी भाषा के साथ ही पश्चिमी चिन्तन पर उनके अधिकार को ध्यान में रखने पर ही समझ में आ सकता है । सङ्गीत शास्त्र एवं भरतके नाट्यशास्त्र के समुद्धार की दिशा में किये गये उनके अवदान का आकलन इन शास्त्रों की भावी अध्ययन दिशाको तय करने में सहायक होगा । संगीतशास्त्र को आधुनिक भारतीय विश्वविद्यालयीय अध्ययन एवं शोध के क्षेत्र में पूर्ण प्रतिष्ठा दिलाने में उन्होंने जो कार्य किया वह उन्हें अमर रखने के लिये पर्याप्त है । भरत के नाट्यशास्त्र के सङ्गीत से सम्बद्ध कुछ अध्यायों के उनके सम्पादन एवम् अनुवाद के

कार्य के प्रकाशित होने पर उनके वैदुष्य का एक ऐसा पक्ष सामने आ सकेगा, जो उनके जीवनभर किये गये कार्य की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिनिष्पत्ति है ।

डॉ० श्रीमती अर्चना दीक्षित का बहन प्रोफेसर प्रेमलता शर्मा के सम्बन्ध में किया गया यह कार्य उनके व्यक्तित्व का परिचय तथा उनके कार्यों का व्यापक विवरण प्रस्तुत करता है । इस कृति में प्रस्तुत विवरण बहनजी के अवदान को केन्द्र में रखकर किये जाने वाले भावी कार्य की आधार पीठिका के रूप में रहेगा । श्रीमती दीक्षित को, उनके इस कठिन और श्रमसाध्य कार्य को पूरा करने के लिये मैं साधुवाद देता हूँ और इस कृति के साहित्यजगत् में स्वागत की कामना करता हूँ।

प्रो० कमलेशदत्त त्रिपाठी
पूर्व संकायाध्यक्ष
संस्कृत एवं धर्मविज्ञान संकाय,
पूर्व सदस्य, (Executive Council)
का०हि०वि०वि० वाराणसी

●

भूमिका

–डॉ० भानुशंकर मेहता
पैथोलाजिस्ट एवं प्रसिद्ध कलामर्मज्ञ

डॉ० श्रीमती अर्चना दीक्षित द्वारा यह ग्रंथ 'डॉ० प्रेमलता शर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' एक विशिष्ट कृति है । यद्यपि ग्रंथ का केन्द्र बिन्दु डॉ० प्रेमलता शर्मा का संगीत क्षेत्र में योगदान है पर विद्वान लेखिका ने डॉ० शर्मा के इस अवदान की भूमिका के लिये उनके समूचे जीवन और कृतित्व को अपनी परिधि में ले लिया है ।

ग्रंथ का आरंभ श्रीमती डॉ० दीक्षित प्रेमलताजी के जीवन परिचय से करती है और इसपर विस्तार से प्रकाश डालती हैं क्योंकि कोई व्यक्ति इतनी ऊँचाई तक कैसे पहुँचता है यह जानने के लिये उसके जीवन के सोपानों को जानना आवश्यक है । डॉ० प्रेमलताजी पंजाब प्रांत के गांधीवादी और (बाद में) गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित परिवार में पैदा हुईं । अत्यंत मेधावी बालिका ने ११ वर्ष की उम्र में हाईस्कूल, तेरहवें वर्ष में इंटर और पंद्रहवें वर्ष में बी०ए० पास कर लिया । १९४२ में पिताने नौकरी से त्याग पत्र देकर मथुरा के वैष्णव आचार्यों की सेवा करने का निर्णय किया । यहाँ डॉ० शर्मा ने गायन, वादन सीखा, घर का काम सीखा, साथ ही वैष्णव आचार्यों की गोष्ठी में बैठकर ज्ञान वृद्धि की । मथुरा में संस्कृत भाषा की शिक्षा मिली, ध्रुपद की शिक्षा प्राप्त की और इस प्रकार आठ वर्ष बीत गये । सन् १९५० में काशी आकर हिंदी में एम० ए० किया, १९५१ में संस्कृत में एम०ए० किया और साथ ही संगीत संकाय से जुड़ गयी । पं० ओंकारनाथ ठाकुर के सान्निध्य में उन्हें नयी दिशा मिली । वे पंडितजी के ग्रंथ लिखती थीं और संगीत सीखती थीं । इस प्रकार संगीत और संगीत शास्त्र का भरपूर ज्ञान उन्हें मिला । संस्कृत की शिक्षा ने प्राचीन संगीत ग्रंथों को पढ़ने में सहायता की । दिल्ली में उन्होंने उर्दू भी सीखी थी । इस प्रकार भारतीय संगीताकाश में एक संगीत शास्त्री का उदय हुआ । विद्वान लेखिका ने बड़ी खूबी और विस्तार से इस निर्माण प्रक्रिया का वर्णन किया है जो निश्चय ही विद्यार्थियों के लिये प्रेरक होगा । डा० शर्मा ने संगीत संकाय में सेवा करते हेतु क्रियात्मक संगीत की सेवा तो की ही साथ ही संगीत-शास्त्र विभाग को एक निश्चित आकार दिया और देश को संगीतज्ञ के साथ ही संगीत शास्त्री दिये । इस कार्य की महत्ता को अस्वीकारा नहीं जा सकता । अपने कार्यकाल में डॉ० शर्मा

ने-संस्कृत नाटक, भरत नाट्यशास्त्र की, पुराने संगीत ग्रंथों के पुनरुद्धार और उनपर टीका लिखने का अभूतपूर्व कार्य किया इसका विस्तार से डॉ० अर्चना दिक्षित ने उल्लेख किया है । कैसे डा० शर्मा ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ही नहीं कुलपति के रूप में खैरागढ़ वि०वि० की, उ०प्र० संगीत नाटक अकादमी और केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी में अवदान दिया इसकी भी चर्चा की है । डा० दीक्षित ने प्रेमलताजी के लेखन और पुस्तकों (मौलिक), संपादित ग्रंथों, लेखों की चर्चा के साथ ही उनके भाषा ज्ञान की चर्चा की है । बहु भाषाविद् डा० शर्मा ने एक मार्ग दिखाया है कि अनुसंधान और शोध के लिये यह अनिवार्य शर्त है । डा० शर्मा के कृतित्व पर डा० अर्चना दीक्षित ने पर्याप्त प्रकाश डाला है ।

आपने डा० शर्मा को मिले राष्ट्रीय और अंताराष्ट्रीय सम्मानों की, विद्वत गोष्ठियों में सहभागिता की चर्चा की है । देश-विदेश की यात्राओं की चर्चा पढ़ने पर ज्ञात होता है कि कैसे डा० शर्मा ने भारतीय संगीत की ध्वजा दूर देशों भी फहराई । सांस्कृतिक-यात्राओं की उपयोगिता पर अच्छा प्रकाश पड़ा है । व्यक्ति अकेले सब कार्य नहीं कर सकता । इसके लिये संस्थाओं की सहायता लेनी पड़ती है । डा० अर्चना दीक्षित ने विभिन्न संस्थाओं में डा० शर्मा की सदस्यता और उनके अनुदान की चर्चा की है । संकाय प्रमुख, कुलपति, विभागाध्यक्षा जैसे पदों पर रहकर डा० शर्मा की प्रशासनिक प्रतिभा पर भी डा० दीक्षित ने प्रकाश डाला है । प्रबंध के अंत में डा० दीक्षित ने डा० प्रेमलता जी के मानव रूप, उनकी सादगी, कर्मठता, अध्यवसाय, ज्ञानक्षेत्र में गहरी रुचि और पैठकी चर्चा करके एक संगीतशास्त्री विदुषी के जीवन का सुंदर वर्णन किया है । पुस्तक के अंत में परिशिष्ट के रूप में लेखिका ने डा० शर्मा का जीवनवृत्त, उनके निर्देशित शोध प्रबंधों की सूची, संगीतशास्त्र के लिये तैयार किया गया पाठ्यक्रम, डा० शर्मा के हिन्दी, अंग्रेजी लेख, उनकी

हस्तलिपि, और डॉ० शर्मा की पद्यरचना भी शामिल की है ।

पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है, इसलिये नहीं कि उसमें किसी एक विदुषी का जीवन चरित्र है बल्कि युवा पीढ़ी और छात्र इसे पढ़कर प्रेरणा ले सकते है कि कैसे जीवन को महान बनाया जा सकता है । इस ग्रंथ के प्रणयन के लिए डॉ० श्रीमती अर्चना दीक्षित बधाई की पात्र हैं । उन्होंने संगीत के तुमुलनाद के बीच संगीतशास्त्र की चर्चा की । साधुवाद ।
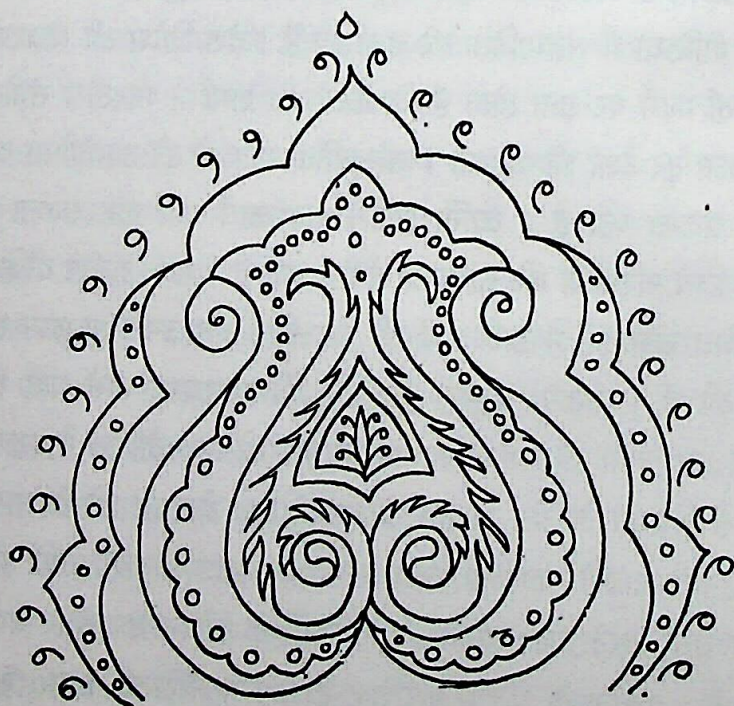
प्राक्कथन एवं कृतज्ञता ज्ञापन

संगीत क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के जीवनवृत्त तथा उनके सांगीतिक योगदान के विषय में लिखने की प्रवृत्ति आधुनिक काल में ही दृष्टिगोचर हो रही है। खास करके विश्वविद्यालयों में संगीत की उच्च शिक्षा जबसे आरंभ हुई है अनेक शोधार्थियों ने अनेक संगीतज्ञों के जीवन एवं कार्यों पर शोध प्रबन्ध लिखे हैं। अन्यथा मध्यकाल या प्राचीनकाल के किसी संगीतज्ञ के विषय में अधिकृत जानकारी प्राप्त करना प्रायः असंभव सा जान पड़ता है, चाहे वह तानसेन हो, अमीर खुसरो हो, शार्ङ्गदेव हो या भरत हो। लक्षण ग्रंथों के प्रणेताओं के ग्रंथ तो प्राप्त हो जाते है लेकिन उनके जीवन संबंधी या अन्य देन संबंधी विश्वस्त (authentic) जानकारी नहीं मिल पाती है या बहुत अल्प जानकारी ही मिल पाती है।

संगीत में, प्रयोगात्मक कला में विख्यात कलाकारों के विषय में उनकी गायकी या वादन शैली या नृत्य शैली के विषय में शोधप्रबन्ध तथा ग्रंथ भी आधुनिक काल में उपलब्ध हो रहे हैं किन्तु किसी संगीत शास्त्रवेत्ता (Musicologist) के विषय में अभी तक विशेष कुछ लिखा नहीं गया है। इसके एक मात्र अपवाद है पं० विष्णु नारायण भातखण्डे। १९७० में प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित ने 'वाग्गेयकार पं० ओम्कारनाथ ठाकुर' पुस्तक लिखी, उसमें भी पंडितजी का कलाकार पक्ष ही बल पाया है। पंडितजी का शास्त्रकार पक्ष अधिक उजागर नहीं हो पाया है।

'हरि अनंता, हरि कथा अनंता' की भांति पूज्या बहनजी के व्यक्तित्व के भी अनेक पहलू हैं। आप गायिका, वादिका, संगीतशास्त्री, कवयित्री, वक्ता, उत्तम शिक्षिका, संस्कृत भाषा एवं संस्कृत साहित्यकी विदुषी, संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा पर प्रभुत्व रखनेवाली तथा इनके अतिरिक्त

अनेक भारतीय भाषाओंकी जानकार, भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन एवं वैष्णव दर्शनकी प्रबुद्ध ज्ञाता, पाकशास्त्र में प्रवीण, सफल प्रशासक और इन सबसे ऊपर उत्तम मानवीय गुणों से सभर थीं । प्रस्तुत ग्रंथ में मैंने आपके प्रत्येक पक्ष पर संक्षेप में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है ।

१९९५ में मेरी एक शोध छात्राने बहनजी पर काम करनेकी इच्छा व्यक्त की थी । मैं उस छात्रा को बहनजीके पास ले गई थी । बहनजीने अपना एक संक्षिप्त लेख उक्त छात्राको पढ़ने के लिये दिया तथा उसमें से क्या समझमें आया यह पूछा था । छात्रा संतोषजनक उत्तर न दे पाई । तब बहनजी ने उसे प्यार से पूछा था कि "जब तुम मेरा एक छोटा लेख नहीं समझ पा रही हो तो मेरा पूर्ण लेखन कार्य कैसे समझ पाओगी?" तभी मुझे लगा था कि बहनजी पर कार्य करना उतना आसान नहीं है । उसके लिये संगीत, संगीतशास्त्र तथा भाषाओंकी व्यवस्थित पीठिका (Background) आवश्यक है । छात्रा को तो अन्य विषय दे दिया गया लेकिन तभी से मेरे मनमें बहनजी पर कार्य करने की इच्छा थी । मुझको उसका अवसर भी मिल गया ।

सन् २००० के फरवरी माह में जब मुझे पर्यटन एवं संस्कृति मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा सीनियर फेलोशिप मिली तब मैंने 'प्रो० प्रेमलता शर्मा के सांगीतिक योगदान' विषय पर अपना कार्य प्रारंभ किया । प्रो० प्रेमलता शर्मा, पं० ओम्कारनाथ ठाकुर की शिष्या एवं उनके शास्त्रवेत्ता पक्ष की वास्तविक उत्तराधिकारी रही है । मेरी नम्र राय में प्रेमबहनजी की संगीत क्षेत्र को निम्नलिखित देन है–

१. संस्कृत साहित्य, हिन्दी साहित्य तथा संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों के पाठ संशोधन की विधियों में आप पारंगत थी । आपने संगीत की विधिवत् शिक्षा (गायन, वादन दोनों की) प्राप्त की थी । अतः आपने संगीत के प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का दीर्घकाल तक मंथन किया तथा

अनेक ग्रंथों के पाठ संशोधित कर उनका हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनुवाद किया है जो देशी विदेशी विद्वानों, जिज्ञासुओं के लिये अमूल्य देन है ।

२. आपने आजीवन संगीत शास्त्र का अध्ययन एवं अध्यापन किया था तथा संगीतशास्त्र के कई विद्यार्थी ऐसे तैयार किये जो आज देश के जाने माने संगीतशास्त्री हैं ।

३. प्राचीन काल में संगीत शास्त्राध्ययन एवं अध्यापन की भी परंपरा थी जो बीच के काल में विशृंखल हो गई थी । बहनजी ने इस परंपरा को पुनर्जीवित किया है । आपके समकालीन अन्य संगीतशास्त्री ठाकुर जयदेव सिंह, आचार्य बृहस्पति, प्रो० आर० सी० मेहता, प्रो० सत्यनारायण इत्यादि निशंक बहुत विद्वान् संगीतशास्त्री थे, हैं, लेकिन किसी ने संगीतशास्त्र के इतने अधिक उच्चस्तरीय विद्यार्थी तैयार किये हों ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है ।

४. आपका संगीत संबंधी क्षितिज, अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक था । लोकगीत, (आपको पंजाब, काश्मीर के कई लोकगीत याद थे तथा आप अक्सर उनको सुनाया करती थीं) लोकनृत्य, लोकनाट्य से लेकर शास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय नृत्य तक सबकी विशद जानकारी, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, बांगला, मराठी, गुजराती उर्दू, आदि अनेक भाषाओं के ग्रंथों का अध्ययन, भारतीय रससिद्धांत तथा पाश्चात्य सौंदर्य सिद्धांत का विशेष अध्ययन आपको संगीत शास्त्री की विशिष्ट श्रेणी में प्रस्थापित करता है । साहित्य में वर्णित रससिद्धांत की संगीत जैसी अमूर्तकला में कैसे संगति बैठायी जाय उसपर आपने गहन मनन, चिंतन किया था तथा माधुर्य, ओज एवं प्रसाद ये काव्यशास्त्र के त्रिगुण सिद्धांत को संगीतके प्रभाव के साथ जोडना यह आपके गहन चिंतन का ही प्रतिफल है ।

५. आपका संस्कृत नाट्य संबंधी कार्य भी नाट्यविधा में आपका

विशिष्ट योगदान है । आपने भरतकालीन पूर्वरंग तथा रंगमंच का नवीन तकनीकों के साथ पुनरूत्थान किया । साथ ही संस्कृत नाटक में प्रयुक्त 'ध्रुवा' गायनकी परंपरा पुनर्जीवित की ।

६. आप संगीत की अच्छी रचनाकार भी सिद्ध हो चुकी है । 'वेणुगीत', 'भ्रमरगीत', 'युग्मगीत', 'गोविन्द बिरूदावलि' आदि के चयन किये हुए पदों की संगीत रचना कर उनको अनेक रागताल में बाधकर सुंदर ढंग से गवाकर उन पर नृत्य के प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा नृत्य के कार्यक्रम आपने प्रस्तुत कराये हैं ।

७. उत्तर प्रदेश की संगीत नाटक अकादमी की अध्यक्षा एवं केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की उपाध्यक्षा के रूप में भारत की समृद्ध सांगीतिक परंपरा का 'डौक्युमेन्टेशन' आपने करवाया है तथा अनेक सेमीनार भी आयोजित किये हैं । अनेक पुस्तकों का प्रकाशन करवाया है ।

८. महाराणा कुंभा रचित 'संगीतराज' ग्रंथ की ओर विद्वानों का ध्यान आपने आकृष्ट किया तथा उस ग्रंथ का पाठ संशोधित कर उस पर अंग्रेजी में विशेष टिप्पणी प्रस्तुत की । संगीतके ऐसे कई ग्रंथ है जो आपके प्रयत्न स्वरूप प्रकाश में आये हैं ।

९. मतंग प्रणीत 'बृहद्देशी' का पठन-पाठन यदि आज संभव हो सका है तो उसका पूरा श्रेय प्रो० प्रेमलता शर्मा को ही है । आपने बृहद्देशी के अतिरिक्त संगीतरत्नाकर का भी अंग्रेजी अनुवाद किया है । अनेक संगीत शास्त्र ग्रंथों पर शोध कार्य किया है-करवाया है जिनमें से अनेक शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं ।

१०. आपने एम०म्यूज एवं एम०फील० का संगीतशास्त्रका पाठ्यक्रम बनाया तथा कईं वर्षों तक उसे पढाया भी है ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा मेरी शिक्षिका रह चुकी हैं । मेरा तथा मेरे पति प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित का बहनजी से दीर्घकालीन संपर्क रहा है । मुझे

प्रसन्नता है कि मैं समय पर यह पुस्तक प्रकाशित कर पा रही हूँ। यह माँ भगवती शारदा एवं बहनजी के ही आशीर्वाद का फल है।

इस कार्य के सम्पन्न होने के लिये मैं संस्कृति विभाग नई दिल्ली की अत्यन्त आभारी हूँ। इस विभाग द्वारा प्रदत्त फेलोशिप से इस कार्य में आर्थिक सहायता मिल पाई। मैं चयनकर्ता समिति के सदस्यों की भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे प्रोजेक्ट का चयन किया।

मैं अपने श्रद्धेय गुरुजी संगीताचार्य पद्मश्री पं० बलवन्तराय भट्ट 'भावरंग' जी को एवं सौ० वसुंधरा भट्ट को उनके प्रेमपूर्ण आशीर्वचन के लिये श्रद्धा सहित वंदन करती हूँ। मैं वाराणसी के सुविख्यात चिकित्सक एवं कलामर्मज्ञ डॉ० भानुशंकर मेहताजी को भूमिका लेखन के लिये हार्दिक धन्यवाद देते हुए नमन करती हूँ। मैं का० हि० वि० वि० के कलासंकाय के भूतपूर्व संकायाध्यक्ष एवं का०हि०वि०वि० की कार्यकारी परिषद् (Executive council) के भूतपूर्व सदस्य एवं बहनजी के अत्यंत स्नेहभाजन 'राजाभैया' उर्फ प्रो० राय आनंदकृष्णजी को उनकी मंगलकामना के लिये हृदय से धन्यवाद करती हूँ तथा उनको वंदन करती हूँ। मैं का०हि०वि०वि० के धर्मविज्ञान एवं संस्कृत संकाय के पूर्व संकाय प्रमुख, पूर्व सदस्य, कार्यकारीपरिषद् का०हि०वि०वि० एवं देश विदेश में सुविख्यात प्रो० कमलेशदत्त त्रिपाठी का उनकी शुभाशंसा के लिये हार्दिक धन्यवाद करती हूँ। आप चारों महानुभावों का मेरे तथा दीक्षितजी के प्रति विशेष प्रेम है, तभी तो आपने अपने व्यस्ततम जीवनमें से मेरे लिये समय निकालकर आशीर्वचन, मंगलकामना, शुभाशंसा एवं भूमिका लिखकर मुझ पर बहुत अनुग्रह किया है अतः आप चारों को पुनः प्रणिपात है।

बहनजी की कनिष्ठ भगिनी डॉ० उर्मिला शर्मा की मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। आपने बहनजी की पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा अन्य कई

महत्त्वपूर्ण जानकारी मुझे दी । आपने बहनजी के फोटोग्राफ्स, बहनजी की हिन्दी, संस्कृत कविता, बहनजी की पुस्तकें, बहनजी की हिन्दी अंग्रेजी हस्तलिपि, बहनजीकी कुण्डली आदि मुझे उपलब्ध कराये हैं । अपनी व्यस्त दिनचर्या के बीच में आपने मुझे भरपूर समय दिया है । मैं प्रो० सुभद्रा चौधरी के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ । आपने बहनजी के शिक्षिका रूप तथा संगीतशास्त्री रूप की बहुत जानकारी मुझे दी है । आपने मेरी विनती पर समय निकाल कर मेरा पूरा शोधकार्य पढा है तथा उनकी त्रुटिपूर्णवर्तनी की और मेरा ध्यान आकृष्ट किया है । मैं अपने गुरूजी पं० बलवंतराय भट्ट 'भावरंग' जी की भी बहुत आभारी हूँ । आपने मुझे बहनजी के विद्यार्थी जीवन के विषय में जानकारी दी है । इसके अतिरिक्त मैं प्रो० इंद्राणी चक्रवर्ती, डॉ० राधेश्याम जायसवाल, डॉ० सुधाकर भट्ट, डॉ० कृष्णकांत शर्मा, डॉ० ऋत्विक सान्याल, डॉ० नीरज कुमार एवं श्रीमती उषा मलिक आदि की भी बहुत आभारी हूँ । आप सब महानुभाव ने बहनजी के विभिन्न पक्षों पर मुझे जानकारी दी है, मुझे अपना अमूल्य समय दिया है । प्रस्तुत पुस्तक के मुखपृष्ठ एवं अंतिम पृष्ठकी कलात्मक रूपसज्जा के लिये मैं दृश्यकलासंकाय, का०हि०वि०वि० के श्री हीरालाल प्रजापति का हार्दिक धन्यवाद करती हूँ ।

अंत में मैं अपने पति प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षितजी को अंतःकरण पूर्वक धन्यवाद देती हूँ । आप बहनजी के शिष्य हैं तथा दीर्घकाल से बहनजी से परिचित है । आपसे मुझे अनेक प्रकार की जानकारी तथा सहायता प्राप्त हुई हैं । आपने मेरे हर कार्य में सहयोग दिया है । सुंदर छपाइ एवं समयानुसार पुस्तक तैयार करने के लिये मैं महावीर प्रेस, वाराणसी की विशेष आभारी हूँ ।

अपनी गृहस्थी तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत एवं

मंच कला संकाय के मेरे दायित्वों के निर्वाह के साथ मैंने यह कार्य संपन्न किया है । आ० प्रेमलताजी के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू को संक्षेप में छूने का इसमें मैंने प्रयत्न किया है । किसी भी पक्ष का अधिक विस्तार नहीं किया गया है । मैं गुजराती भाषी हूँ, तथा हिन्दी सीखी हूँ। वाराणसी में अध्ययन तथा इसी नगर में लम्बी कालावधि के निवास के कारण थोड़ा हिन्दी लिखने का भी साहस कर लेती हूँ । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर संभवतः कुछ भाषाकीय त्रुटियाँ दृष्टिगोचर हो सकती हैं । आ० सुभद्राजी के निर्देशानुसार जहाँ तक सम्भव था यथाशक्ति मैंने त्रुटियों का निवारण किया है ।

सुधीजन कमियोंकी उपेक्षा करके मेरे इस प्रथम प्रयास का स्वागत करेंगे ऐसी आशा है ।

मे मनः शिव संकल्पमस्तु

श्रावणी पूर्णिमा

अर्चना दीक्षित

२२ अगस्त २००२

●

अनुक्रमणिका

७. बहनजी के विभिन्न रूप

८. सम्मान ग्रहण

९. गाय और गुरु के साथ

१०. प्रणव परिवार
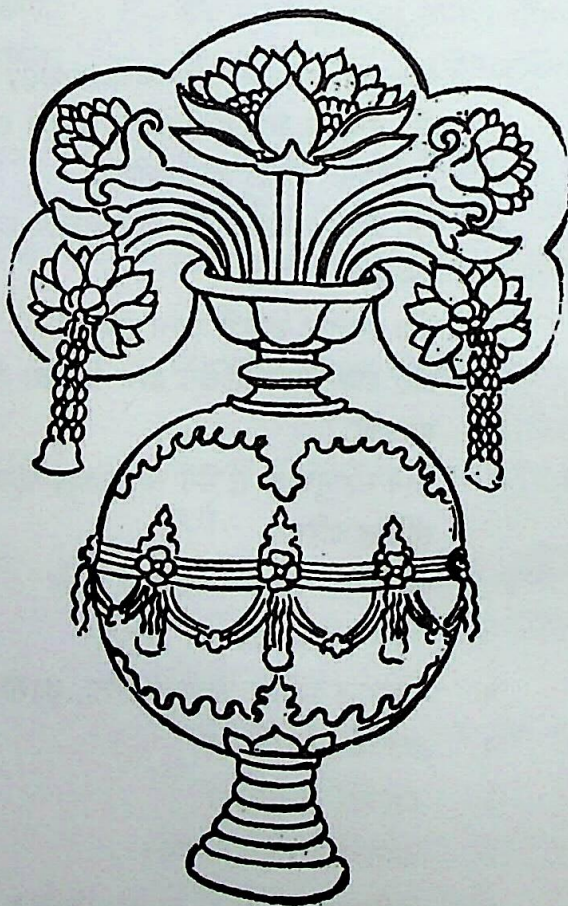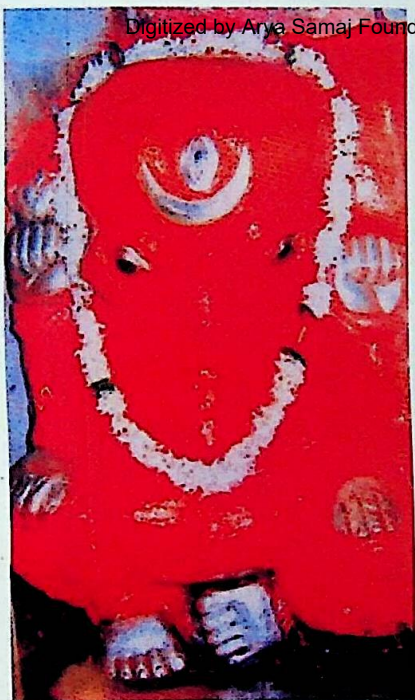
ढुंढीराज

मां अन्नपूर्णा

श्री विश्वनाथ बाबा

बहनजी का परिवार

स्व. श्री लालचंद शर्मा
(बहनजी के पिताजी)

स्व. श्रीमती मायादेवी शर्मा
(बहनजी की माताजी)

डा. उर्मिला शर्मा
(बहनजी की कनिष्ठ भगिनी)

प्रथम अध्याय

प्रो० प्रेमलता शर्मा का संक्षिप्त जीवन परिचय

प्रो० प्रेमलता शर्मा का नाम भारतीय संगीत जगत के लिये सम्मानीय नाम है। आपने जीवन पर्यन्त संगीत एवं संगीतशास्त्र की निष्ठापूर्वक सेवा की तथा सदियों से विलुप्त संगीत शास्त्राध्ययन की परंपरा को पुनः प्रतिष्ठित किया।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग की त्रिवेणी जिन्होंने अपने जीवन में चरितार्थ की, जिन्होंने जीवन पर्यन्त सीखने-सिखाने की प्रवृत्ति का आदर्श प्रस्तुत किया, जिन्होंने कल्पनातीत अनुशासन, सादा जीवन, उच्च आचार-विचार तथा निरन्तर कार्यरत रहने का मानदण्ड स्थापित किया, जिन्होंने यथानाम अपने संसर्ग में आने वाले प्रायः सभी को प्रेम से आप्लावित किया, वैसी स्वनामधन्या स्व० प्रो० प्रेमलता शर्मा के जीवन की संक्षिप्त झाँकी प्रस्तुत है।

मूलतः आप पंजाब के जालंधर जिले के माँझापट्टी गाँव की निवासी थी किन्तु आप स्वयं या आपके माता-पिता कभी पैतृक गाँव में नहीं रहे। आपके पिता श्री लालचंद शर्मा ब्रिटीश शासन काल में रेलवे में सरकारी आडीटर के उच्च पद पर कार्यरत थे तथा पिताजी के प्रत्येक स्थानांतरण के साथ परिवार भी उस उस शहर में रहने चला जाता था। फिर भी बाल्यकाल में प्रेमलताजी का दिल्ली में ही अधिक रहना हुआ। प्रेमलताजी श्री लालचंद शर्मा एवं श्रीमती मायादेवी शर्मा की इकलौती जीवित संतान थी। आप से बड़ा एक भाई ढ़ाई वर्ष की अल्पआयु में ही चल बसा तथा आप से छोटा भाई नौ-दस माह की शिशु अवस्था में ही ईश्वर के पास चला गया। प्रेमलताजी का जन्म १० मई

१९२७ के दिन पंजाब के नकोदर (जिला जालंधर) में हुआ था। सामान्यतः अपने देश में तथा विशेषतः उस काल विशेष में यदि किसी कन्या के दो-दो भाई जीवित न बचें तो समाज के लोग कन्या के विषय में अटपटी बात बोलने लगते हैं। किन्तु शर्मा परिवार इसका अपवाद था। न माता-पिता ने कभी अपनी पुत्री के लिए अटपटा सोचा या कहा, न किसी और को कुछ अटपटा बोलने दिया। माता-पिता का समग्र स्नेह प्रेमलताजी को मिला। उनका पूरा ध्यान होनहार पुत्री के लालन-पालन एवं शिक्षा–दीक्षा में ही लगा रहा। पुत्री को पूरा प्यार, समग्र ध्यान तथा पढ़ाई लिखाई की पूर्ण सुविधा देते हुए भी आपका लालन-पालन बहुत अनुशासन में हुआ। बाल्यकाल के अनुशासन के संस्कार बहन जी के व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग बन गये। आपकी पूरी कार्य पद्धति ही अनुशासन में ढल गई।

बाल्यकाल से ही आप बहुत विचक्षण बुद्धि वाली बालिका थी। पिताजी की नौकरी तथा स्थानांतरण के कारण आपका दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, लखनऊ, आदि कई नगरों में रहना हुआ। आपकी प्राथमिक शिक्षा घर पर ही हुई। अधिक समय दिल्ली में ही बीता तथा दिल्ली में ही आपने माध्यमिक स्कूली शिक्षा प्राप्त की थी। स्कूली शिक्षा के साथ-साथ आपने नृत्य तथा वाद्य संगीत की शिक्षा भी दिल्ली में प्राप्त की। प्रसिद्ध संस्कृतिविद् डॉ० कपिला वात्स्यायन आपकी नृत्य की कक्षा की सहचरी थी। जीवन पर्यन्त दोनों में मैत्रीभाव बना रहा। एकाध वर्ष बाद नृत्य छोड़कर आपने सितार सिखा। कुछ काल तक दक्षिण भारतीय तंजोरी वीणा, वायलिन, तबला आदि वाद्य यंत्र बजाना भी सीखा। बाद में कई वर्षों तक आप दिलरूबा बजाती रहीं तथा उसकी सिद्धहस्त वादिका भी बन गईं। बाल्यकाल के संगीत के संस्कार-बीज ने काल क्रम में अंकुरित होकर विशाल वटवृक्ष का रूप धारण कर लिया जिसकी

छाया में संगीत के अनेक विद्यार्थियों ने ज्ञानार्जन किया ।

वह युग गाँधीजी का था तथा प्रेमलताजी के पिताजी गाँधीजी और उनकी विचारधारा से अत्यंत प्रभावित थे । गाँधीजी की सभाओं में भाषण सुनने वे पत्नी एवं बालिका को लेकर जाते । नित्यप्रति समाचार पत्रों में छपी खबरें तथा लेख वे पत्नी तथा बालिका प्रेमलता को पढ़कर सुनाते । प्रेमलताजी के बालमन पर गाँधी-विचारधारा का गहन प्रभाव पड़ा ।

प्रेमलताजी के पिताजी ने अपनी प्रतिभाशाली पुत्री को पढ़ाने के लिये हिन्दी तथा उर्दू के जाने माने विद्वानों की व्यवस्था की थी जो घर पर आकर पढ़ाते थे । हिन्दी के लिए दिल्ली के हिन्दी विद्वान् प्रो० गुलाबराय घर पर आते थे । उर्दूभाषा सिखाने के लिये भी उत्तम शिक्षक की व्यवस्था की थी तथा पुत्री के साथ-साथ स्वयं शर्माजी ने भी उर्दू-फारसी सीखी । प्रतिभाशाली एवं मेहनती होने के कारण दो-दो वर्ष की पढ़ाई आपने एक-एक वर्ष में संपन्न करते हुए ग्यारह वर्ष की अल्पवय में हाईस्कूल परीक्षा तथा तेरह वर्ष की वय में इण्टर परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण कर ली । इण्टर के पश्चात् दिल्ली के इंद्रप्रस्थ कालिज से पंद्रह वर्ष की अवस्था में आपने बी०ए० भी उत्तीर्ण कर लिया । यह १९४२ का वर्ष था ।

बहनजी के[1] बी० ए० करते समय उनके पिताजी के जीवन में दो ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटी जिसने परिवार के जीवन की दिशा बदल दी ।

१. समय १९४२ वाला था । गाँधी जी ने सरकारी नौकरी, सरकारी

---

१. बाद में का० हि० वि० वि० में तथा संगीत संकाय में आप 'बहनजी' के नाम से ही संबोधित होती रही । अतः स्वाभाविकतः कई बार प्रेमलताजी के स्थान पर 'बहनजी' शब्द ही आ जाता है ।

पद-सम्मान आदि का त्याग करने की बात कही थी । ऐसे में गाँधीजी से प्रभावित श्री लालचंद शर्मा ने सरकार का कोई अन्यायी या गलत आदेश मानने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए नौकरी से त्यागपत्र दे दिया । सरकारी नौकरी छोड़ दी ।

२. श्री लालचंद शर्मा गौड़ीय वैष्णव परंपरा से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा स्वयं उस परंपरा में दीक्षित हो गये ।

इसके बाद तो वे अपना पूरा समय वैष्णव मंदिर तथा वहाँ के आचार्यों को देने लगे । दिल्ली छोड़कर आप परिवार को लेकर मथुरा आ गये तथा यहाँ आने के कुछ ही महिनों में आपने पत्नी तथा पुत्री दोनों को भी इस गौड़ीय वैष्णव परंपरा में दीक्षित करवाया ।

मथुरा में आपका परिवार गोलपाड़ा विस्तार में एक बड़ा हवेलीनुमा मकान किराये पर लेकर रहने लगा । इस मकान में खुदाई के समय तीन गोवर्धन शिलाएं निकली थीं । परम्परा से जिन्हें गिरिधारी रूप में ही पूजा जाता है । मकान मालिक ने मकान किराये पर देते समय ही शर्त रखी थी कि इनकी नियमित पूजा होनी आवश्यक है । श्री लालचंद शर्मा ने इनकी पूजा का वादा किया तथा जब तक उस मकान में रहे, नियमित इन विग्रहों की पूजा करते रहे ।

मथुरा में प्रेमलताजी का औपचारिक शिक्षा क्रम खंडित हो गया । किन्तु समय व्यर्थ भी नहीं गया । अभी तक आप वाद्य संगीत का अभ्यास करती रही । वैसे गायन भी प्रारम्भ हो चुका था, स्तोत्र, भजन रागों में गाती थीं । मथुरा में श्री व्यवहारेजी नामक स्वनामधन्य संगीतज्ञ थे जिनसे आपने शास्त्रीय गायन एवं ध्रुपद की शिक्षा ली । पिता, माता एवं पुत्री का अधिकांश समय वैष्णव मंदिर की सेवा में बीतने लगा ।

मंदिर में प्रेमलताजी ने ठाकुर जी के भोग के लिए अनेक प्रकार के व्यंजन (भोजन) बनाना सीखा ।[1] रसोई के साथ ठाकुर जी के कपड़े सिलना, चद्दर, तकिया आदि में गोटे लगाना तथा कढ़ाई-बुनाई इत्यादि स्त्रियोचित कार्यों में भी दक्ष हुईं । इन सबके अतिरिक्त मथुरा में संस्कृत के उत्तम विद्वानों से आपने संस्कृत सीखी । वैष्णव संप्रदाय के मंदिर के गुरु आचार्य देवजी तथा अन्य प्रकाण्ड विद्वानों के संस्कृत भाषा में वैष्णव दर्शन एवं वैष्णव विचारधारा पर नियमित प्रवचन, मंदिर में होते रहते थे जिनको किशोरवय की प्रेमलताजी खूब ध्यान से सुनती रहती थी तथा असाधारण स्मरण शक्ति के कारण रात को पूरा प्रवचन लिख लिया करती थी । दूसरे दिन गुरुजी यदि कोई भी प्रश्न पूछते तो केवल बहनजी ही उसका उत्तर दे पाती थीं ।

इस प्रकार मथुरा निवास के छः सात वर्ष औपचारिक शिक्षा के स्थान पर संस्कृत भाषा की शिक्षा, गायन–ध्रुपद की शिक्षा, पाकशास्त्र में प्रवीणता, तथा सिलाई-कढ़ाई-बुनाई के काम में दक्षता प्राप्त करने में बीते तथा साथ ही साथ अधिकारी विद्वानों से वैष्णव संप्रदाय के दर्शन, तत्वज्ञान को भी सुनने समझने का तथा आत्मसात् करने का सुअवसर आपको प्राप्त हुआ । गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित प्रेमलताजी के किशोर मन पर वैष्णव दर्शन, कृष्ण भक्ति आदि का कभी न मिटने वाला स्थाई एवं गहरा प्रभाव पड़ा जो आजीवन आपके व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग बन गया ।[2]

---

१. आप एक सिद्धहस्त पाकशास्त्री भी थी । सब प्रकार के व्यंजन बनाती थी । आठ दस व्यक्तियों की रसोई भी सरलता से निपटा देती थी । प्रत्येक त्यौहार पर विशेष व्यंजन बनाती थी । हम सबने आपके हाथ की बनी रसोई खूब खाई है । अत्यन्त प्रेम से खिलाती पिलाती थी । आपके घर से बिना प्रसाद लिये निकले हों ऐसा याद नहीं ।

२. श्रीमद्भागवत पर आप प्रवचन देती थी । दिल्ली के कथक केन्द्र में आपने श्रीमद्भागवत पर चार दिन चार व्याख्यान दिये थे जो वहाँ संगृहीत है ।

प्रेमलताजी की माताजी को अपनी होनहार पुत्री का इस प्रकार केवल मंदिर के कार्यों में समय व्यतीत करना तथा फुटकर पढाइ करना अखर रहा था । वे अपनी पुत्री को विद्वान् बनाना चाहती थी । अतः उनके आग्रह पर प्रेमलताजी का औपचारिक शिक्षा का स्थगित क्रम पुनः प्रारंभ हुआ । उन दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में महिला विद्यार्थिनी को व्यक्तिगत स्तर पर पढ़ाई करते हुए (As a Private Candidate) परीक्षा देने की अनुमति थी । प्रेमलताजी मथुरा में ही घर में एम०ए० हिन्दी के अध्ययन में जुट गई । आपने वहाँ के हिन्दी के विद्वानों से भी सहायता ली तथा अपने आप हिन्दी की सौ से अधिक पुस्तकें पढ़कर परीक्षा की तैयारी की । १९५० में आप अपने पिताजी के साथ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एम०ए० हिन्दी की परीक्षा देने बनारस आयीं । उसी वर्ष आपने हिन्दी में एम०ए० कर लिया ।

१९५० में, का०हि०वि०वि० वाराणसी में, पिता पुत्री की मुलाकात उस समय विश्वविद्यालय में संगीत की कालेज स्थापित करने आये पं० ओम्कारनाथ ठाकुर से हुई । पिताजी ने पंडितजी से अपनी पुत्री को संगीत शिक्षा देने की विनती की ।

स्थगित हुआ औपचारिक शिक्षा क्रम दुगुनी तेजी से चलने लगा । एक ही वर्ष में परिश्रम करके प्रेमलताजी ने का०हि०वि०वि० से १९५१ में संस्कृत में एम०ए० व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में उत्तीर्ण कर लिया । १९४२ में बी०ए० करने के आठ वर्ष बाद १९५० तथा १९५१ में आपने दो-दो एम०ए० की उपाधि प्राप्त कर ली तथा १९५१ में ही का०हि०वि०वि० में संस्कृत की शोधछात्रा के रूप में पंजीकृत हो गईं । १९५१ से आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के महिला छात्रावास में रहने आ गई । आपके पिताजी की विनती पर पं० ओम्कारनाथ ठाकुर आप के स्थानीय अभिभावक बनने को राजी हो गये तथा अपनी नवीन

स्थापित शैक्षणिक संस्था 'श्री कला संगीत भारती' में (music college का पूर्व नाम) गायन के डिप्लोमा के तृतीय वर्ष में प्रेमलताजी को प्रवेश भी दे दिया। १९५१ से वाराणसी में आपका संस्कृत भाषा में शोधकार्य तथा संगीत की शिक्षा दोनों साथ-साथ चलने लगे। प्रारंभ की डिप्लोमा की संगीत की कक्षाएँ पंडितजी के सुयोग्य शिष्य पं० बलवंतराय भट्ट के पास थीं। उस समय श्री कला संगीत भारती की कक्षाएँ रूइया छात्रावास (लड़कों के छात्रावास) में ऊपरी मंजिल पर चलती थीं। छात्राओं को लड़कों के हास्टल में आना न पड़े इस आशय से पं० ओम्कारनाथ ठाकुर महिला कालिज में शाम को छात्राओं को संगीत सिखाने जाते थे। प्रेमलताजी को अपनी कक्षा में सीखने के उपरांत पं० भट्टजी ने महिला कालिज में पंडितजी द्वारा ली जा रही कक्षाओं में जाने की भी राय दी। इस प्रकार पं० बलवंतरायजी तथा पं० ओम्कारनाथजी दोनों से आपने गायन की शिक्षा लेना प्रारंभ कर दिया। उस समय पंडितजी अपनी पाठ्यपुस्तकें लिखवाने के लिये किसी उपयुक्त मेहनती व्यक्ति की खोज में ही थे। पं० बलवंतरायजी ने प्रेमलताजी को पंडितजी के लेखन में सहायता करने हेतु प्रेरित किया। यह एक अत्यंत शुभ प्रवृत्ति का प्रारंभ था। प्रायः आठ नौ वर्षों तक, पंडितजी बनारस में रहे तब तक प्रेमलताजी नियमित उनके पुस्तकों का लेखन कार्य सुचारू रूप से करती रही। इस व्यासजी एवं गणेशजी की जोड़ी के कारण संगीत जगत् को 'संगीतांजलि' के भाग दो से छः तथा 'प्रणवभारती' जैसा विद्वत्जन-उपयोगी ग्रंथ उपलब्ध हुआ।[१] 'प्रणवभारती' के लेखन में सबसे अधिक समय एवं श्रम लगा। प्रेमलताजी को गुरुजी का लेखन कार्य करने से

---

१. संगीतांजलि भाग-१ का प्रथम संस्करण पंडितजी के वाराणसी आगमन पूर्व ही प्रकाशित हो चुका था। बाद में भाग-१ के तीन-चार संस्करण प्रकाशित हुए जिनमें बहनजी की अहम् भूमिका थी।

संगीत शास्त्र में विशिष्ट दृष्टि मिल गई, दिशा मिल गई ।

प्रेमलताजी के मथुरा छोड़ अध्ययन हेतु बनारस चले आने के पूर्व शर्मा परिवार में रिश्तेदार की एक पुत्री का आगमन हुआ । घर में एक बच्चा रहे इस आशय से मायादेवीजी की छोटी बहन की (प्रेमलताजी की छोटी मौसी की) पुत्री उर्मिला को जो छः वर्ष की थी, मथुरा बुलाया गया । यह बच्ची भी पूर्व जन्म के ऋणानुबंध के कारण अत्यन्त सहजता से मौसी के परिवार में आ गई तथा परिवार की सदस्य बन गयी । मथुरा में उर्मिला की उत्तम शिक्षा व्यवस्था हुई तथा वह पिताजी एवं प्रेमलताजी की बहुत दुलारी बन गई । घर में सब प्यार से उसे 'भोली' कहते थे । (यह नाम इन्हीं बड़ी मौसी ने उसे शैशव में दिया था ।)

प्रेमलताजी कितनी परिश्रमी थी यह इसी से स्पष्ट होता है कि १९५१ से १९५४ तक तीन वर्ष में आपने डॉ० परशुराम लक्ष्मण वैद्य के (राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित विद्वान्) निर्देशन में 'भक्ति रसामृत सिंधु' पुस्तक पर संस्कृत में पी-एच०डी० प्राप्त कर ली तथा उसके एक वर्ष पश्चात् १९५५ में का० हि० वि० वि० स्थित प्राच्यविद्या संस्कृत-महाविद्यालय से साहित्य शास्त्र में 'आचार्य' की उपाधि प्राप्त कर ली । (आचार्य की उपाधि तब तीन वर्ष पर प्राप्त थी, एम०ए० के समकक्ष मानी जाती है) १९५५ में ही आपने गायन में 'संगीतालंकार' (B. Mus. के समकक्ष) उपाधि प्राप्त कर ली । इन तीन-तीन प्रकार के अध्ययन के साथ-साथ नित्यप्रति पंडितजी के साथ संगीत की पुस्तक के लेखन का कार्य भी बराबर चलता रहा । इस प्रकार चार-चार प्रवृत्ति में अपने को पिरोने के पश्चात् भी किसी कार्य में कोई प्रकार का प्रमाद या ढीलापन नहीं था । आपने सब कार्य चुस्त, दुरूस्त एवं सुचारू ढंग से संपन्न किये ।

वाराणसी जैसी पौराणिक विद्यानगरी में प्रेमलताजी जैसी विद्या-

पिपासु को अपने विषय के विख्यात एवं 'धुरंधर' विद्वानों के पास सीखने का एवं विद्यालाभ पाने का सुअवसर मिला । आपने अपने संक्षिप्त जीवनवृत्त (Bio-data) में अपने विशिष्ट गुरुओं का नामोल्लेख किया है वह निम्नानुसार है –

- संस्कृत एवं संस्कृत ग्रंथों के पाठ संशोधन की विधा में आपके गुरु डॉ० परशुराम लक्ष्मण वैद्यजी थे ।
- दर्शन एवं समग्र आध्यात्मिक विद्या में आपके गुरु महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज थे ।
- संस्कृत साहित्यशास्त्र में आपके गुरु स्वनामधन्य पं० महादेव शास्त्री (अष्टांग विद्या में पारंगत) एवं० पं० रामचंद्र दीक्षित थे ।
- संस्कृत व्याकरण के गुरु पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासुजी थे जिनसे आपने पाणिनि व्याकरण पढ़ा ।
- संगीत के आपके गुरु पं० ओमकारनाथजी ठाकुर थे, जो अपने काल के लोकप्रिय, अनन्य गायक एवं विद्वान् थे तथा संगीत विचारक थे ।
- भारतीय संस्कृति के विषय में अधिकृत जानकारी आपको प्रख्यात संस्कृतिविद् पं० वासुदेव शरण अग्रवालजी से प्राप्त हुई थी ।

ऐसे-ऐसे दिग्गज एवं विशिष्ट योग्यता वाले गुरुजन तथा अति विचक्षण स्मरणशक्ति, मेधाशक्ति, एकाग्रता की धनी एवं अत्यन्त परिश्रमी प्रेमलताजी जैसी विद्यार्थिनी ! क्या मणिकांचन योग था ! ऐसे ऐसे विद्वानों से विद्या प्राप्त करने से आपकी सब विषय की नींव बहुत मजबूत बन गई ।

संस्कृत में एम०ए०, पी-एच०डी०, हिन्दी में एम०ए०, साहित्यशास्त्र में 'आचार्य' एवं संगीत में 'संगीतालंकार' की उपाधि प्राप्त हो जाने के बाद नौकरी के लिए आपको कोई प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी । १९५५ में

आपको एक साथ दो-दो नियुक्ति पत्र मिले ।

१. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रवक्ता पद के लिये ।

२. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की श्री कला संगीत भारती (वर्तमान में संगीत एवं मंचकला संकाय) में संगीत के प्रवक्ता पद के लिये ।

सब बिन्दुओं से विचार करने के पश्चात् आपने का०हि०वि०वि० में ही अपनी सेवाएँ देने का निश्चय किया । उस समय आपके पिताजी श्री लालचंद शर्मा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति, प्रो० जाकिर हुसैनजी से (जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने) भेट करने गये थे । प्रो० जाकिर हुसैनजी ने कहा था कि "We are the loosers, B.H.U. has gained". प्रो० जाकिर हुसैन जैसे अनुभवी शिक्षाविद् द्वारा की गई यह टिप्पणी सिद्ध करती है कि उन्होंने बहनजी की योग्यता को अच्छी तरह से भाँप लिया था ।

१९५५ से १९८५ पूरे तीस वर्षों तक आपने का०हि०वि०वि० के संगीत संकाय में पूर्ण समर्पित भाव से अपनी अमूल्य एवं अविस्मरणीय सेवा दी । १९५५ से १९५७ दो वर्षों तक आप प्रवक्ता पद पर थी । १९५७ में ही आपको 'रीडर' पद पर नियुक्ति मिली । आप बहुत वर्षों तक संगीतशास्त्र विभाग की अध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष रही । १९८१ में आपको प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया । १९८५ से १९८८ तक आप इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ (मध्यप्रदेश) की कुलपति के पद पर कार्यरत रहीं जहाँ से आप दोनों विश्वविद्यालयों की सेवाओं से निवृत्त हो गईं ।

आपके द्वारा अनेकानेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ, अनेक विद्यार्थी तैयार हुए, अनेक सेमीनार के आयोजन हुए तथा कई संस्कृत नाटकों

का मंचन हुआ जिसमें आपने भरत-मंच को पुनःस्थापित करने का स्तुत्य कार्य किया। आप कई संस्थाओं से जुड़ीं तथा गोरक्षा आंदोलन की सक्रिय सदस्य रही। आप राष्ट्रीय स्तर पर अनेक समितियों की सदस्य रहीं, अनेक बार विदेश में शैक्षणिक प्रवास किये तथा अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित हुईं।

का०हि०वि०वि० में आपको विश्वविद्यालय की तरफ से १९५६ में निवास स्थान प्राप्त हुआ तब से माता-पिता तथा उर्मिलाजी बनारस आ गये। १९६८ में आपके पिताजी बनारस से पुनः मथुरा चले गये तथा मथुरा के पास राधाकुण्ड (गोवर्धन) में आपने संन्यास ले लिया तथा साधुजीवन व्यतीत करने लगे। अब घर में प्रेमलताजी, माताजी तथा उर्मिलाजी ही रह गई। ठीक दस वर्ष बाद १९७८ में उर्मिलाजी भी अपनी नौकरी तथा परिवार को छोड़ अध्यात्म लाभ पाने के लिए सुश्री विमला ठकारजी के पास 'आबू' चली गई। अब घर में बहनजी एवं उनकी माताजी दो ही लोग रह गये। १९८३ में साधु जीवन व्यतीत कर रहे श्री लालचंद शर्माजी का मथुरा में निधन हो गया। बहनजी ने पिताजी की तमाम मरणोपरांत उत्तर क्रियाएँ संपन्न की।

१९८८ में खैरागढ़ से निवृत्ति पाने के बाद आप बनारस आ गईं तथा का०हि०वि०वि० के नजदीक करौंदी विस्तार में आपने एक मकान खरीद लिया। आपने अपने इस मकान का नाम 'संप्रदाय' रखने को सोचा था किन्तु जाने माने विद्वान् पं० विद्यानिवास मिश्र ने जो प्रेमलता जी के स्नेही थे, आपको 'आम्नाय' नाम सुझाया तथा बहनजी ने पंडित जी का सुझाव मान्य रखते हुए अपने मकान का नाम 'आम्नाय' रखा। आज भी करौंदी, वाराणसी के मकान 'आम्नाय' में आपकी छोटी बहन डॉ० उर्मिला शर्मा आपके विशाल पुस्तक भण्डार के साथ रह रही है।

नये मकान में आने के पश्चात् आपकी माताजी जो काफी वृद्ध हो

गई थी गंभीर रूप से बीमार हो गई । माताजी की बीमारी के समय ही बहनजी की मदद में उर्मिलाजी आबू से ग्यारह वर्ष के अंतराल के बाद वापस आ गई । २५ जून १९८९ के दिन आपकी माताजी का निधन हो गया । पूर्ण वैष्णव किन्तु आर्यसमाज की विचारधारा की समर्थक बहनजी ने अपनी माता का दाह संस्कार एक पुत्र के समान स्वयं मुखाग्नि देकर किया । तमाम उत्तर क्रियाएँ पूर्ण विधि-विधान से संपन्न की तथा वैदिक अनुष्ठान भी किये ।

माताजी के निधन के पश्चात् निवृत्तिकाल अत्यधिक प्रवृत्तिमय रहा । मदद में उर्मिलाजी थी जो घर का पूरा ध्यान रखने के साथ-साथ पठन-पाठन-लेखन में भी बहनजी की सहायता कर देती थी । घर में कोई बच्चा भी रहे इस आशय से प्रेमबहनजी हिमाचल प्रदेश से चंद्रकांता नामक प्यारी सी कन्या ले आई जिसको प्यार से 'हंसी' नाम दिया । बहनजी ने हंसी को परिवार का सदस्य बनाकर रखा तथा बी०ए० तक पढ़ाया । इस समय अनेक परियोजनाएँ (Project) एवं अनेक पुस्तकों के लेखन का काम एक साथ चल रहा था । कुछ परियोजना संगीत नाटक अकादमी की थी तथा कुछ कार्य उज्जैन की कालिदास अकादमी द्वारा सौंपा हुआ था । कुछ कार्य इंदिरा गाँधी नेशनल सेन्टर फॉर आर्टस् द्वारा सौंपा गया था, कुछ काम संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता द्वारा दिया गया था, कुछ कार्य स्वयं के भी साथ-साथ चल रहे थे । अनेक देशी-विदेशी विद्वानों का आवागमन होता रहता था । कालिदास अकादमी, उज्जैन तथा संगीत रिसर्च अकादमी कलकत्ता की तरफ से आपको लेखन कार्य में, सहायता के लिये तीन सहायक मिले । अंग्रेजी लेखन कार्य में सहायक के रूप में, डॉ० कु० निहारिका लाल ने लगभग सात-आठ वर्ष तक आपके साथ कार्य किया । हिन्दी लेखन कार्य में, सहायक के रूप में, डॉ० दीप्ति सिन्हा ने कार्य किया । संस्कृत लेखन

में डॉ० उर्मिला शर्मा तो सहायता करती ही थी तथा एक वर्ष मृणालिनी मिश्रा ने भी सहायक के रूप में कार्य किया ।

१९९३ में, का०हि०वि०वि० ने आपको एमेरिटस प्रोफेसर बनाया तथा २१ अप्रैल १९९४ को आपको संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली की उपाध्यक्षा बनाया गया । उपाध्यक्ष निर्वाचित होने पर आपको एक पूर्णकालिक लिपिक, एक टंकणकर्ता तथा एक चपरासी भी सहायता के लिए मिल गये । बहनजी के पास इतना अधिक कार्य था कि सब सहायकों को वे अत्यन्त व्यस्त रखती थीं । इसके पूर्व १९८३ से १९८६ तक आप उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की अध्यक्षा रह चुकी थीं । अतः आपको अकादमी के कार्यकलापों का पर्याप्त अनुभव था ।

१९९५ से ही आपको कुछ-कुछ शारीरिक व्याधि–जैसे ज्वर, डायरिया आदि रहने लगा । बार-बार तेज ज्वर (High Fever) आते रहने से आप शारीरिक रूप से बहुत कमजोर हो गईं । १९९६ में आपकी आँख का मोतियाबिन्दु का आपरेशन हुआ । प्रथम आपरेशन में कुछ कमी रह जाने के कारण पंद्रह दिन में दूसरी बार उसी आँख का आपरेशन करना पड़ा । ९ दिसम्बर ९६ को आप पर हृदयरोग का प्रथम आक्रमण हुआ । इतनी बिमारी के बाद भी आपको विश्राम लेना स्वीकार्य नहीं था । अस्पताल से घर आने के बाद आप तुरंत पढ़ाई-लिखाई का काम प्रारम्भ कर देती थीं । मई ९७ तथा दिसम्बर ९७ में दो बार आप पर हृदयरोग का आक्रमण हुआ तथा ५ दिसम्बर ९८ को हृदयरोग का चौथा तथा अंतिम आक्रमण प्राणघातक सिद्ध हुआ । आत्मज्योति परमज्योति में विलीन हो गई । देह पंचतत्व में विलीन हो गयी । संगीत की निष्ठापूर्वक सेवा करने वाली संगीत-सेवी चली गयी ।

रूग्णावस्था में शरीर अवश्य कमजोर हो गया किन्तु अंतिम समय

तक बुद्धि सतेज थी । किसी प्रकार की कोई विस्मृति नहीं हुई । १९९७ में अपने गुरु पं० ओम्कारनाथ ठाकुर की जन्म शताब्दी समुचित ढंग से मनाने के पश्चात् ही आपने अपने जीवन की पूर्णाहुति की । यह स्मरणीय है कि पं० ओम्कारनाथ ठाकुरजी की निवृत्ति के समय १९५७ में उनकी हीरक जयंती समारोह में भी प्रेमलताजी की प्रमुखतम भूमिका थी ।

सरस्वती माता का एक नाम 'कौमारी' है । प्रेमबहनजी आजन्म कौमारी रही । आपका वैंवाहिक जीवन के प्रति कोई विशेष अनुराग नहीं था । जीवनसंगी के रूप में आपको शुद्ध ब्राह्मण, प्रचण्ड विद्वान् तथा संगीत प्रेमी व्यक्ति ही स्वीकार्य था । विधाता की कोई विशेष योजना के अंतर्गत ऐसे किसी व्यक्ति से आपका मिलना ही नहीं हुआ । पठन-पाठन में ही इतनी अनुरक्त रहती थीं कि विवाह के लिये कोई प्रयत्न ही नहीं किया ।

सरस्वती माता 'वीणा-पुस्तक-धारिणी' कही जाती है । आप भी वीणा-पुस्तक-धारिणी थीं ।

सरस्वती माँ शुभ्रवस्त्रा है । प्रेमलताजी शुभ्र चरिता थीं तथा खद्दर की प्रेमी थी ।

सरस्वती माँ जगन्माता के रूप में विख्यात है । बहनजी की अपनी कोई संतान न होते हुए भी आपका एक विशाल परिवार था तथा अपने छात्र छात्राओं को आप मातृतुल्य वात्सल्य देती रहीं । कई निर्धन कन्याओं को पढ़ाने का उत्तरदायित्व आप स्वीकार करती रहीं ।

सरस्वती माँ को 'बुद्धिदात्री' कहा जाता है । आपने भी विद्यादान देते हुए अनेक छात्र-छात्राओं के बुद्धि-कमल को विकसित किया । सरस्वती माँ को 'वाग्वाणी'-'वागेश्वरी' कहा जाता है । बहनजी का वाक् के दोनों प्रकार १. नादात्मक वाक् २. वर्णात्मक वाक् पर समान अधिकार था ।

काशी प्राचीन काल से विद्वानों की नगरी तथा विद्या का धाम रही

है । काशी की विद्वत्परंपरा विश्वविख्यात है । आ० प्रेमलताजी जैसी विद्याप्रेमी, विद्याव्यासंगी, विद्यारत व्यक्ति का काशी में ही उच्च अभ्यास प्राप्त करना तथा काशी को ही अपना कर्मक्षेत्र बनाते हुए १९९८ (केवल तीन वर्ष खैरागढ निवास छोड़ कर) तक यहाँ रहते हुए यहाँ की विद्वत् परंपरा में अपना नाम सुवर्णाक्षर से अंकित करके जाना बाबा विश्वनाथ की किसी अनुपम योजना के अनुसार ही संभव हुआ । अन्यथा पंजाब की 'कुड़ी', दिल्ली मथुरा में पली-बढ़ी काशी में कैसे आ के बस जाती ?

●

'निबध्ध' और 'अनिबध्ध' पर भरत से लेकर शार्ङ्गदेव तक की विचारधारा का यह निष्कर्ष निकलता है कि नियत स्वरूप, सतालता, छन्दोबध्धता नियमबद्धता और धातु, अङ्ग आदि के माध्यम से निर्मित बन्ध विशेष (form) इत्यादि 'निबध्ध' में अन्वित है । दूसरी ओर 'अनिबद्ध' में, इसके विपरीत, अनियत स्वरूप, अतालता, छन्दोहीनता, नियमबद्धता का अभाव और 'बन्द्ध' हीनता का भाव है ।

सामान्य भाषा में 'बंधा हुआ' और 'न बंधा हुआ' से हम संगीत में दो अर्थ समझते हैं । एक तो सतालता और दूसरा पूर्वयोजना । ये दोनों पक्ष परस्पर व्यावर्तक (mutually exclusive) हैं, यानी सताल प्रयोग में पूर्वयोजना अनिवार्य नहीं है, तत्काल उद्भावना भी सताल प्रयोग में संभव है, और वैसे ही पूर्वयोजना भी अताल रूप में बहुत कुछ संभव है । इस प्रकार ताल की दृष्टि से जो निबद्ध है, पूर्वनियोजित न होने के कारण वह अनिबद्ध भी है, वैसे ही अताल होने के कारण जो अनिबद्ध है, पूर्वनियोजित होने के कारण वह निबद्ध भी हो सकता है ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा 'भावरंग लहरी' भाग-२

द्वितीय अध्याय

प्रो० प्रेमलता शर्मा 'भारतीय संगीतशास्त्रवेत्ता' के रूप में

प्रो० प्रेमलता शर्मा की राष्ट्रीय एवं अंताराष्ट्रीय पहचान एक नित्य पठनशील, मननशील, समर्पित एवं विद्वान् भारतीय संगीतशास्त्रवेत्ता के रूप में ही अधिक है। आपने संगीत के अलावा भी अन्य अनेक दिशाओं में उल्लेखनीय कार्य किये है तथा इस पुस्तक के द्वारा पाठक आपके अन्य कार्यों से, अन्य विशेषताओं से भी परिचित हो जाएँगे। अन्यथा प्रधानतः देश में तथा संगीतजगत् में आपका नाम विद्वज्जनमान्य भारतीय संगीतशास्त्रज्ञ के रूप में ही अधिक प्रचलित है। संगीतशास्त्र में आपने बहुत अधिक तथा बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं फिर भी आपका नाम पं० भातखंण्डेजी की तरह संगीत के प्रत्येक छोटे से छोटे विद्यार्थी तक पहुँच नहीं पाया है। इसका कारण बताते हुए प्रो० एन० रामनाथन् कहते हैं– "Dr. Sharma did not become a household name in the world of music as perhaps V.N. Bhatkhande and P. Sambamoorthy did. This can be explained by the simple fact that she never wrote any text book for undergraduate courses. She was a scholar's scholar and her work remained at a high scholarly level[1]."

ऐसा माना जाता है कि सृष्टि संचालक सत्ताओं द्वारा किसी विशेष आत्मा को धरती पर किसी विशेष कार्य को संपन्न करने हेतु भेजा

1. 'A great Scholar and activist' by Prof. N. Ramnathan in 'Shruti' Feb. 1999 issue.

जाता है। लगता है प्रो० प्रेमलता शर्माजी को ईश्वर ने भारतीय संगीत शास्त्राध्ययन की परंपरा को पुनः प्रतिस्थापित करने के कार्य के लिये ही जैसे इस धरती पर भेजा हो। जन्म से ही तीव्र मेधाशक्ति एवं स्मरणशक्ति की धनी थी। आप हमेशा से जितश्रमी एवं नित्य अभ्यासी रही। बाल्यकाल से ही आपमें गायन-वादन एवं नर्तन के संस्कार पड़ गये। आपने वाद्य संगीत में सितार, तबला, तंजोरी वीणा, वायलिन आदि थोड़ा सीखा था किन्तु दिलरूबा वाद्य आप साधिकार बजाती थीं तथा उसकी तो सिद्धहस्त कलाकार भी बन गई थीं। गायन में प्रारंभ में ध्रुवपद की तथा बाद में ख्याल गायन की भी शिक्षा ली। ध्रुवपद प्रेम अंत तक बना रहा। संगीत के तीनों अंग गायन-वादन एवं नर्तन की जानकारी होने के उपरान्त अनेक भाषा, दर्शन, भारतीय संस्कृति, साहित्यशास्त्र आदि का विपुल ज्ञान आपके पास था। एक सफल संगीतशास्त्रज्ञ होने के लिए आवश्यक सब घटक एवं सब गुण आपमें विद्यमान थे।

१९५०-५१ के वर्ष डॉ० प्रेमलता शर्माजी के जीवन के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण वर्ष थे। १९५० में ही आपका ७-८ वर्षों से स्थगित औपचारिक शिक्षाक्रम पुनः प्रारंभ हुआ। १९५० में ही आप मथुरा से वाराणसी एम० ए० हिन्दी की परीक्षा देने हेतु आई। १९५१ में ही आपने संस्कृत में एम० ए० की परीक्षा दी। १९५१ में ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एक ही वर्ष पूर्व स्थापित श्री कला संगीत भारती (फेकल्टी ऑफ परफार्मिंग आर्टस् का पुराना नाम) में आपने प्रवेश लिया तथा स्वनामधन्य पं० ओम्कारनाथ ठाकुरजी से गायन की शिक्षा लेना प्रारंभ किया। उन दिनों पंडितजी अपनी पुस्तकों के लेखन हेतु किसी उपयुक्त व्यक्ति की तलाश में ही थे। १९५४ में ही पं० बलवंतराय भट्टजी के सूचन पर आप पंडितजी के पुस्तकों का लेखन कार्य करने को तत्पर हुईं तथा यह

घटना आपके जीवन की अति महत्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई ।

पंडित ओम्कारनाथजी जब वाराणसी में होते तब नियमित प्रातः दो या तीन घण्टे उनकी पुस्तकों का लेखन आप करती । पंडितजी लिखवाते जाते तथा उनकी प्रिय शिष्या प्रेमलताजी लिखती जाती । पं० ओम्कारनाथ ठाकुर जैसी विभूति के नित्य सान्निध्य एवं लेखन से प्रेमलताजी में क्रियात्मक संगीत के साथ-साथ संगीतशास्त्र की भी गहन समझ विकसित होती गई । शास्त्र की ओर आपकी रूचि बढ़ गई । संगीतशास्त्र की क्या-क्या समस्याएँ हैं, उसमें क्या-क्या कार्य करना शेष है, किस-किस दिशा में काम होना आवश्यक है आदि प्रश्नों के प्रति आप की दृष्टि खुलती गई । पं० ओम्कारनाथजी के विषय में लिखे एक लेख में डॉ० प्रेमलता शर्मा ने लिखा है "पूज्यपाद पंडितजी ने प्राचीन ग्रंथकारों, विशेषतः भरत, मतंग के शास्त्रीय विवेचन में रुचि जगाने, श्रद्धा उमगाने और आस्था जगाने का स्तुत्य कार्य किया । पण्डितजी का विशेष योगदान यह है कि आपने हमारी दृष्टि को एक नई दिशा दी । सही दिशा में दृष्टि घुमाने पर सत्य का दर्शन हो तो दृष्टि घुमाने के प्रेरक को जो श्रेय हो सकता है वह आपको अवश्य मिलेगा[१] ।" वाराणसी में, १९५१ से १९५४ तक प्रेमलताजी की दिनचर्या एक तपोनिष्ठ विद्यार्थिनी की थी । प्रातः संस्कृत के साहित्याचार्य पाठ्यक्रम का अध्ययन, दोपहर में अपनी स्वयं की पी-एच०डी० का अध्ययन तथा संध्या को श्री कला संगीत भारती में क्रियात्मक संगीत की शिक्षा । १९५४ से नित्यप्रति पंडितजी की पुस्तकों का लेखन कार्य प्रारंभ हुआ । भविष्य की एक समर्थ संगीतशास्त्री तैयार हो रही थी । प्रायः आठ नौ वर्षों तक आपने

---

१. डॉ० प्रदीपकुमार दीक्षित लिखित एवं संकलित पुस्तक 'वाग्गेयकार पं० ओम्कारनाथ ठाकुर', में डॉ० प्रेमलता शर्माजी के लेख 'संगीतशास्त्र में पंडितजी के योगदान' से उद्धृत ।

पंडितजी की पुस्तकों का लेखन कार्य अपूर्व निष्ठा से किया ।

प्रारंभ के कुछ वर्ष आप एक विद्यार्थिनी के रूप में पंडितजी जितना लिखवाते उतना लिखती तथा प्रूफ रीडिंग इत्यादि कार्य भी करती । किन्तु समय बीतते-बीतते लेखन में आपकी भूमिका उत्तरोत्तर अधिक महत्त्वपूर्ण होती गयी । आपकी कुशलता में निरंतर वृद्धि होती गई तथा आप लेखन में पंडित जी को अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव देने लगी जो पंडितजी मान्य रखते थे । कुछ और वर्ष बीतने पर आप एक सहलेखिका के स्तर पर आ गई । पंडितजी की पुस्तकों के प्रकाशन में आपकी भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण एवं विशेष थी उसका प्रमाण तो उन पुस्तकों के आमुख, प्रस्तावना आदि में ही मिल जाता है जहाँ पंडितजी ने बहनजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । गुरुजी के पुस्तकों का लेखन आदि सब कार्य आप निस्वार्थ भाव से करती रही ।

पंडितजी की कुल सात पुस्तकें प्रकाशित हुईं । उनमें छः पुस्तकें तो पाठ्यपुस्तक श्रृंखला 'संगीतांजलि' के छः भाग के रूप में है तथा एक विद्वज्जन योग्य ग्रंथ 'प्रणवभारती' है । पंडितजी की पाठ्यपुस्तक श्रृंखला 'संगीतांजलि' के प्रत्येक भाग में दो-दो खण्ड है जिनमें से प्रथम खण्ड शास्त्रचर्चा का है तथा द्वितीय खण्ड राग, उनके विवरण, स्वर लिपि युक्त बंदिशें, तान, आलाप इत्यादि का है । पंडितजी की पुस्तकों में डॉ० प्रेमलता शर्माजी की भूमिका निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट होगी ।

१. संगीतांजलि भाग–१

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण पंडितजी के वाराणसी आगमन से पूर्व ही १९३८ में मुम्बई से प्रकाशित हो चुका था । इसका द्वितीय संस्करण १९५९ में प्रकाशित हुआ । पुस्तक के निवेदन में पृष्ठ सात पर पंडितजी लिखते हैं "मेरे अन्य प्रकाशनों के सदृश इस भाग १ के द्वितीय संस्करण का सारा भार डॉ० प्रेमलता शर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी०,

साहित्याचार्य, संगीतालंकार, रीडर इन थियरी एवं रीसर्च, श्री कला संगीत भारती और चि० सुभद्रा कुमारी[1] ने उठाया है । मैं उन्हें हार्दिक कल्याण आशीष देता हूँ ।"

२. संगीतांजलि भाग–२

इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति फरवरी १९५४ में प्रकाशित हुई । द्वितीय आवृत्ति १९७५ में पं० ओंकारनाथ ठाकुर की मृत्यु के आठ वर्ष बाद प्रकाशित हुई । द्वितीय आवृत्ति के निवेदन में पं० बलवन्तराय भट्ट ने लिखा है "विशेषकर इस द्वितीय संस्करण के लिये मेरी विनंति को सहर्ष स्वीकार कर का०हि०वि०वि० के संगीतशास्त्र विभाग की अध्यक्षा डॉ० कु० प्रेमलता शर्माजी ने 'राग लक्षण विचार' शीर्षक से एक अत्यन्त उपयोगी लेख लिखा है । एतदर्थ मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ । इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में पूज्य पंडितजी ने 'कुछ शास्त्रीय शब्दों की व्याख्या' शीर्षक से जो लेख दिया है, इसका नये सिरे से यथेष्ट विस्तार कर डॉ० प्रेमलताजी ने उक्त शास्त्रीय विषय अपनी अनुभवसिद्ध सुगम शैली में अत्यन्त सरल भाषा द्वारा समझाया है ।"

३. संगीतांजलि भाग–३

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण १९५६ में प्रकाशित हुआ । इसके प्रकाशन में डॉ० प्रेमलता शर्माजी ने समग्र पाण्डुलिपि लेखन तथा प्रूफ रीडिंग का कार्य अत्यंत श्रम के साथ किया था । इसका द्वितीय संस्करण १९७९ में प्रकाशित हुआ । इस द्वितीय संस्करण में डॉ० प्रेमलता शर्मा जी ने 'शास्त्रीय चर्चात्मक परिशिष्ट' लिखा है जिसमें काकु, गमक, स्थाय, निबद्ध तथा अनिबद्ध गान इत्यादि को सरल भाषा में समझाया है, जो छात्रोपयोगी है ।

---

१. चि० सुभद्राकुमारी वही डॉ० सुभद्रा चौधरी है जिन्होंने अनेक पुस्तकों का लेखन किया है तथा जो इस समय देश की जानी मानी संगीतशास्त्री हैं ।

४. प्रणवभारती

इसका प्रथम संस्करण, १९५६ में प्रकाशित हुआ। पंडितजी का यह ग्रंथ विद्वज्जनों के लिये था। पूरा ग्रंथ 'स्वरशास्त्र' पर लिखा गया है। इस पुस्तक में नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति, वर्ण, अलंकार, तान आदि पर पाण्डित्य पूर्ण विवेचन है। इस ग्रंथ के प्रकाशन में डॉ० प्रेमलताजी ने अथक परिश्रम किया। ग्रंथ के प्राक्कथन में पण्डितजी लिखते हैं–

"इस ग्रंथ के लेखन के पीछे पूज्यपाद गुरूदेव से (पं० विष्णु दिगम्बरजी) लेकर अनेक स्वजन, मित्र, बन्धु, शिष्य आदि सभी ने मेरी बुद्धि, आत्मा को जागृत करने का यत्न किया है। उन सब में अधिक, मेरे लेखन आलस्य को दूर करके निरन्तर प्रेरणाशक्ति के रूप में जिसने मुझे उत्तेजित किया, जिसके अभाव में यह ग्रंथ शायद अक्षरदेह में अवतरित न होता, जिसके लालन-पालन के बिना यदि यह जन्म पाता तो भी अपुष्ट ही रह जाता, उस प्रेरक और उत्तेजक शक्ति का अभिनन्दन किये बिना यह प्राक्कथन पूर्ण नहीं हो सकता। उसका नाम है डॉ० प्रेमलता शर्मा। उनकी प्रतिपल और पग-पग पर प्राप्त सहाय से ही यह ग्रंथ ग्रथित हो सका है।

मेरे यहाँ कई शिष्य शिष्याएं आए, सीखे, अपनी अपनी शक्तिअनुसार पाए और विदा हुए। परंतु उन सबमें डॉ० प्रेमलता शर्मा ही एक मात्र निस्वार्थ शिष्या भगवान् ने मुझे दी, जिसने मुझमें निहित शक्तियों को पहिचाना और उन्हें प्रकाश में लाने के लिए और अक्षरदेह द्वारा अमर बनाने के लिये, गीता के संयमी के सदृश रात को दिन में और दिन को रात में परिणत किया। कबीर साहब ने ठीक ही कहा है–

सुखिया सब संसार, खावे और सोवे।
दुखिया दास कबीर, जागे और रोवे।।

डॉ० प्रेमलता शर्मा ने उसी प्रकार जागकर और मुझे जगाकर इस कार्य को संपन्न किया है। यदि संगीत के क्षेत्र में फैला हुआ तमस् इस ग्रंथ के द्वारा दूर हो सका तो उसका श्रेय केवल मुझे ही नहीं, डॉ० प्रेमलता शर्मा को भी होगा। मैं निगूढ़ अन्तःकरण से उनके अपार श्रम की सार्थकता चाहता हूँ और तज्जन्य श्रेय का उन्हें पूर्ण अधिकार प्रदान करता हूँ।" ('प्रणवभारती' ग्रंथ के प्राक्कथन से उद्धृत)।

एक गुरू द्वारा शिष्या के योगदान की हृदय खोलकर की गई प्रशंसा ही बताती है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन में डॉ० प्रेमलता की कितनी सशक्त भूमिका रही होगी। 'प्रणवभारती' का द्वितीय संशोधित संस्करण १९९७ में, पंडित जी की जन्मशताब्दी के वर्ष में, प्रकाशित हुआ। इसमें मूल ग्रंथ को अक्षुण्ण रखते हुए संशोधन के बिन्दु टिप्पणियों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। यह कष्टसाध्य कार्य प्रो० सुभद्रा चौधरी ने अत्यन्त परिश्रम एवं समर्पित भाव से किया है जिसकी प्रो० प्रेमलता शर्मा ने बहुत प्रशंसा की है।

५. संगीतांजलि भाग–४

इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति का प्रकाशन १९५७ में हुआ। प्रथम शास्त्रचर्चा के खण्ड के अंतर्गत नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, रागों में प्रयुक्त सूक्ष्म स्वर, वीणा के तार पर पं० अहोबल के अनुसार स्वर स्थापना, संगीत लिपियों का परिचय तथा ध्वनि के वैज्ञानिक अध्ययन का अल्प परिचय दिया गया है। द्वितीय खण्ड में नव रागों की रूपरेखा, बंदिशें, तान, आलाप दिये गये हैं। परिशिष्ट में मांड, पीलू तथा पहाड़ी जैसे उपशास्त्रीय संगीत के रागों की जानकारी दी गई है। इस पुस्तक की दूसरी आवृत्ति बहुत वर्षों के अंतराल के बाद १९९७ में पं० ओमकारनाथ जी की जन्मशताब्दी वर्ष में प्रकाशित हुई। इस नवीन आवृत्ति का संपादन पं० बलवंतराय भट्ट एवं डॉ० प्रेमलता शर्मा ने किया है।

६: संगीतांजलि भाग–५

संगीतांजलि पाठ्यपुस्तक शृंखला के भाग-५ तथा भाग-६ शास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । पाँचवे भाग का प्रथम संस्करण सितम्बर १९५८ में प्रकाशित हुआ ।

पुस्तक के प्रथम खण्ड में प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक के भारतीय संगीत शास्त्र ग्रंथों का अल्प परिचय दिया गया है । शास्त्रीय विवरण में ग्राम, मूर्च्छना, चतुःसारणा, श्रुतियों के मान, शुद्ध विकृत स्वरों का इतिहास तथा अंत में दो स्वर, तीन स्वर, चार स्वर, पांच स्वर, छः स्वर तथा सात स्वरों के तमाम स्वर प्रस्तार (कूटतान) दिये हैं जिसके कारण इस भाग का महत्त्व अत्यंत बढ़ जाता है । द्वितीय खण्ड में नव राग तथा परिशिष्ट में चार राग मिलाकर कुल तेरह रागों का विस्तृत विवरण, बंदिश, तान, आलाप इत्यादि दिया गया है ।

भाग-५ का द्वितीय संस्करण फरवरी १९९९ में ४१ वर्ष बाद प्रकाशित हुआ । पंडितजी का निधन तो १९६७ में ही हो चुका था । नवीन संस्करण छपते समय संगीत शास्त्र में कतिपय अवधारणाएँ बदल चुकी थीं या अधिक स्पष्ट हो चुकी थीं । प्रो० शर्मा की सलाह के अनुसार प्रो० सुभद्रा चौधरी ने पंचम भाग के शास्त्रखण्ड को परिष्कृत किया है-विद्यार्थियों के लिए अधिक सुस्पष्ट बनाया है ।

७. संगीतांजलि भाग–६

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण जनवरी १९६२ में प्रकाशित हुआ । इसके प्रथम खण्ड में १२५ पृष्ठों में राग की जननी 'जाति' विषय पर तथा राग-वर्गीकरण की विधविध पद्धतियों का विस्तृत विवरण है । 'जाति' पर इतना विस्तृत विवरण अन्य किसी आधुनिक ग्रंथ में देखने को नहीं मिलता । द्वितीय खण्ड में नव रागों का विस्तृत विवरण, बंदिशें, तान, आलाप इत्यादि दिया गया है । इस पुस्तक की द्वितीय

आवृत्ति मार्च १९९८ में प्रकाशित हुई ।

इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के आमुख में, पं० ओम्कारनाथजी ने बहनजी की प्रशंसा में लिखा हैः "जिनके घोर परिश्रम, आत्मसंयम और गुरूसेवा की भावना से इसका प्रकाशन संभव हो सका है; वह मेरी नितान्त प्रिय छात्रा चि० डॉ० प्रेमलता शर्मा भी मेरे अन्य प्रकाशनों की भांति इस प्रकाशन के श्रेय की अधिकारिणी है । मुझ जैसे गुरू के कठोर विनयन का परिपालन, एक बार लिखे हुए को पुनः पुनः संशोधित, परिवर्तित, परिवर्धित कराने की मेरी प्रवृत्ति में शिष्यजनोचित सहयोग, ये असाधारण गुण मैंने इनमें पाए हैं । इतने दीर्घकाल के सहकार से अब मुझमें और उनमें इतना तादात्म्य भाव स्थापित हो गया है कि विचार और वाणी में, भाव और भाषा में संपूर्ण अभिन्नता आ गई है । अतः मैं अब विश्वासपूर्वक अपने सारे अनुसन्धान कार्यों की विरासत उन्हें सौंप कर निश्चिन्त होता हूँ । मेरे जीवन के पश्चात् जो भी कार्य शेष रहेगा उसे ये सफलतापूर्वक पूर्ण कर सकेंगी और मेरे जीवनकार्य को व्यापक तथा समृद्ध बना सकेंगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है । अब भविष्य के प्रकाशन मेरे ही नाम से न होकर युग्म नाम से होंगे, यह घोषित करते हुए मैं अपार आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ "[1] ।

अफसोस ! इससे आगे पंडितजी का कोई नवीन प्रकाशन संभव नहीं हो पाया । १९५७ में पंडितजी की श्री कला संगीत भारती के प्राचार्य पद से निवृत्ति के बाद डॉ० प्रेमलता शर्मा को संस्था की स्थानापन्न प्राचार्या नियुक्त किया गया । कालिज के तथा अपने शोध प्रभाग के उत्तरदायित्वों का बोझ डॉ० प्रेमलता शर्मा पर उत्तरोत्तर बढ़ने लगा । वे

---

१. यहाँ यह उल्लेख प्रासंगिक होगा कि संगीतांजलि के तीसरे से छठे भागों में नोटेशन तैयार करने और उनकी प्रेस कोपी बनाने का कष्टसाध्य संपूर्ण कार्य पंडितजी की ही शिष्या सुश्री सुभद्रा चौधरी ने किया था ।

अधिक व्यस्त रहने लगी । पंडितजी भी १९६३ के बाद वाराणसी छोड़कर भड़ोंच (गुजरात) रहने चले गये । पंडितजी के नवीन पुस्तकों के लेखन का क्रम अवरूद्ध हो गया । गुजरात में पंडितजी को बहनजी जैसा समर्थ एवं समर्पित कोई व्यक्ति नहीं मिल पाया जो उनके लेखनकार्य को आगे बढ़ाता । गुजरात गमन के बाद से तो पंडितजी गंभीर रूप से बीमार हो गये तथा १९६७ में आप का स्वर्गवास हो गया । बहनजी पंडितजी के मरणोपरान्त भी उनकी पुस्तकों के नवीन संस्करण में अपना योगदान देती रहीं । आवश्यकता पड़ने पर उनमें अपेक्षित सुधार भी किया, नवीन परिशिष्ट भी लिखे तथा नवीन आवृत्ति को अधिक छात्रोपयोगी बनाने में अपनी भूमिका का समुचित निर्वाह करती रहीं ।

संगीत एक कला है तथा साथ ही उसे एक विद्या (गांधर्व विद्या) का दर्जा भी दिया गया है । संगीत का अपना एक विस्तृत शास्त्र है तथा अन्य किसी भी कला की अपेक्षा प्राचीन काल से ही संगीत में अत्यधिक लेखन कार्य हुआ है । आज उपलब्ध संगीत के लक्षण ग्रंथों में अधिकांश मध्य युग एवं आधुनिक युग की रचनाएँ हैं । प्राचीन युग के अनेक ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं तथा जो थोड़े बहुत उपलब्ध भी हैं उनमें से कुछ ग्रंथ खण्डित अवस्था में मिलते हैं (अर्थात् पुस्तक का कुछ अंश मिलता है तथा बाकी अंश अनुपलब्ध है) । इन थोड़े से उपलब्ध ग्रंथों में ग्रंथकारों ने बहुत से पूर्वाचार्यों का तथा उनके द्वारा लिखित ग्रंथों का नामोल्लेख किया है और उन ग्रन्थों के उद्धरण भी दिये हैं । इस पर से यह प्रबल अनुमान किया जाता है कि प्राचीन काल में गांधर्व विद्या पर विपुल लेखन कार्य हुआ था किन्तु अधिकांश प्राचीन ग्रंथ आज अनुपलब्ध है ।

हमारे देश में क्रियात्मक संगीत की मौखिक शिक्षा परम्परा प्राचीनकाल से आज तक अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है । क्रियात्मक संगीत की

भांति प्राचीन काल में संगीत शास्त्राध्ययन, लेखन, पठन-पाठन की गुरू परम्परा भी चलती थी । आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्य कला आदि में शास्त्राध्ययन की परंपरा चलती रही किन्तु दुर्भाग्यसे मध्ययुग के बाद संगीत-शास्त्राध्ययन की परंपरा विच्छिन्न हो गई । संगीतकारों ने केवल क्रियात्मक संगीत की साधना को ही अपना लक्ष्य बना लिया तथा शास्त्राध्ययन के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टि रखी । मध्ययुग में तथा बाद के युग में अनेक हिन्दू-मुस्लिम संगीतज्ञों ने संगीत जगत् को अपना अमूल्य योगदान दिया किन्तु संस्कृत भाषा की जानकारी के अभाव में वे संगीतशास्त्र ग्रंथों को जो अधिकतर संस्कृत भाषा में लिखे गये थे, पढ़ नहीं पाये तथा समझ नहीं पाये । वास्तव में संगीत के ग्रंथों का अध्ययन उतना सरल या सहज नहीं हैं । संस्कृत भाषा जानने वाला उन ग्रंथों को पढ़ तो सकता है किन्तु संगीत जैसे गहन एवं प्रयोग प्रधान विषय को क्रिया कुशलता के अभाव में सही ढंग से समझ नहीं सकता । वास्तविक तथ्य का दर्शन तभी संभव है जब पाण्डित्य के साथ-साथ संगीत में क्रियाकुशलता भी हो । तभी लक्ष्य-लक्षण संबंध को यथायथ रूप में समझा जा सकता है, समझाया जा सकता है । मध्ययुग में दुर्भाग्य से स्थिति ऐसी थी कि जो संगीत में क्रियाकुशल थे वे पाण्डित्य से परे थे तथा जो पण्डित थे वे क्रियाकुशलता से रहित थे ।

बीसवीं शताब्दी भारतीय संगीत के उत्थान के साथ-साथ भारतीय संगीत शास्त्रग्रंथों के पुनरुद्धार की शताब्दी मानी जानी चाहिये । प्रातः स्मरणीय पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्करजी एवं पूज्य पं० विष्णु नारायण भातखण्डेजी के सत्प्रयत्नों से क्रियात्मक संगीत की शिक्षा में तथा संगीत एवं संगीतकारों की सामाजिक स्थिति में क्रांतिकारी, अनुकूल एवं प्रभावोत्पादक परिवर्तन हुए । इन्हीं दोनों विद्वानों के प्रयत्न स्वरूप संगीतशास्त्र पर भी संगीतज्ञों का ध्यान आकृष्ट हुआ । पं० भातखण्डेजी

ने अनेक प्राचीन एवं मध्यकालीन शास्त्र ग्रंथों का अध्ययन किया तथा स्वयं शास्त्र की अनेक पुस्तकों का लेखन किया। आपके तथा विष्णु दिगम्बरजी के दृष्टिकोण में बहुत अंतर था। जहाँ विष्णु दिगम्बरजी भरत एवं मतंग के सिद्धान्तों को आज भी उपयुक्त मानते थे वहाँ भातखण्डेजी प्राचीन सिद्धान्तों को आज के संगीत में अप्रासंगिक मानते थे। पं० विष्णु दिगम्बरजी का प्राचीन ग्रंथकार भरत एवं मतंग आदि के लेखन पर श्रद्धाभाव पंडित ओम्कारनाथ जी में पूर्णरूप से उतरा। आपको भी इन प्राचीन आचार्यों पर अत्यधिक श्रद्धा भाव था। आपने नाट्यशास्त्र का बहुत वर्षों तक अध्ययन किया, तत्पश्चात् ही 'प्रणवभारती' के लिए लेखन आरंभ किया। यह विशेष ध्यान देने की बात है कि जब 'प्रणवभारती' का प्रकाशन हुआ तब तक अभिनवगुप्त की 'अभिनवभारती' का प्रकाशन नहीं हुआ था। पं० ओमकारनाथजी ने 'अभिनवभारती' की सहायता के बिना भरत को समझने का प्रयत्न किया। आपका यह प्राचीन ग्रंथकारों (भरत, मतंग आदि) के प्रति आदरभाव डॉ० प्रेमलता शर्मा को विरासत में मिला।

वर्तमान काल में पं० भातखण्डेजी के उपरांत पं० आचरेकर, रायबहादुर देवल, मि० क्लेमेण्ट, श्री मुले, श्री फॉक्स स्ट्रेंगवेज, पं० ओम्कारनाथ ठाकुर, के० वासुदेव शास्त्री, पं० कैलाशचंद्र देव बृहस्पति, ठाकुर जयदेव सिंह, प्रो० बी०सी० देव, श्री रानडे, श्री आर० सत्यनारायण, प्रो० आर० सी० मेहता आदि अनेकों ने संगीत के शास्त्र ग्रंथों का तथा पाश्चात्य म्यूजीकोलोजी का अध्ययन कर प्राचीन अवधारणाओं तथा सांगीतिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करने का प्रयास किया[१]। इन्हीं सब विद्वानों के क्रम में इस क्षेत्र में अमूल्य योगदान देने वाली प्रो० प्रेमलता

१. इनमें कोई नाम यदि छूट गया हो तो इसे कृपया अवमानना न समझे, मेरी जानकारी का अभाव समझें।

शर्मा का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित कर सकते हैं ।

प्रो० प्रेमलता शर्माजी स्वयं कहती थी कि म्यूज़िकॉलोजी के क्षेत्र में उनका आगमन आकस्मिक था । आप मूलतः संस्कृत की तथा संस्कृत साहित्य की छात्रा थी । आपका पी-एच०डी० भी संस्कृत साहित्य में श्री रूपगोस्वामी जी के ग्रन्थों में से विशेषतया 'भक्तिरसामृतसिंधु' पर था । संगीत का आपको बचपन से ही शौक (Hobby) था, संगीत से प्रेम था । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उस समय किसी और विषय की पढ़ाई के साथ-साथ संगीत की शिक्षा सहज उपलब्ध थी । इस सुविधा का लाभ लेते हुए आप संस्कृत-साहित्य एवं संगीत, दोनों विषय साथ-साथ अत्यंत मेहनत से पढ़ने लगीं । आपकी योग्यता एवं मेहनत करने की क्षमता देखते हुए आप पर एक तीसरे काम का भी आरोपण आपकी सहमति से हुआ । वह काम था, पंडित ओम्कारनाथ ठाकुरजी की पुस्तकों का लेखन । यहाँ से आपके जीवन की दिशा बदलनी आरंभ हो गई । जब आपने अपनी पढ़ाई के अंत में मिली दो दो नियुक्तियों में से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में श्री कला संगीत भारती में संगीत के प्रवक्ता के रूप में कार्यारंभ किया तब से आप पूर्ण रूप में संगीत एवं संगीतशास्त्र के क्षेत्र में आ गई ।

श्री कला संगीत भारती की स्थापना (१९५०) के समय से ही उसमें एक शोध प्रभाग चल रहा था जिसका नेतृत्व फ्रांसीसी विद्वान् श्री एलन डेनल्यू कर रहे थे । उनकी सहायता के लिए प्रभाग में एक पूर्ण कालीन शोध-सहायक कार्य कर रहा था । उन्होंने संगीत संबंधी कुछ प्रारंभिक शोध कार्य शुरू कर दिये थे लेकिन १९५३ में उनको अपने देश फ्रांस वापस जाना पड़ा जिससे उनके द्वारा शुरू किये गये कार्य अधूरे रह गये। दो वर्ष तक इस प्रभाग में कुछ विशेष काम नहीं हो पाया । इस प्रभाग के नेतृत्व के लिये एक पठनशील संगीतशास्त्री की

आवश्यकता थी । इस कार्यभार को सँभालने के लिये डॉ० प्रेमलता शर्मा की १९५५ में इस प्रभाग में नियुक्ति की गई । आपने दो साल से सुषुप्त पड़े इस प्रभाग में प्राण संचार कर दिया, उसका पुनर्गठन किया, उसको व्यवस्थित किया । १९५७ में, आपको रीडर इन थियरी ऍण्ड रिसर्च के पद पर नियुक्त किया गया । प्रारंभ के ५-७ वर्ष इस प्रभाग का मुख्य कार्य संगीतशास्त्र-ग्रंथों पर ही केन्द्रित था । डॉ० प्रेमलता शर्मा ने संगीत के अनेक ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त कीं तथा अनेक ग्रंथों का पाठ संशोधन प्रारंभ कर दिया । संस्कृत ग्रंथों के पाठसंशोधन की विधि आपने अपने संस्कृत के गुरू डॉ० परशुराम लक्ष्मण वैद्यजी से सीखी थी । उस विधि के प्रयोग द्वारा आपने संगीत के शास्त्रग्रंथों का पाठ संशोधन करना प्रारंभ किया । आप संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बांग्ला, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं की जानकार थीं । क्रियात्मक संगीत में भी एम० म्यूज० तक का पाठ्यक्रम सीख चुकी थी तथा शोध की आधुनिक, नवीनतम विधियों से भी परिचित थीं । शोध विभाग में आपके साथ दो पूर्णकालीन शोध सहायक कार्यरत थे । ये दोनों भी विद्वान् थे । एक थे डॉ० रवीन्द्र कुमार श्रृंगी तथा दूसरे थे पं० रतिनाथ झा । पं० रतिनाथ झा जब का०हि०वि०वि० के संस्कृत महाविद्यालय में स्थानांतरित हो गये तो उनके स्थान पर आए पं० महेश्वर झा । इस शोध प्रभाग के उद्देश्य निम्नलिखित थे ।

१. प्राचीन शास्त्रग्रंथों में भारतीय संगीत के जो लक्षण दिये गये थे उनका आधुनिक प्रयोगात्मक संगीत के साथ (लक्ष्य के साथ) संबंध स्थापित करना ।
२. संगीत के ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त करके उनका पाठसंशोधन कर उन्हें प्रकाशित करवाना ।
३. इन ग्रंथों का हिन्दी या अंग्रेजी भाषा में भाषान्तर तैयार

करना ।

४. शोध संबंधी जानकारी (डाटा) इकट्ठी करना एवं अनुक्रमणिका (Index) तैयार करना जिससे भावी शोधकर्ताओं को सहायता मिल सके ।

५. संगीत कालेज के शोध छात्रों को शोधसामग्री संग्रह (data collection) में मदद करना ।

इस विभाग में डॉ० प्रेमलता शर्माजी ने जिन ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त कीं तथा जिनकी दो-दो, तीन-तीन प्रतियाँ तैयार करवाईं उनमें प्रमुख हैंः–१. महाराणा कुंभा का 'संगीतराज' २. श्रीकण्ठ की 'रसकौमुदी', ३. 'अभिनवभारती' के २९-३० तथा ३१ वें अध्याय ४. शुभंकर का 'संगीत दामोदर' ५. गंगाराम द्वारा ब्रजभाषा में लिखी 'संगीतरत्नाकर' की टीका 'संगीत सेतु' ६. नंदिकेश्वर का 'भरतार्णव' इत्यादि ।

इस विभाग में बहनजी ने ऊपरोक्त पुस्तकों के पाठसंशोधन के अतिरिक्त कतिपय छोटे-छोटे प्रोजेक्ट पर भी काम प्रारंभ कर दिया । जैसेः- १. नाट्यशास्त्र के संगीत संबंधी अध्यायों की विषय सूची तैयार करना २. 'रागकल्पद्रुम' की अनुक्रमणिका तैयार करना ३. संगीतराज, बृहद्देशी, भरतभाष्य आदि में से विशिष्ट उद्धरणों (Quotations) की सूची तैयार करना इत्यादि ।

कालक्रम में प्रेमलता बहनजी ने इस विभाग को अधिक पुष्ट एवं सुदृढ़ बनाया । पं० ओम्कारनाथजी द्वारा एकत्रित अनेक संगीत की पुस्तकों का दान इस प्रभाग को मिलने से उसमें एक बहुमूल्य पुस्तकालय भी बन गया । इस पुस्तकालय में यूनिवर्सिटी ग्रांट से डॉ० प्रेमलताजी ने अनेक हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत की दुर्लभ पुस्तकों को मंगवा कर संग्रह को अधिक मूल्यवान् एवं उपयोगी बनाया ।

१९६२ के बाद, अनेक विद्यार्थियों ने बहनजी के पास शोधकार्य

किया । सर्वप्रथम शोधकार्य 'डॉक्टर ऑफ म्यूजिक' के दो छात्रों ने किया । १९६४ में अपनी डी० म्यूज० की परीक्षा के अंगस्वरूप श्री चित्तरंजन ज्योतिषी तथा श्री प्रदीपकुमार दीक्षित ने अपना शोध प्रबन्ध बहनजी के निर्देशन में प्रस्तुत किया । पी-एच०डी० का प्रथम शोधप्रबन्ध १९६५ में, बहनजी के निर्देशन में श्रीमती एन०राजम्[1] द्वारा प्रस्तुत किया गया । (बहनजी द्वारा निर्देशित शोधप्रबंध की सूची परिशिष्ट दो में दी गई है) । बहनजी। द्वारा निर्देशित एवं पी-एच०डी० के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्धों की संख्या वर्तमान संदर्भ में बहुत बड़ी भले न दिखती हो लेकिन उस समय के लिए बहुत बड़ी थी । उस समय हर कोई संगीत जैसे प्रयोग प्रधान विषय में पी-एच०डी० करता भी नहीं था न यह आज की तरह आवश्यक या अनिवार्य था । फिर संख्या से भी अधिक महत्त्व गुणवत्ता का होना चाहिये । बहनजी द्वारा करवाई गईं अनेक पी-एच०डी० गुणवत्ता में बहुत ऊंची थीं । सामान्य विद्यार्थी तो बहनजी के पास शोध कार्य करने की हिम्मत ही नहीं करता था ।

कालेज की स्थापना से (१९५०) लगभग पंद्रह-बीस वर्ष (१९७०) तक यह व्यवस्था थी कि कालिज के गायन वादन के बी० म्यूज० एवं-एम० म्यूज० के छात्र-छात्राएँ थियरी का क्लास करने इस प्रभाग में जाते थे । मैंने स्वयं भी बी०म्यूज, एम०म्यूज के पांच वर्ष (१९६५-१९७०) तक आ० प्रेमलता बहनजी से थियरी की शिक्षा ली है । गायन-वादन के विद्यार्थियों को संस्कृत भाषा सिखाने के लिए एक संस्कृत शिक्षिका की इस विभाग में नियुक्ति की गई जिनका नाम था श्रीमती विमला मुसलगाँवकर । श्रीमती विमलाजी भी डॉ० प्रेमलताजी के दीर्घ संपर्क के

---

१. वर्तमान में, डॉ० श्रीमती एन० राजम् देश की जानी मानी वायलिन वादिका हैं । आप अनेक वर्षों तक का०हि०वि०वि० के संगीत संकाय में अध्यापन का कार्य करती रही तथा संकायाध्यक्ष के रूप में निवृत्त हो गई ।

कारण संगीतशास्त्र में दीक्षित हो गईं। बाद में विमलाजी ने भी प्रेम बहनजी के निर्देशन में पी-एच०डी० कर लिया। उनका शोध प्रबन्ध पुस्तकाकार में प्रकाशित हैं।[1]

१९६६ से 'फेकल्टी ऑफ म्यूजिक एण्ड फाइन आर्टस्' का विभाजन दो संकायों में हो गया–एक 'फेकल्टी ऑफ म्यूजिक एण्ड परफॉर्मिंग आर्टस्' तथा दूसरा 'फेकल्टी आफ विजुअल आर्टस्'। इसी समय संगीत एवं मंचकला संकाय में तीन विभाग बनाये गये–गायन विभाग, वाद्य संगीत विभाग तथा संगीत शास्त्र विभाग। पुराना थियरी एवं रिसर्च सेक्शन इस नवीन संगीत शास्त्र विभाग में विलीन कर दिया गया। १९६६ से १९८५ तक डॉ० प्रेमलताशर्मा इस विभाग की अध्यक्ष रहीं। यह केवल दो शिक्षिका, दो शोध-सहायक, ऑफिस के दो कार्यकर्ता युक्त छोटा सा विभाग था। १९८४ तक उसमें शिक्षण के लिये कोई नया पद नहीं मिल पाया। विभाग छोटा होते हुए भी उसमें बड़े-बड़े कार्य संपन्न हुए तथा बहनजी की विद्वत्ता के कारण इस विभाग का नाम देश विदेश में फैल गया। दोनों शिक्षिकाएँ तथा बाकी स्टाफ भी अत्यंत परिश्रमी, विषय-निष्णात तथा कार्य के प्रति समर्पित था। मेरी दोनों बहनजी (प्रेमबहनजी और विमलाजी) के बीच में पारस्परिक प्रेम, सौहार्द एवं घनिष्टता थी। अंत तक दोनों का आत्मीय संबंध बना रहा। विभाग में पठन-पाठन का स्वस्थ वातावरण था। का०हि०वि०वि० का यह संगीतशास्त्र विभाग बीसवीं शताब्दी के विश्वविद्यालय के किसी विभाग के बजाय एक गुरूकुल की तरह अधिक था।

१९६६ में, संगीतशास्त्र का अलग विभाग बनने के तुरंत बाद ही

---

१. 'भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन' लेखिका डॉ० श्रीमती विमला मुसलगाँवकर, प्रकाशक-संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता, जुलाई १९९५।

बहनजी ने विभाग में दो पाठ्यक्रम प्रारंभ किये ।

१. 'मास्टर इन म्यूजिकॉलोजी' (द्विवर्षीय-चार सिमेस्टर)[1]

२. भारतीय संगीत की विशेषताओं से परिचित कराने वाला 'म्यूजिक एप्रीसिएशन कोर्स' (डिप्लोमा कोर्स-त्रिवर्षीय) ।

३. इन दो पाठ्यक्रमों के कुछ वर्ष बाद करीब १९७६-७७ में, विभाग में 'एम०फ़िल०' का डेढ़ वर्षीय पाठ्यक्रम भी शुरू किया गया । इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य था कि शोधछात्रों को शोध प्रारंभ करने से पूर्व शोध प्रविधि से परिचित करवाया जाय तथा उनसे एक लघु शोध प्रबन्ध भी तैयार करवाया जाय ।

संगीतशास्त्र के स्नातकोत्तर कोर्स की प्रथम छात्रा के रूप में सुश्री सुभद्रा-चौधरी ने प्रवेश लिया । उनके बाद श्री रामनाथन् ने प्रवेश लिया । धीमे-धीमे इसमें विद्यार्थी आते गये । कभी भी विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने की समस्या यहाँ उपस्थित नहीं हुई क्योंकि पाठ्यक्रम बहुत व्यापक, फैला हुआ तथा कठिन था । अतः साधारण विद्यार्थी तो उसमें प्रवेश लेने से ही डरता था । (मैंने परिशिष्ट ५ में, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के 'एम० म्यूजिकोलोजी' तथा 'म्यूजिक एप्रीसिएशन' के पाठ्यक्रम दिये हैं) ।

'म्यूजिक एप्रीसिएशन' कोर्स में बहुत से देशी तथा खास कर विदेशी जिज्ञासु आते रहे तथा लाभान्वित होते रहे ।

इस विभाग ने देश को सुलझे हुए संगीतशास्त्री दिये है जो देश-विदेश में अच्छे पदों पर काम कर रहे हैं तथा काम कर चुके हैं । इनमें

---

१. मास्टर इन म्यूजिकोलोजी का पाठ्यक्रम डॉ० प्रेमलता शर्मा जी ने ठाकुर जयदेव सिंहजी की सलाह लेकर स्वयं तैयार किया था ।

प्रमुख हैं प्रो० सुभद्रा चौधरी (आप नौकरी से निवृत्त हो गई हैं किन्तु म्यूजिकोलोजी में आप अभी भी प्रवृत्त है), स्व० डॉ० विमला मुसलगांवकर (विभाग की संस्कृत की प्रध्यापिका तथा बाद में संगीत शास्त्र की अच्छी ज्ञाता) प्रो० रामनाथन्, प्रो० इंद्राणी चक्रवर्ती, प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित, डॉ० अनिलबिहारी ब्योहार, डॉ० ऋत्विक् सान्याल, डॉ० लिपिका दास गुप्ता, प्रो० सुधाकर भट्ट, डॉ० आदिनाथ उपाध्याय, डॉ० तेजसिंह टाक इस ग्रंथ की लेखिका[1] इत्यादि। करीब दस पंद्रह वर्ष बहनजी के जीवन का यह परम लक्ष्य था कि म्यूजिकोलोजी के क्षेत्र में अच्छे विद्यार्थी का निर्माण हो जो आगे चलकर यह परम्परा चलाते रहे। आप विभाग में नाट्यशास्त्र, बृहद्देशी तथा संगीत रत्नाकर के अध्यायों को पढ़ातीं तथा एक-एक श्लोक समझातीं। भारत में यह प्रथम विभाग था जहाँ इन प्राचीन संगीत शास्त्र-ग्रंथों का विधिवत् अध्यापन होता था। शिक्षिका के रूप में तथा शोध छात्रों की पथप्रदर्शिका के रूप में आप कैसी थीं, आपकी कार्यप्रणाली क्या थीं, उसे मैंने अलग शीर्षक देकर विस्तारसे बताया है अतः यहाँ उसका पुनरावर्तन करना उचित नहीं समझती।

१९८५ में संगीतक्षेत्र में आपकी विद्वत्ता एवं आपके योगदान को देखते हुए आपको इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (मध्यप्रदेश) में कुलपति पद पर नियुक्त किया गया। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 'डेप्युटेशन लीव' पर खैरागढ़ गई। आप वहाँ के शिक्षा स्तर में गुणात्मक सुधार करने के पवित्र ध्येय से खैरागढ़ गई थी। आप यहाँ तीन वर्ष रहीं उसमें आपने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सेमीनार 'छत्तीसगढ़ की लोककलाओं' पर आयोजित किया। आपके आशीर्वाद से वहाँ के शोध विभाग का प्रकाशन 'संगीत-सूर्योदय' जनता के हाथ में आया। तथा पं० भातखण्डेजी लिखित 'माझी दक्षिण भारतची संगीत यात्रा'–इस

१. मैंने इसी संगीतशास्त्र विभाग से 'एम० फिल०' किया है।

मराठी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित हुआ । अंतिम एक वर्ष में आपने अपने को वहाँ के वातावरण से निर्लिप्त कर दिया । केवल आवश्यक कार्यों तक ही अपने को सीमित रखा ।

१९८८ के अक्टूबर में, आप खैरागढ़ के तथा वाराणसी के दोनों विश्वविद्यालयों से निवृत्त हो गई तथा वाराणसी में मकान खरीदकर रहने लगीं । आपका निवृत्तिकाल अत्यधिक प्रवृत्तिमय रहा । निवृत्तिकाल की प्रवृत्ति का ब्योरा निम्नानुसार है ।

१. १९८८ के मार्च में, भारत सरकार ने श्री पी०एन० हक्सर के नेतृत्व में, एक कमीटी बनाई जिसको ललित कला अकादमी, संगीत नाटक अकादमी, साहित्य अकादमी तथा नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा आदि के कार्यकलाप का लेखा-जोखा सरकार के समक्ष रखना था । डॉ० प्रेमलताजी इस कमीटी की सदस्या थी । इस कमीटी के कार्य-कलापों में तथा रिपोर्ट लेखन में बहनजी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी । श्री पी०एन० हक्सर बहनजी की विद्वत्ता तथा कार्यकलापों से अत्यधिक प्रभावित थे । कमीटी ने १९९० में अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को दे दी ।

२. डॉ० प्रेमलताजी कालिदास अकादमी उज्जैन, संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता, इंदिरा गाँधी नेशनल सेन्टर फॉर आर्टस् नई दिल्ली तथा संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली आदि अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध थीं तथा इन सब संस्थाओं के काम आपके पास थे । इन संस्थाओं ने आपकी सहायता के लिये शोध सहायक भी दिये थे जिनकी सहायता से बहनजी ने एक साथ अनेक प्रोजेक्ट पर काम किया तथा अंतिम समय तक करती रहीं ।

३. १९८६ से १९९५ तक प्रतिवर्ष 'ध्रुपद वार्षिकी' पत्रिका का संपादन आप करती रहीं ।

४. १९९४, १९९५ तथा १९९६ ये तीन वर्ष आपने भ्रमरगीत, श्रीकृष्ण प्रसंग, श्री गोविन्द बिरूदावलि, वेणुगीत और युग्मगीत आदि को कई राग-ताल में निबद्ध किया तथा उन रचनाओं पर नृत्य का कार्यक्रम वृंदावन, जयपुर, वाराणसी आदि स्थानों पर करवाया। (विस्तृत विवरण आगे के प्रकरण में हैं) ।

५. आपने प्रायोगिक कलाओं (Performing Arts) तथा अन्तर-अनुशासनिक शोध (Interdisciplinary Research) को प्रोत्साहित करने के लिए एक ट्रस्ट की स्थापना की, जिसका नाम रखा 'भरत निधि' । आप चाहती थीं कि इस ट्रस्ट द्वारा व्याख्यानमालाएँ, सांगीतिक कार्यक्रम तथा शैक्षणिक सत्र का आयोजन होता रहे । इसीलिए परिवार में आप तथा आपकी बहन, उर्मिला, दो ही व्यक्ति होते हुए भी आपने बहुत बड़ा मकान खरीदा ताकि 'भरत निधि' की प्रवृत्तियाँ उसमें चलाई जा सकें ।

६. आपके पास अनेक देशी तथा विदेशी छात्र-छात्राएँ तथा विद्वान् चर्चा करने आते रहते थे । आप सबको समय देती थीं तथा किसी से कोई आर्थिक अपेक्षा नहीं रखती थीं ।

७. १९९४ से आप को संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली का उपाध्यक्ष बनाया गया । तत्पश्चात् विचार गोष्ठियों तथा प्रकाशन का कार्य और भी बढ़ गया । अकादमी की तरफ से आपको कुछ और सहायक भी दिये गये थे ताकि आपका काम सुचारू रूप से चल सके ।

८. १९९३ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ने आपको एमेरिटस,

प्रोफेसर बनाया ताकि आप शोध छात्रों का मार्ग प्रशस्त कर सकें । अंतिम शोधछात्रा सेलीना थेलमेन थी ।

९. १९९५ में, वाराणसी में गंगा के सामने घाट पर श्रीमती विमला पोद्दार द्वारा भारतीय संस्कृति के संवर्धन एवं संरक्षा हेतु 'ज्ञानप्रवाह' नाम की एक संस्था बनायी गयी । विमलाजी तथा डॉ० प्रेमलताजी के बीच अच्छी मित्रता थी । बहनजी के ट्रस्ट 'भरतनिधि' के उद्देश्य इस संस्था के उद्देश्य से मेल खाते थे अतः डॉ० प्रेमलताजी 'ज्ञानप्रवाह' की प्रत्येक प्रवृत्ति में सक्रिय योगदान देने लगीं। आपने 'ज्ञानप्रवाह' में 'ध्वनि' विषय पर एक बड़ी विचार गोष्ठी की पूरी योजना बनाई किन्तु उसके कार्यान्वयन के पूर्व ही आपका स्वर्गवास हो गया । बाद में यह गोष्ठी श्रीमती विमला पोद्दार ने करवाई तथा उसे प्रेमलताजी की स्मृति को समर्पित किया ।

उपरोक्त सब बातें यह बताती हैं कि उनका निवृत्ति का काल कितना अधिक प्रवृत्तिमय था । अंत के कुछ वर्ष आपका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं चलता था लेकिन आपने अपनी प्रवृत्तिओं में जरा भी कटौती करना स्वीकार नहीं किया । इस प्रकार जीवन के अंतिम क्षण तक आप संगीत एवं संगीतशास्त्र की उन्नति के लिए कार्य करती रहीं ।

इस अध्याय में, पृ० २६ पर जिन संगीतशास्त्रवेत्ताओं का (musicologists का) नामोल्लेख कर चुकी हूँ उनसे प्रो० प्रेमलता शर्माजी एक संगीतशास्त्रवेत्ता के रूपमें किस प्रकार भिन्न थी उसको संक्षेप में अवश्य बताना चाहती हूँ । मेरे लिये मेरे द्वारा उल्लिखित सब विद्वान् सम्मानीय है । सबने अपना विशिष्ट योगदान संगीतशास्त्र को दिया है । पूज्य बहनजी का योगदान किस रूप में विशिष्ट तथा भिन्न है उसी का उल्लेख मैं करना चाहती हूँ ।

किसी संगीतशास्त्री ने विषय विशेष (उदाहरणतः राग-वर्गीकरण पद्धतियाँ, संगीत एवं सौंदर्य, संगीत का इतिहास, आदि) पर अपना अध्ययन केन्द्रित किया तो किसी किसी ने पाश्चात्य संगीतशास्त्र की अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया तथा उसमें वर्णित विषय तथा विधियों को हमारे संगीत के साथ जोड़ने की चेष्टा की । किसी किसी ने कोई ग्रंथ विशेष पर अपना कार्य केन्द्रित किया तो किसी ने वाद्यों का गहन अध्ययन किया । इन सबमें पूज्य भातखण्डेजी का योगदान अनेकविध दिशाओं में तथा अप्रतिम है । इसी प्रकार बहनजी का योगदान भी अनेकविध है ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा के संगीत एवं संगीतशास्त्र संबंधी कार्यों का अवलोकन किया जाय तो उनके प्रत्येक कार्य में, लेखन में, विचार करने में विषय का सूक्ष्म दृष्टि से किया अध्ययन दिखाई देता है । अनेक बातों पर आप गहराई से विचार करती थी तथा यदि निष्कर्ष पर न भी पहुँच पाई हो तब भी अपनी विचारयात्रा के हर बिंदु को स्पष्ट करती हुई अंत में स्वयं स्वीकार कर लेती थी कि वे अभी तक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाई है, इसपर और अधिक खोज करने की आवश्यकता है ।

आप का हर काम स्वच्छ, पारदर्शक एवं प्रामाणिक था । आपने कभी अपने को परम विद्वान् समझते हुए किसी बात पर अपना हठाग्रह नहीं रखा । आप हमेशा दूसरों के विचार जानने,समझने तथा उचित लगने पर स्वीकार करने में तत्पर रहती थी । जीवनभर नयी-नयी बात सीखने, समझने की आपकी प्रबल वृत्ति बनी रही ।

आपको अपनी गुरू परंपरा में, प्राचीन आचार्यों भरत एवं मतंग आदि पर श्रद्धा विरासतमें मिली थी । आपने भरत नाट्यशास्त्र के संगीत संबंधी सब अध्यायों का हिन्दी अनुवाद किया है । आपने मतंग कृत 'बृहद्देशी' का तथा शाङ्गर्देव कृत 'संगीत रत्नाकर' का अंग्रेजी

अनुवाद (दोनों में अपनी टिप्पणी देते हुए) संगीत जगत को दिया है, जिससे भविष्य के देशी-विदेशी शोधकर्ता प्राचीन, आचार्यों के ग्रंथों को पढ़ सकेंगे, समझ सकेंगे। संगीत शास्त्रको यह आपका बहुत बड़ा योगदान है।

अनेक भाषाओं की अच्छी जानकार होने से आपका वाचन विशाल था। प्रांतीय भाषाओं में हुए संगीत संबंधी कार्यों को भी आप देख सकीं, पढ़ सकीं, समझ सकीं, उन पर शोधकार्य करवा सकीं। इससे आपकी जानकारी का क्षितिज बहुत विशाल हो गया था।

पुस्तक, लेख आदि के रूपमें आपने विपुल मात्रा में लेखन किया है, अनेक विचारगोष्ठियाँ स्वयं आयोजित की है तथा अनेक में अपने विचार प्रकट किये हैं।

संगीतशास्त्र में आपका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान शास्त्राध्ययन की परंपरा की पुनः प्रतिष्ठा करते हुए संगीतशास्त्र के अनेक विद्यार्थी तैयार करना है। १९५० के बाद, देश के अनेक विश्वविद्यालयों में संगीत विषय उच्च शिक्षा में सम्मिलित किया गया लेकिन कई वर्षों तक संगीतशास्त्र विभाग केवल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत संकाय में ही था क्योंकि स्थापना काल से ही उसमें एक शोध-प्रभाग चल ही रहा था। संगीत शास्त्र विभाग की आप कई वर्षों तक अध्यक्षा रही तथा आपने शास्त्रमें 'मास्टर्स डिग्री' एम० म्यूज़ीकोलोजी' का पाठ्यक्रम तैयार किया तथा देश को अनेक स्तरीय संगीत शास्त्री दिये। संगीत शास्त्र को आपका यह योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

लक्ष्य-लक्षण संबंध को स्थापित करने में भी आपका योगदान विशिष्ट है। पढने के बाद उन पर शोध प्रबन्ध लिखने में ही मात्र संगीतशास्त्र ग्रंथों की सार्थकता नहीं है बल्कि उनमें लिखी बातें प्रयोग में भी लाई जा सकती है यह आपने सिद्ध कर दिखाया। 'भरत नाट्यशास्त्र' में वर्णित 'पूर्वरंग' का आपने नवीन तकनीकों के साथ आधुनिक परिवेश में पुनः मंचन करवाया। इस प्रयोग के लिये आपने कई दिग्गज विद्वानों

से दीर्घ विचार विमर्श किया तथा उस पर संगीत की दृष्टि से भी खूब सोचा । 'झण्टु', 'तितिझल' आदि निरर्थक शब्दों को लेकर आपने स्वर-ताल बद्ध सांगीतिक रचना की तथा प्रो० चंद्रशेखरजी ने उसपर नृत्य तैयार करवाया । पूर्वरंग का यह श्रमसाध्य मंचन विद्वानों द्वारा बहुत प्रशस्ति पाया ।

'संगीतराज' जैसे अनेक संगीतशास्त्र के ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ, कदाचित किसी संग्रह स्थान की केवल शोभा ही बढ़ाती होती यदि बहन जी ने उनके पाठ संशोधन, संकलन (टिप्पणी तथा दीर्घ ग्रंथ परिचय सहित) तथा प्रकाशन का कष्टसाध्य कार्य अपने हाथ में न लिया होता । इस प्रकार के अनेक शास्त्र ग्रन्थों को प्रकाश में लाने का स्तुत्य कार्य आपने किया है तथा यह भी आपका संगीतशास्त्र को अनुपम योगदान ही है ।

शास्त्रवेत्ता के रूपमें आपने प्रबन्धका, स्थायका, इतिहास पर भारतीय दृष्टिकोण का विशेष गहन दृष्टि से निरूपण किया है । दर्शनशास्त्र तथा साहित्यशास्त्र की अच्छी विदुषी होने के कारण आपने 'रस' विषय पर विशेष अध्ययन किया है तथा संगीत में रस प्रक्रिया पर गहराई से चिंतन किया है । 'एस्थेटिकस्' आपका अति प्रिय विषय रहा है । संगीत जैसी अमूर्त कला में रससिद्धि के लिये आपने जो 'त्रिगुण सिद्धांत' (माधुर्य, ओज एवं प्रसाद) बताया है वह आपके दीर्घकालीन मनन-चिंतन का ही परिणाम है ।

शास्त्रवेत्ता के रूपमें आप द्वारा लिखित, अनुदित, संपादित पुस्तकों के लिये, आप द्वारा आयोजित विचार गोष्ठियों के लिये तथा आपकी शैक्षणिक सांस्कृतिक विदेशयात्राओं के लिये अलग-अलग अध्याय है । ये सब अध्याय के पठन के बाद ही पाठक बहनजी के शास्त्रवेत्ता रूपका यथार्थ दर्शन कर पायेगा तथा संगीत क्षेत्र में आपके योगदान का सही मूल्यांकन कर पायेगा ।

●

बहनजी के विभिन्न रूप

डिग्री धारी

व्याख्यान देती

विचार मग्न

बहनजी के गुरुजन
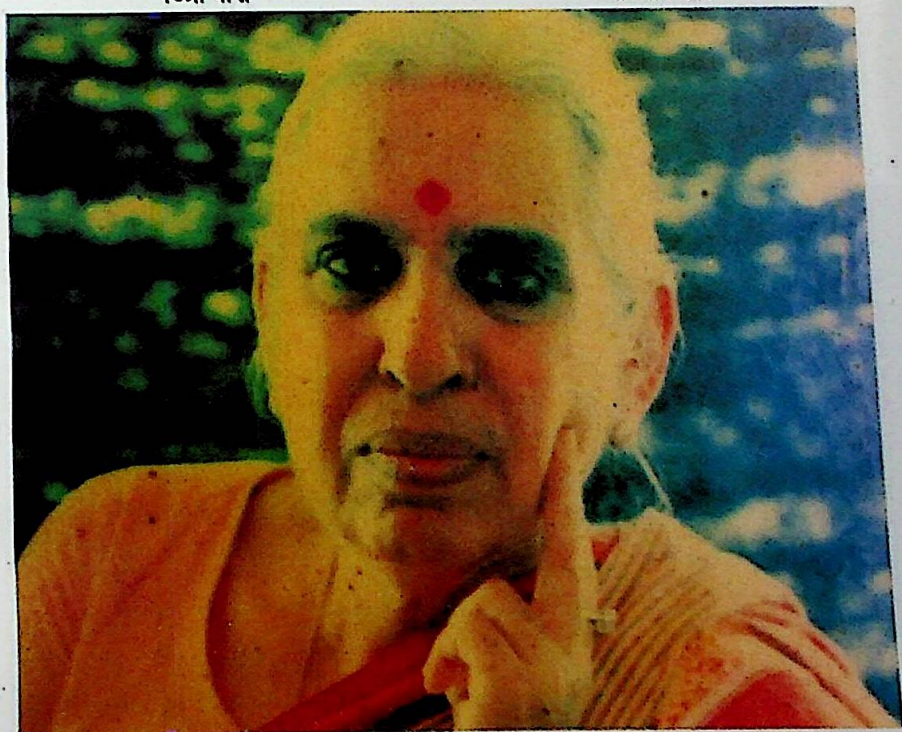
पं. गोपीनाथ कविराज
(बहनजी के दर्शन एवं समग्र के गुरु)
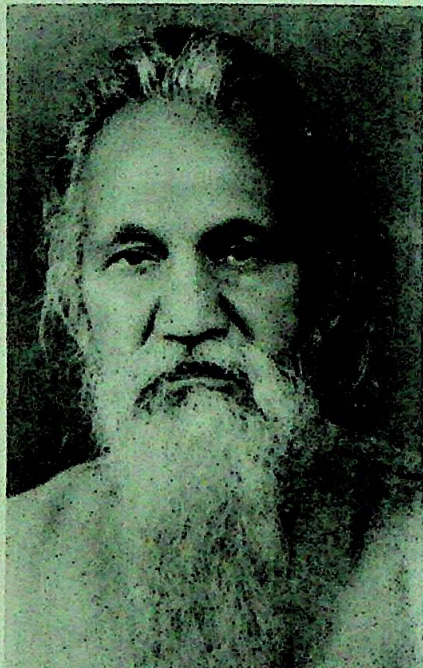
पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु
(बहनजी के व्याकरण के गुरु)
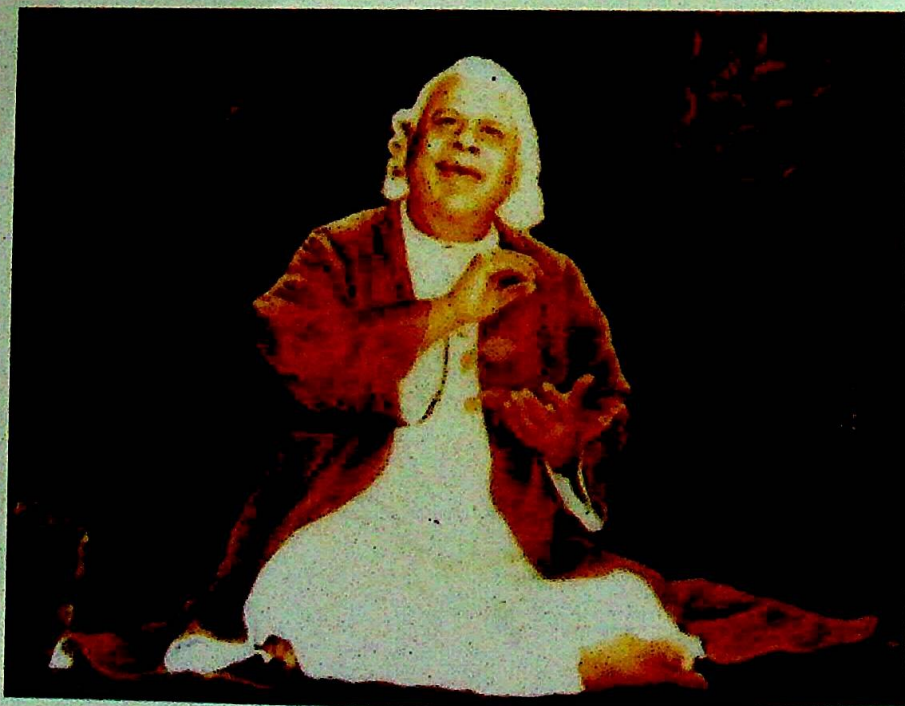
पं. ओमकारनाथ ठाकुर
(बहनजी के संगीत के गुरु)

तृतीय अध्याय

प्रो० प्रेमलता शर्मा एक शिक्षिका एवं शोध छात्रों की पथप्रदर्शिका के रूप में

पूर्वी देशों में शिक्षक, आचार्य तथा गुरू का विशेष महत्व है । भारतीय संस्कृति में तो गुरू को ईश्वर का ही रूप समझा गया है । गुरू की महत्ता पर अनेक पद लिखे गये हैं किन्तु यह श्लोक अतीव प्रसिद्ध है–

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुर्गुरूर्देवो महेश्वरः ।
गुरूः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

भारतीय वाङ्मय में 'आचार्य' शब्द की परिभाषा देते हुए आचार्य उस शिक्षक को कहा गया है जिसका आचरण श्रेष्ठ एवं अनुकरणीय हो तथा जो अपने उत्कृष्ट आचरण द्वारा ही शिष्यों का उत्कृष्ट चरित्र निर्माण कर सके । एक आदर्श आचार्य में जो-जो गुण हमारे शास्त्रों में कहे गये हैं वे सब गुण प्रो० प्रेमलता शर्माजी में थे ।

एक आचार्य का निजी जीवन सादा एवं उच्च आदर्श युक्त होना चाहिए । प्रो० प्रेमलताजी का रहन-सहन तथा पहनावा सादा था किन्तु आचार विचार उच्च थे । आप का आचरण पारदर्शी एवं अनुकरणीय था ।

एक आचार्य को अपने विषय का गहन ज्ञान होना चाहिए तथा चूंकि ज्ञान की कोई सीमा नहीं है अतः आचार्य को निरंतर अध्ययनरत बने रहना चाहिए । आदरणीय बहनजी को अपने विषय संगीत (क्रियात्मक) एवं संगीत शास्त्र का गहन एवं विस्तृत ज्ञान था तथा आप निरंतर अध्यनरत बनी रहीं । अपने जीवन के अंतकाल तक पठन-पाठन एवं

लेखन, आपके नित्य कार्यों का अभिन्न अंग बने हुए थे ।

एक शिक्षक को विद्यार्थी का मानसिक स्तर समझ कर उस स्तर से शिक्षा प्रारंभ करते हुए क्रमशः विद्यार्थी के मानस का विकास करना चाहिए । बहनजी संगीत के हर पक्ष को स्वयं अभ्यास द्वारा इतना पचा लेती थीं तथा इतने सरल शब्दों में समझा देती थीं कि सामान्य से सामान्य बुद्धि वाले विद्यार्थी की बुद्धि में बात उतर जाती थी । ऐसा कभी नहीं हुआ कि बहनजी ने कोई विषय समझाया और विद्यार्थी उसे समझ ही ना पाया हो । सामान्य विद्यार्थी तथा अत्यंत प्रतिभाशाली विद्यार्थी दोनों को वे अपने शिक्षण द्वारा संतुष्ट कर पाती थीं ।

सिखाने, बताने के लिये वे सदा तत्पर रहती थीं । कोई भी विद्यार्थी कभी भी कोई प्रश्न पूछे या समस्या लेकर आये तो वे तुरंत उसका निराकरण कर देती थीं । कभी-कभी विभाग से पूरे दिन के कार्य के पश्चात् पैदल घर जाते समय भी रास्ते में बात समझा देती थीं । देशी-विदेशी कितने ही छात्र एवं विद्वान् आपसे बात समझने, मार्गदर्शन लेने, चर्चा करने आते रहते थे । बहनजी ने कभी किसी को निराश लौटाया नहीं । कभी-कभी स्वेच्छा से सबको निमंत्रित कर देती थीं कि 'इस दिन मैं नाट्यशास्त्र या रत्नाकर का यह अध्याय पढ़ाने वाली हूँ, तुम सब आ जाना ।' एक-एक अध्याय कई-कई दिन तक चलते रहते । स्वयं पढ़ाने का तथा पुनरभ्यास का आनंद लेतीं तथा सुनने वालों को भी आनंद आता । शास्त्र का बोझिल विषय भी उनकी पढ़ाने की शैली के कारण रसप्रद बन जाता । विभागाध्यक्ष, संकायाध्यक्ष या कुलपति का पदभार संभालते हुए भी, अपने अत्यधिक कार्यों के बीच भी आप कभी पठन-पाठन, अभ्यास एवं शिक्षण कार्य से विरत नहीं रहीं । अन्यथा अधिकतर यह देखा जाता है कि व्यक्ति के प्रशासनिक पद पर आते ही पठन-पाठन तथा सीखना, सिखाना या तो अल्प हो जाता है

या अनियमित हो जाता है । बहनजी इसकी अपवाद थीं । कई वर्षों तक आपके जीवन का एकमात्र एवं प्रमुख उद्देश्य (One point Programme of Life) संगीतशास्त्र के अच्छे विद्यार्थी निर्माण करना ही था । आपने कई होनहार संगीतशास्त्री तैयार किये तथा सदियों से लुप्त संगीतशास्त्र पठन-पाठन की परंपरा को पुनर्जीवित किया । यह आपके द्वारा संगीत को दी गई अमूल्य देन है ।

यात्राएँ तथा अन्य कार्यों की व्यस्तता के बीच भी आप इतना अधिक पढ़ा देती थीं कि आपकी अनुपस्थिति में भी आपके द्वारा दिये गये शैक्षणिक कार्यों में ही विद्यार्थी व्यस्त रहता, लिखता-पढ़ता रहता । अनियमितता या ढिलाई आपको कत्तई पसंद नहीं थी । कोई विद्यार्थी मेहनत से जी चुराये यह आपको स्वीकार नहीं था । हमेशा कहती रहती कि "पढ़ो, खोजो, लिखो, गाओ, बजाओ और मेहनत करो । मेहनत के बिना कुछ भी साध्य नहीं है ।" स्वयं समय की पाबंद थी । न कभी देर से आतीं तथा न किसी का देर से आना पसंद करतीं । स्वयं अनुशासित थीं तथा वैसे ही अनुशासन की अपेक्षा भी रखती थीं । स्वभाव की सरलता इतनी थी कि कोई विषय यदि स्वयं को याद न हो या स्वयं अच्छे से समझी न हों या बिना तैयारी के कक्षा में आई हों तो स्वयं स्वीकार कर लेती थीं कि 'भई, आज मैं होमवर्क करके नहीं आई हूँ अतः इसको पूर्ण अधिकार से समझा नहीं पाऊँगी । पहले मैं समझ लूँगी, पढ़ लूँगी तब अच्छे से समझाऊँगी ।" छात्रों के समक्ष ऐसी स्वीकारोक्ति बहुत उच्च चरित्रवाले शिक्षक ही कर पाते हैं । किन्तु ऐसी घटना क्वचित ही होती थी–अधिकतर तो आप तैयार होकर ही आती थी ।

समय का एक क्षण भी बेकार गँवाना आपको पसंद नहीं था । पाँच दस मिनट का ही समय हो तब भी उतने समय में कोई छोटा सा

कार्य कर लेती थीं या कोई छोटी सी बात समझा देती थीं । आपके भूतपूर्व छात्र डॉ० आदिनाथ उपाध्यायजी ने, जो अब डीजल रेलवे वर्क्स, वाराणसी के अपने महत्त्वपूर्ण पद से निवृत्त हो गये हैं, बहनजी के समय के सदुपयोग के संबंध में एक किस्सा सुनाया था जिसको बताना चाहूँगी । 'पांच बजे संध्या को विभाग बंद होता था । वर्षाऋतु थी । बादल बहुत घिर आये थे किन्तु कक्षा ठीक ५ बजे तक ली । अभी विभाग से छात्रों के साथ निकलकर बहनजी थोड़ी ही दूर पैदल[1] गई थीं कि जोरदार वर्षा प्रारंभ हो गई जिससे स्वयं तथा छात्र भी भीग गये । पुनः सब दौड़ कर विभाग में वापस आ गये । वर्षा अभी १५-२० मिनट रूकेगी नहीं ऐसा लगते ही सब छात्रों को जो भीगे हुए थे तथा स्वयं भीग गई थी पुनः पढ़ाने लगी । इतना समय क्यों बेकार गंवा दिया जाय ? कुछ काम ही कर लिया जाय । वर्षा रूकने तक आप पढ़ाती रहीं तथा वर्षा रूकने पर ही सब अपने-अपने घर गये ।' ऐसे समर्पित एवं निष्ठावान् शिक्षक बिरले ही होते हैं ।

आपके द्वारा विस्तार से, मेहनत से पढ़ाने के पश्चात् यदि कोई विद्यार्थी यह पूछ ले कि 'परीक्षा में क्या-क्या आयेगा, कैसे पूछा जायेगा तथा कितना लिखना होगा ?' तब आपका पुण्य प्रकोप देखते ही बनता था । आपका कहना यह था कि 'अध्ययन के समय मन लगाकर खूब पढ़ो । केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने के उद्देश्य से पढ़ने से सच्ची विद्या प्राप्ति या सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता । अतः पढ़ते समय हर वक्त परीक्षा का ही ध्यान करने की आवश्यकता नहीं । Learn for the sake of knowledge and Don't learn just for passing

---

१. आप संगीतशास्त्र विभाग से का० हि० वि० वि० परिसर में अपने क्वार्टर न्यू ई-५ तक रोज पैदल ही आती-जाती थी । शरीर को पैदल चलने की कसरत मिले इस हेतु रिक्शा नहीं करती थी ।

examination."

आपके ज्ञान से प्रभावित कई छात्र–छात्राएँ आपके निर्देशन में शोध कार्य करने आये । शोध छात्र के रूप में पंजीकरण के पूर्व आप छात्र को मिलतीं, बात करतीं, उसका शैक्षणिक एवं सांगीतिक स्तर पता करतीं, कुछ पढ़ने को देतीं तथा उसमें से प्रश्न पूछतीं । यदि छात्र का संगीतशास्त्र का ज्ञान कम पातीं तो उसे एम० म्यूजिकॉलोजी करने की सलाह देती । शोध छात्रों को काम करवाने की आपकी प्रणाली विशिष्ट एवं निराली ही थी । सामान्यतः यदि छात्र स्वयं कोई विषय के लिए आग्रह नहीं रखता तो आप स्वयं ही उसकी क्षमता का, रूचि का कोई विषय उसको सुझा देती । विषय चयन के पूर्व भी कई दिन चर्चा-विचारणा होती । विषय का शीर्षक भाषा में बाँधने पूर्व क्या-क्या सावधानी रखनी चाहिये यह समझातीं । छात्र को क्या-क्या पुस्तकें, लेख, पत्रिकाएँ पढ़नी चाहिएँ यह बतातीं । संगीत के शास्त्र ग्रंथों के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा थी तथा सब विद्यार्थी मूल शास्त्रग्रंथ पढ़ें ऐसा आपका आग्रह रहता था । इसके लिए प्रत्येक विद्यार्थी को संस्कृत का कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेने की राय देती थीं । विभाग में संस्कृत की आचार्या डॉ० विमला मुसलगाँवकरजी थीं । उनसे प्रत्येक शोध छात्र संस्कृत पढ़ता था । प्रो० प्रेमलताजी ने संगीत शास्त्राध्ययन में मूल स्रोतों के प्रत्यक्ष अध्ययन अध्यापन का सूत्रपात किया था । प्रत्येक शोध छात्र को मूल स्रोत देखने आवश्यक थे । बहनजी को द्वितीय श्रेणी के स्रोतों पर विश्वास नहीं था । विद्यार्थी की संगीतशास्त्र की पीठिका (Background) तैयार करने के लिए शोध छात्रों को भी विभाग में ऍम० म्यूजिकॉलोजी की कक्षाओं में पढ़ने के लिए बैठना होता था । ये आपकी निजी विशेषता थी । कहीं भी शोधछात्रों को कक्षाओं में अध्ययन करना पड़े ऐसा देखने में नहीं आता । लेकिन बहनजी के शोधछात्रों को एक-डेढ़ वर्ष तक प्रति दिन ३ से ४ पीरियड

पढ़ना होता था ताकि विद्यार्थी की संगीतशास्त्र की स्वस्थ पीठिका तैयार हो सके। समय-समय पर प्रत्येक शोध छात्र के साथ बात करके उसकी प्रगति का मूल्यांकन करती थीं। विद्यार्थी के कार्य में गहन रूचि लेते हुए, उससे बात करते हुए उसको तथ्य तक पहुँचाने के प्रयास में स्वयं तथ्य तक पहुँचती थीं तथा निजी ज्ञान में भी वृद्धि करती रहती थीं। जब लिखनेका समय आता तो लिखा हुआ एक-एक वाक्य विद्यार्थी से पढ़वातीं, ठीक करवातीं। पाद टिप्पणी कैसे लिखी जाय यह भी समझातीं। विद्यार्थी के लेखन, प्रतिपादन में भाषा की, विषय की कोई चूक न रह जाय इसके लिए आप बहुत सजग रहतीं। कोई अध्याय, या उसका कोई अंश कमजोर लगे तो पुनः लिखवाती थीं। प्रत्येक शोधछात्र तथा उसके शोध कार्य में इतनी गहन रूचि लेतीं जैसे प्रत्येक शोध उनकी अपनी ही हो। जब तक आप संपूर्ण कार्य में संतुष्ट न हो जायँ तब तक शोध प्रबन्ध जमा नहीं करने देती थीं। प्रत्येक शोधकर्ता जानता था कि बहन जी को संतुष्ट करना लोहे के चने चबाने से कम नहीं था।

आजकल शोध कार्य में उभय पक्ष, शोधकर्ता एवं निर्देशक की तरफ से अनेक अनियमितता की बात सुनने में आती है। कुछ शोधकर्ता बिना मेहनत के किसी से शोधप्रबन्ध लिखवा के उपाधि प्राप्त करना चाहते हैं तो कुछ निर्देशक या तो छात्रों को समय ही नहीं देते या उनका पीड़न करते हैं या उनसे आर्थिक अपेक्षाएँ रखते हैं। बहनजी के विभाग में हुए शोधकार्य इन दूषणों से सर्वथा अलिप्त थे। आपके पास शोधकार्य विशुद्ध ज्ञानोपलब्धि की यात्रा समान था। आपने १६ शोध प्रबन्ध तैयार करवाये जिनकी सूची परिशिष्ट दो में दी गई है। इन १६ के अतिरिक्त अनेक शोधकर्ताओं ने बहन जी से मार्गदर्शन प्राप्त किया है। कुछ शोधकर्ताओं ने बहनजी के पास कार्य तो प्रारंभ किया किन्तु आपकी निवृत्ति के बाद किसी अन्य शिक्षक के नाम से शोध प्रबन्ध जमा

करवाया। ऐसी परिस्थिति में भी बहनजी ने किसी छात्र को मदद के लिए मना नहीं किया बल्कि अन्य किसी शिक्षक का नाम रहने पर भी उस शोध को स्वयं पूर्ण करवाया। बहनजी ने विद्यार्थी से प्रेम, सम्मान, कड़े परिश्रम एवं अच्छे कार्य के अतिरिक्त किसी भी चीज की अपेक्षा नहीं रखी।

बहनजी के बाद उनकी शिक्षा पद्धति तो कईयों ने अपनायी किन्तु शोध करवाने की इतनी कष्टसाध्य पद्धति सब कोई नहीं अपना सका। उनकी ऐसी विद्या को समर्पित शोध निर्देशन पद्धति के कारण संगीत जगत् को उत्कृष्ट शोध-प्रबन्ध प्राप्त हुए। इन १६ स्वीकृत प्रबन्धों में से अधिकांश शोध-प्रबंध प्रकाशकों ने स्वयं माँग कर प्रकाशित किये हैं।

●

किसी भी ध्वनि के श्रवण के साथ उसकी चार विशेषतायें

(१) ध्वनि की उच्चता-नीचता (pitch) (२) तीव्रता-मन्दता (volume) (३) ध्वनि की छाया (timbre) (४) कालमान (duration) एक साथ गृहीत होती है।

चतुर्थ अध्याय
प्रो० प्रेमलता शर्मा का लेखनकार्य एवं प्रकाशित पुस्तकें

चूँकि प्रो० प्रेमलता शर्मा अनेक भाषाओं तथा अनेक विषयों की अच्छी ज्ञाता थीं अतः आपका लेखन भी अनेक भाषाओं में तथा अनेक विषयों पर हुआ है यथा-संस्कृत साहित्य, हिन्दी साहित्य, भारतीय संस्कृति एवं संगीत-शास्त्र तथा पाश्चात्य संगीत-शास्त्र इत्यादि । आप द्वारा लिखे गये अनेक लेख, निबंध, शोधपत्र आदि देश-विदेश की स्तरीय पत्रिकाओं में छपे हैं । बाद में आप का लेख मिल जाना, संगीत की किसी भी पत्रिका के लिये, सम्मान की बात हो गई । आपके प्रायः चालीस विशिष्ट लेख राष्ट्रीय तथा अंताराष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं ।

लेखन के उपरान्त आपने कई पत्रिकाओं का संपादन किया है । अपने छात्र जीवन से ही, का०हि०वि०वि० में, अपने छात्रावास की पत्रिकां का संपादन आपने किया था । तदनंतर आपने किन-किन पत्रिकाओं का संपादन आदि कार्य किया है उसका वर्णन निम्नलिखित है–

१. **'नादरूप'**–१९६० में, जब श्री कला संगीत भारती का०हि०वि०वि० (संगीत का कालिज-जिसमें आप पढ़ी थीं तथा फिर बाद में उसी मे प्राध्यापक बनी थीं) की स्थापना के दस वर्ष पूरे हुए तो उस समय एक पत्रिका के प्रकाशन का निश्चय किया गया । पत्रिका के संपादन का पूर्ण उत्तरदायित्व डॉ० प्रेमलता शर्मा पर था । एक वर्ष के परिश्रम के बाद १९६१ में, 'नादरूप' नामक इस पत्रिका का प्रकाशन हुआ । इसके लिए देश के श्रेष्ठ विद्वानों के लेख एकत्रित किये गये ।

डॉ० प्रेमलता शर्मा जी ने भी अपने दो लेख दिये। पत्रिका का स्वरूप एवं योजना बहुत उच्च स्तरीय थी। संगीत की अनेक पत्रिकाएँ मैंने देखी हैं किन्तु 'नादरूप' इन सबमें विशेष है। यह पत्रिका बहनजी की सुव्यवस्थित कार्यप्रणाली का उत्कृष्ट नमूना है। १९६३ में 'नादरूप' का द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ। इस द्वितीय भाग का प्रथम खण्ड कालिज के रिसर्च सेक्शन को सौंप दिया गया था तथा इस प्रथम खण्ड में डॉ० प्रेमलताजी का Indian & Western Asthetics पर विस्तृत लेख है तथा एक लेख आपके शोध-सहायक श्री रवीन्द्र कुमार शृंगी ने लिखा है।

२. **'इंडियन म्यूजिक जर्नल'**–यह आंग्ल भाषा में निकलने वाला जर्नल प्रारंभ में मद्रास से निकलता था। इसके संपादक थे प्रो० वी०वी० षड्गोपनजी। श्री विनयचंद्र मौद्गल्य इसके सहसंपादक थे। बाद में श्री षड्गोपनजी मद्रास छोड़कर दिल्ली आ गये तो यह पत्रिका दिल्ली से छपने लगी। डॉ० प्रेमलता शर्माजी बहुत वर्षों तक इसकी Consulting Editor रहीं। श्री षड्गोपनजी की विद्वता एवं कार्यप्रणाली से प्रेमलता बहनजी बहुत प्रभावित थी तथा दोनों के मध्य गहन शैक्षणिक संबंध थे।

३. **'ध्रुपद वार्षिकी'**–वाराणसी के संकटमोचन मंदिर के पूर्व महंतजी श्री अमरनाथ मिश्रा, डॉ० लालमणि मिश्रा तथा महाराजा बनारस विद्या मंदिर ट्रस्ट की तरफ से, १९७५ से, प्रतिवर्ष बनारस के तुलसीघाट पर 'ध्रुवपद-मेला' आयोजित होता है। १९८६ से, इस ट्रस्ट द्वारा ध्रुवपद पर एक वार्षिक पत्रिका प्रकाशित करने का निर्णय हुआ। डॉ० प्रेमलता शर्मा जी इस की प्रधान संपादिका बनीं तथा १९९५ तक प्रतिवर्ष इस पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका द्विभाषी थी। अंग्रेजी लेख का हिन्दी सारांश तथा हिन्दी लेखों का अंग्रेजी सारांश दिया जाता रहा।

इस-पत्रिका में स्वयं प्रेमलता जी के तथा अन्य विद्वानों के ध्रुवपद संबंधी बहुत उपयोगी लेख हैं। इस पत्रिका के दस अंक छपे हैं।

४. **'गवेषणा'**–संगीत रिसर्च अकादमी कोलकाता की पत्रिका 'गवेषणा' के भी संपादक मण्डल की आप सदस्या रह चुकी है।

उपरोक्त पत्रिकाओं के अतिरिक्त अनेक पत्रिकाओं में आप संपादक मण्डक की सलाहकार थीं। पं० ओमकारनाथ ठाकुर की जन्मशताब्दी के वर्ष में आपके कहने से अनेक पत्रिकाओं ने पंडितजी पर 'विशेषांक' निकाले तथा उन विशेषांकों में भी बहनजी की अहम् भूमिका थी।

१९८५ में, अमेरिका देश में, भारत सरकार द्वारा आयोजित भारत महोत्सव के अवसर पर, संगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता ने भारतीय संगीत पर एक अति महत्त्वपूर्ण विशिष्ट पत्रिका (Brochure) निकाली थी जिसकी पूरी योजना डॉ० प्रेमलताजी ने ही बनाई थी।

इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त आपने अनेकानेक पुस्तकों पर कार्य किया है। आपने संगीतेतर विषयों पर तथा संगीत पर भी प्रचुर मात्रा में लेखन किया है। आपने संगीत की अनेक प्राचीन पुस्तकों के पाठ-संशोधन का कार्य किया है। संगीत में ऐसे अनेक ग्रंथ थे जिनकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध थी किन्तु लिखने वालों के अज्ञान या प्रमाद वश उन ग्रंथों में भाषा की एवं व्याकरण की अनेक त्रुटियाँ रह गई थी। एक से अधिक पाण्डुलिपि मिलने पर सब में पाठ भेद मिलता था। बहनजी ने ऐसे कुछ ग्रन्थों के पाठ संशोधन का दुष्कर कार्य किया है तथा संशोधित रूप वाली इन पुस्तकों का प्रकाशन भी देश की मान्य संस्थाओं द्वारा किया गया है। इस प्रकार बहनजी के प्रयत्न स्वरूप देश की नई पीढ़ी को, ये प्राचीन पुस्तकें संशोधित होकर छपी हुई अवस्था में मिल रही हैं। पाठ-संशोधन की विधा बहनजी ने अपने पी-एच०डी० के निर्देशक पं० परशुराम लक्ष्मण वैद्य से सीखी थी।

प्रो० प्रेमलता शर्माजी द्वारा लिखित, संपादित, अनूदित संगीतेतर विषयों पर पुस्तकें–

१. **'रसविलास'**–यह संस्कृत में लिखा गया साहित्य शास्त्र का ग्रंथ है जिसके लेखक थे श्री भूदेव शुक्ल । प्रेमलताजी ने इस ग्रंथ का पाठ संशोधित करके, सन १९५२ में, (इस समय आप शोध छात्रा थी) इसे प्रकाशित करवाया । इस संशोधित ग्रंथ का प्रकाशन ओरियन्टल बुक हाउस, पूना द्वारा किया गया ।

२. 'Vedic Mathematics'–जगन्नाथ पुरी के तत्कालीन शंकराचार्य जगद्‌गुरू कृष्ण चैतन्य भारतीजी वेदों के प्रखर विद्वान थे । आपने वेदों का अध्ययन करने के पश्चात्, उनमें से गणित के बीस सूत्र निकाले थे तथा संस्कृत में हस्तलिखित ग्रंथ तैयार किया था । प्रेमलताजी को यह कार्य बहुत अद्‌भुत लगा तथा आपने उक्त ग्रंथ का, अंग्रेजी में अनुवाद करते हुए संपादित भी किया । यह ग्रंथ १९६५ में प्रकाशित हुआ तथा इस ग्रंथ के कारण प्रेमलता जी की ख्याति विदेशों में भी हो गई । यह ग्रन्थ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किया गया ।

३. **'चित्रकाव्यकौतुकम्'**–"काव्य में चित्रकला के प्रति अनुराग सहज है । वर्ण-विन्यास की विचित्रता को चित्र की आकृति द्वारा अभिव्यक्त करना श्रव्य को दृश्य में परिणत करने की मानव सहज प्रवृत्ति का फल है । संस्कृत काव्य के चित्रबंधों में और तदनुगामी हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में यह प्रवृत्ति कुछ साल पूर्व तक अपने चरम उत्कर्ष पर रही है । आधुनिक युग में इसकी उपेक्षा अवश्य हुई है, किन्तु किसी भी फल-प्राप्ति की कामना के बिना, चित्र कवि पं० रामस्वरूप पाठक ने जिस अध्यवसाय से चित्रकाव्य की साधना की है वह संस्कृत साहित्य के आधुनिक युग के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बनाकर रहेगा ।" (ग्रंथ की प्रस्तावना से उद्‌धृत)–डॉ० प्रेमलता शर्मा ।

यह ग्रंथ संस्कृत में लिखा गया है। बहनजी ने काव्यों का अनुवाद केवल हिन्दी में दिया है बाकी चित्रकाव्य की विवेचना, चित्र की संकेत भाषा का स्पष्टीकरण, चित्रबन्ध का इतिहास आदि बहुमूल्य विषयों पर संस्कृत में ही लिखा है। ग्रंथ के मूल लेखक–पं० रामस्वरूप पाठक हैं। बहनजी ने इसका संपादन किया है तथा वाराणसी के मोतीलाल बनारसीदास ने १९६५ में इसका प्रकाशन किया है।

४. 'जपसूत्रम्'–स्वामी प्रत्यगात्मानंद सरस्वतीजी का यह विशिष्ट ग्रंथ मूलतः संस्कृत में था तथा उसकी व्याख्या बँगला भाषा में की गई थी। इस विशिष्ट ग्रंथ को हिन्दी भाषी भी पढ़ सकें इस हेतु से, मूल ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद बहनजी ने किया है। यह ग्रंथ दो भाग में है। प्रथम भाग १९६६ में तथा द्वितीय भाग १९९२ में वाराणसी के विश्वविद्यालय प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है।

५. 'स्तोत्रभारतीकण्ठहार'–जगन्नाथपुरी के शंकराचार्य जगद्गुरु श्री कृष्ण चैतन्य भारती द्वारा संस्कृत में रचित विविध देवी देवताओं के स्तोत्र हस्तलिखित पुस्तक के रूप में थे। बहनजी ने उन स्तोत्रों को संपादित किया। यह कार्य १९६८ से १९७६ तक आठ वर्ष चला। बहनजी द्वारा संपादित यह ग्रंथ संस्कृत में हैं। तथा इसको दो खण्डों में प्रकाशित किया गया है। डॉ० प्रेमलता की कनिष्ठ भगिनी डॉ० उर्मिला शर्मा ने बताया कि, "पुरी के शंकराचार्य अति विशिष्ट विद्वान् थे तथा उनके स्तोत्रों की संस्कृत समझने में हम दोनों बहनों को बहुत समय देना पड़ा तथा हमारा संस्कृत ज्ञान इससे और पुष्ट हुआ।"

६. 'सख्य-संवाद'–प्रसिद्ध दार्शनिक सुश्री विमलाताई ठकारजी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दू धर्म पर कुछ व्याख्यान दिये थे। प्रेमबहनजी ने इन व्याख्यानों को संपादित कर १९७१ में 'सख्य संवाद' पुस्तक प्रकाशित करवाई। प्रकाशक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय। पुस्तक

हिन्दी भाषा में हैं ।

७. **'पावक स्फुलिङ्ग'**–सुश्री विमलाताई ठकार के विविध भाषण एवं लेखन में से सुन्दर सुवाक्यों को चुनकर प्रेमलताजी ने मौक्तिक चयनिका के रूप में यह पुस्तक संपादित की तथा इसे १९७१ में प्रकाशित किया । पुस्तक हिन्दी भाषा में है ।

८. **'युग की माँग'**–यह पुस्तक भी एक संपादन कार्य ही है । इस हिन्दी भाषी पुस्तक में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सुश्री विमलाताई ठकार के निर्देशन में संचालित छात्र स्वाध्याय शिविर का विवरण है तथा विमलाताई के ही छः हिन्दी तथा दो अंग्रेजी प्रवचन भी संगृहीत है । यह पुस्तिका काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा मई १९७२ में प्रकाशित हुई ।

९. **'जीवनयोग'**–सुश्री विमलाताई ठकार के भाषणों का संपादन है जो १९७३ में प्रकाशित हुआ । संपादनकर्त्री डॉ० प्रेमलता शर्माजी थीं ।

१०. **'कस्तूरबा ट्रस्ट की बहनों से'**–सुश्री विमलाताई ठकार ने आसाम में स्त्रियों के उपयोगी भाषण दिये थे । उनका संपादन बहनजी द्वारा किया गया तथा १९७३ में इसे प्रकाशित करवाया ।

११. **'अमरवाणी'**–इस पुस्तक में माँ आनंदमयीजी के वचनों का संग्रह है तथा उस पर पं० गोपीनाथ कविराजजी की व्याख्या भी है । माँ आनंदमयीजी के वचन तथा कविराजजी की व्याख्या दोनों बँगला भाषा में हैं । प्रेमलताजी ने इनका हिन्दी अनुवाद किया, जो १९७२ में प्रकाशित हुआ ।

१२. **'साधुदर्शन एवं सत् प्रसंग'**–यह पुस्तक बँगला भाषा में कविराज गोपीनाथ द्वारा लिखी गई थी । इस पुस्तक का भी हिन्दी अनुवाद प्रेम बहनजी ने किया । यह पुस्तक वाराणसी के विश्वविद्यालय

प्रकाशन द्वारा १९७३ में प्रकाशित की गयी ।

१३. 'एकलिंग महात्म्य'–राजस्थान के महाराणा कुंभा के कुल देवता एकलिंगजी (महादेव) थे । उनके माहात्म्य में, संस्कृत भाषा में, यह ग्रंथ लिखा गया था । इसे 'स्थलपुराण' भी कहा गया है । राजस्थान से इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति मिली थी । बहन जी ने उसका पाठ शुद्ध करके, उसे संस्कृत भाषा में, ग्रंथ रूप में, १९७६ में प्रकाशित करवाया ।

१४. 'श्रीश्रीभक्तिरसामृतसिंधु'–श्री श्री रूप गोस्वामी प्रभुपाद प्रणीत यह संस्कृत का ग्रंथ है । १९५४ में, डॉ० प्रेमलता जी का पी-एच०डी० इसी ग्रंथ पर था । डॉ० प्रेमलताजी ने उक्त ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद सहित संपादन किया । प्रकाशन में ग्रंथ का पाठ-संशोधन, पाठ-विमर्श तथा साथ में व्याख्यात्मक टिप्पणी भी सम्मिलित है । यह ग्रंथ भी दो खण्डों में प्रकाशित होना था । प्रथम खण्ड का प्रकाशन १९९८ में इंदिरा गांधी नेशनल सेन्टर फॉर आर्टस् द्वारा किया गया । द्वितीय खण्ड का काम बहनजी ने पूरा किया तथा उसके बाद ही, आपका परलोकगमन हुआ । द्वितीय खण्ड के प्रकाशन का कार्य वर्तमान में चल रहा है तथा संभवतः जल्दी ही यह तैयार होकर जनता के हाथों में आ जायेगा ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा द्वारा लिखित, संपादित अनूदित तथा पाठ-संशोधित संगीत संबंधी ग्रंथों का विवरण–

प्रो० प्रेमलता जी के संगीत संबंधी ग्रंथों पर दृष्टिपात करने से पूर्व हमें यहाँ आपके गुरू पं० ओम्कारनाथ ठाकुर जी के संगीत ग्रंथों में आपकी भूमिका का पुनः स्मरण कर लेना चाहिये । पुनरूक्ति के दोष से बचने के लिए केवल उन ग्रंथों का नामोल्लेख ही कर रही हूँ ।

१. 'संगीतांजलि'–भाग १ से ६, लेखक प्रकाशकः पं० ओमकारनाथ

ठाकुर २. 'प्रणवभारती'–लेखक पं० ओमकारनाथ ठाकुर ।

उपरोक्त ग्रंथों के शास्त्र खण्डों में बहनजी की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण थी ।

३. 'संगीतराज'–यह ग्रंथ १५वीं शताब्दी का है तथा आकार में संगीतरत्नाकर से भी बहुत विशाल है । यह ग्रंथ राजस्थान के महाराणा कुंभा द्वारा रचित है । इस ग्रंथ के पाँच सर्ग है । १) पाठ्यरत्नकोष २) गीतरत्नकोष ३) वाद्यरत्नकोष ४) नृत्यरत्नकोष ५) रसरत्नकोष इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति राजस्थान से, डॉ० प्रेमलताजी को प्राप्त हुई थी । बहनजी ने ग्रंथ की विशालता तथा विषय-वस्तु का शास्त्रीय प्रतिपादन आदि देखकर न केवल इसका पाठ संशोधन किया बल्कि आवश्यकता पड़ने पर अपनी टिप्पणी देते हुए उसका संपादन किया । बहनजी के सत्प्रयत्नों के कारण ही यह ग्रंथ ग्रंथाकार में पहली बार संगीत जगत् के समक्ष प्रस्तुत हुआ । यह ग्रंथ एक आलोचनात्मक संपादन (Critical Edition) है तथा मूल संस्कृत ग्रंथ को आंग्ल भाषा में समझाया गया है । इस ग्रंथ में अंग्रेजी भाषा में ग्रंथ का विस्तृत परिचय, अंत में शब्दों की अनुक्रमणिका, श्लोकों की अर्धपंक्ति-अनुक्रमणिका तथा बहुत से परिशिष्ट भी दिये हैं । इस ग्रंथ को दो खण्डों में तैयार किया गया । प्रथम खण्ड जिसमें प्रारंभिक दो सर्ग (पाठ्यरत्न कोष' एवं 'गीतरत्न कोष)' है वह १९६३ में बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के संस्कृत पब्लिकेशन बोर्ड द्वारा प्रकाशित किया गया । द्वितीय खण्ड भी तैयार हो गया था तथा बहुत कुछ छप भी गया था लेकिन अज्ञात कारणों से प्रकाशित नहीं हो पाया ।

४. 'सहसरस'–इस ग्रंथ में नायक बख्शू (मध्यकालीन ध्रुवपद के प्रमुख कलाकार एवं रचनाकार) रचित हजार पदों का संग्रह किया गया है । अधिकांश पद मध्यदेशीय भाषा (ब्रजभाषा) में रचित हैं । संगीत

एवं साहित्य तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। हिन्दी साहित्य में बख्शू के पदों को यत्किंचित् प्रकाश में लाने का कार्य श्री हरिहर निवास द्विवेदीजी ने किया है। संगीत के ग्रंथों में, पं० भातखंडेजी के 'संगीतशास्त्र' के चौथे खण्ड में, 'रागकल्पद्रुम' में तथा सौरेन्द्र मोहन टैगोर के ग्रंथ 'संगीतसार' में बख्शू का नामोल्लेख है। बहनजी ने बख्शू के हजार पदों का यथासम्भव पाठ संशोधित करते हुए उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। मूल ग्रंथ तथा उसकी भूमिका फारसी में थी। बहनजी ने ग्रंथ का संपादन किया है। ग्रंथ हिन्दी भाषा में लिखा गया है। इसका प्रथम संस्करण १९७२ में संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया है।

५. **'संगीतरत्नाकर' का अंग्रेजी अनुवाद**–संगीत के इतिहास का अति महत्वपूर्ण ग्रंथ 'संगीतरत्नाकर' है जो 'सप्ताध्यायी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ की महत्ता देखकर डॉ० प्रेमलताजी के निर्देशन में उनके शोध-सहायक डॉ० रवीन्द्र कुमार शृंगीजी ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया तथा जहाँ-जहाँ आवश्यकता लगी वहाँ अपनी टिप्पणी भी दी है। यह केवल अनुवाद मात्र नहीं है बल्कि साथ में लेखक द्वय की टिप्पणी भी है। पूरा ग्रंथ बहनजी की निगरानी में तैयार हुआ है। यह दो खण्डों में है। प्रथम खण्ड १९७८ में तथा द्वितीय खण्ड १९८८ में; वाराणसी के मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित किया गया है तथा इसमें आर्थिक सहायता यू०जी०सी ने दी है। 'संगीतरत्नाकर' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का आंग्ल अनुवाद विदेशी तथा दक्षिणी विद्वानों को अति उपयोगी सिद्ध हो रहा है तथा भविष्य में भी होगा। आजकल प्रो० सुभद्रा चौधरीजी इस ग्रंथ का टीका सहित हिन्दी अनुवाद कर रही हैं। प्रथम भाग प्रकाशित हो गया है, दूसरा छप रहा है।

६. **'रस-सिद्धांत'**–वत्सलनिधि' दिल्ली द्वारा डॉ० प्रेमलता शर्मा

जी के 'रस' विषय पर व्याख्यान आयोजित किये गये थे। उन व्याख्यानों को पुस्तकाकार में, १९८८ में दिल्ली के नेशनल पब्लिशिंग हाउस ने प्रकाशित किया है। 'रस-सिद्धांत' पुस्तक में बहनजी का 'रस' विषयक आजीवन किया गया मनन-चिंतन स्पष्ट दिखता है। आपने साहित्य के रस को संगीत के साथ किस प्रकार जोड़ा जा सकता है यह स्पष्ट किया है। यह आपकी अपनी विशिष्ट देन है। बहनजी से पूर्व, पं० ओम्कारनाथ जी ने राग और रस को अपनी दृष्टि से जोड़ा था, तथा समझाया था। पंडितजी का दृष्टिकोण डॉ० प्रदीपकुमार दीक्षित लिखित पुस्तक 'जीवन-कवन-सुमन' में मिल जाता है। इस पुस्तक में दीक्षित जी ने पंडित जी द्वारा, बड़ौदा म्यूजिक कालिज में १९५० में, 'राग और रस' विषय पर दिये गये व्याख्यानों का गुजराती से हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है।

७. 'बृहद्देशी' का पाठ संशोधन तथा विमर्श सहित अंग्रेजी अनुवाद :– (टीका सहित) भरत ना० शा० की तरह मतंग कृत 'बृहद्देशी' के समय के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है किन्तु 'बृहद्देशी' 'भरत नाट्यशास्त्र' तथा 'अभिनवभारती' और नाट्यशास्त्र' तथा 'संगीतरत्नाकर' के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी-स्वरूप है। पुस्तक खण्डित अवस्था में प्राप्त है। किन्तु नाट्य से स्वतंत्ररूप से 'गीत' तथा 'वाद्य' की चर्चा करने वाला यह प्रथम ग्रंथ है।

बहनजी ने १९८५ में, श्री अनिलबिहारी ब्यौहार (संप्रति-इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय में, म्यूजिकॉलोजी के प्राध्यापक) से मतंग कृत 'बृहद्देशी' का पाठसंशोधन तथा टीका सहित हिन्दी अनुवाद करवाया था। श्री अनिल बिहारी ब्यौहार की पी-एच-डी० की शोध का विषय ही मतंगकृत 'बृहद्देशी' का अध्ययन था। यह शोध-प्रबन्ध दो भागों में प्रस्तुत किया गया था। बहनजी ने 'रत्नाकर' के बाद इस ग्रंथ का

टीका सहित अंग्रेजी अनुवाद तैयार किया जो विदेशी एवं दक्षिणी विद्वानों को उपयोगी सिद्ध होगा। यह अनुवाद भी दो खण्डों में प्रकाशित हुआ है। इंदिरा गाँधी नेशनल सेन्टर फॉर आर्ट्स द्वारा प्रथम खण्ड १९९२ में तथा द्वितीय खण्ड १९९४ में पुस्तकाकार में प्रकाशित हो गया है।

डॉ० प्रेमलताजी की योजना 'बृहद्देशी' का तृतीय खण्ड भी प्रकाशित करने की थी जिसमें वे अपने जीवन भर के अध्ययन के सार को अक्षरदेह देना चाहती थीं। डॉ० सुभद्रा चौधरी ने कई बार बहनजी को इस तृतीय खण्ड को तैयार करने का स्मरण दिलाया। किन्तु निरन्तर गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण आपका यही जवाब था "अब हिम्मत नहीं हो रही है।" संगीतजगत् बहनजी के आजीवन संगीत शास्त्राध्ययन के सार से वंचित ही रह गया।

८. ठाकुर जयदेव सिंह जी के दो ग्रंथों का संपादन :-

म्यूजिकॉलोजी के क्षेत्र में ठाकुर जयदेव सिंह एक सम्मानीय नाम है। आप संगीत के मर्मज्ञ थे तथा अपने अंतकाल तक पठन-पाठन-अध्ययन में रमे रहे। आपने गहन अध्ययन के बाद संगीतकी दो पुस्तकों की पाण्डुलिपि तैयार की थी। इनका पुस्तकाकार में प्रकाशन हो उसके पूर्व ही आपका स्वर्गवास हो गया। ठाकुर जयदेव सिंहजी के परिवार वालों ने आचार्य बृहस्पतिजी के परिवारजनों की तरह उनकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि को पुस्तकाकार में प्रकाशित करवाने की जिम्मेदारी डॉ० प्रेमलता शर्माजी को दी। इससे दो बात सिद्ध होती हैं-म्यूजिकोलोजी क्षेत्र के स्थापित तथा मान्य विद्वानों का तथा उनके परिवार वालों का बहनजी पर विश्वास तथा बहनजी का भी इन विद्वानों के प्रति आदर तथा प्रेमभाव। तभी तो अपनी व्यस्तताओं के बीच भी आपने इन दो परिवार वालों को निराश नहीं किया। डॉ० प्रेमलता शर्मा ने ठाकुर जयदेवसिंह लिखित दो निम्नलिखित ग्रंथों का संपादन किया।

१. 'संगीत शास्त्र का इतिहास' (हिन्दी भाषा में)

२. 'इण्डियन म्यूज़िक (अंग्रेजी भाषा में)

उपरोक्त दोनों ग्रंथों का प्रकाशन संगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता द्वारा हुआ। प्रथम ग्रंथ १९९४ में तथा द्वितीय ग्रंथ १९९५ में प्रकाशित हुआ[१]।

९. 'सेमिनार ऑन शार्ङ्गदेव'–संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली की उपाध्यक्षा के अपने कार्यकाल के बीच बहनजी ने तीन महत्वपूर्ण विचार गोष्ठियों का आयोजन किया। इन तीनों गोष्ठियों की संपूर्ण योजना बहनजी ने स्वयं बनाई थी। १. 'शाङ्गर्देव एण्ड हिज संगीतरत्नाकर'–यह अंताराष्ट्रीय सेमीनार पहले दौलताबाद (पुराना देवगिरि) में करने का विचार था लेकिन बाद में लातूर, महाराष्ट्र में आई भूकम्प-आपदा के कारण वाराणसी में, १९९४ में, आयोजित हुआ। २. 'मतंग एण्ड हीज यूनीक वर्क बृहद्देशी' पर १९९५ में, हम्पी, कर्णाटक में, एक सेमिनार आयोजित हुआ। ३. कलाओं में 'रस' तत्त्व पर १९९७ में, वाराणसी में सेमिनार हुआ। इनमें से प्रथम सेमिनार के प्रत्येक प्रपत्र एवं बाद में हुई चर्चा संपादित कर बहनजी ने एक पुस्तक के रूप में संगीत नाटक अकादमी द्वारा १९९७ में प्रकाशित करवाया।

आप अन्य दो सेमिनार के प्रपत्रों को संपादित करके पुस्तकाकारमें प्रकाशित करना चाहती थीं तथा दूसरे सेमिनार के पत्रों का बहुत सा काम कर चुकी थीं किन्तु उनके प्रकाशन के पूर्व ही आपका स्वर्गवास हो गया।

---

१. आचार्य बृहस्पतिजी के ग्रंथ, 'नाट्यशास्त्र का अट्ठाईसवाँ अध्याय' के प्रकाशन पूर्व ही उनका अवसान होने पर, पुस्तक के प्रकाशन के समय प्रूफरीडिंग का दुरुह काम प्रो० प्रेमलताजी ने किया। पुस्तक के प्रारंभ में श्रीमती सुलोचना बृहस्पति ने प्रेमलताजी के सहयोग के लिए कृतज्ञता ज्ञापन किया है।

१०. **'नाट्यकल्पद्रुम'**–यह ग्रंथ केरल के मणिमाधव चाक्यार द्वारा मलयालम भाषा में दक्षिण भारतीय नृत्यनाट्य शैली कुडियाट्टम् के शास्त्रपक्ष पर लिखा गया था। श्रीमणिमाधव चक्यार के पुत्र ने इस ग्रंथ का अपनी क्षमतानुसार हिन्दी में अनुवाद किया था। डॉ० प्रेमलताजी 'कुडियाट्टम्' शैली से अत्यधिक प्रभावित थीं। अतः आपने इस हिन्दी अनुवाद को ठीक करके पुस्तक का संपादन करते हुए, १९९६ में, संगीत नाटक अकादमी द्वारा इसे प्रकाशित करवाया।

प्रो० प्रेमलता शर्मा द्वारा संपादित, संकलित तथा अनूदित पुस्तकें जो निकट भविष्य में प्रकाशित होंगी

जो पुस्तकें प्रकाशित हो गई उनके अतिरिक्त कुछ पुस्तकों पर बहनजी ने काम पूर्ण कर लिया था तथा जिनका प्रकाशन चल ही रहा था उस बीच बहनजी का देहान्त हो गया, उन पुस्तकों की सूची प्रस्तुत है।

१. **'नूर रत्नाकर'**–प्रो० शहाब सरमदी द्वारा अंग्रेजी भाषा में उत्तर भारतीय संगीत का इतिहास लिखा गया है जिसका नाम है 'नूर-रत्नाकर। यह एक विराट् ग्रंथ है जिसमें अरब तथा फारस के संगीत का इतिहास भी है। बहनजी १९९३ से १९९८ तक इस ग्रंथ का संपादन कर रही थी। अब आपकी मृत्यूपरांत संगीत रिसर्च अकादमी कोलकाता द्वारा इसका प्रकाशन निकट भविष्य में होने की पूर्ण संभावना है।

२. **'संगीत कलाधर'**–गुजरात के श्री डाह्यालाल शिवराम द्वारा, १९०१ में, लिखित गुजराती भाषा का यह ग्रंथ है, जिसमें संगीत का प्रायोगिक पक्ष एवं शास्त्र पक्ष दोनों है। इस ग्रंथ का अपने छात्र डॉ० अनिल बिहारी ब्योहार द्वारा अपने निर्देशन में हिन्दी रूपान्तरण करवा कर बहनजी ने संपादन किया है। यह ग्रंथ संगीत नाटक अकादमी नई

दिल्ली द्वारा शीघ्र प्रकाशित होने की की आशा है ।

३. प्रमुख संगीतशास्त्र ग्रंथों में से, संगीत संबंधी महत्त्वपूर्ण विषयों को लेकर (स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, राग, ताल इत्यादि) काल क्रमानुसार उद्धरणों का एक संकलन (चयनिका) साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा निकट भविष्य में प्रकाशित होगा । इस पुस्तक की संपादिका डॉ० प्रेमलता शर्माजी तथा सहसंपादक डॉ० मुकुंद लाठ हैं ।

४. भरत के 'नाट्यशास्त्र' के संगीत संबंधी अध्यायों का अंग्रेजी तथा हिन्दी अनुवाद का काम बहनजी पूर्ण करके गई है । कालिदास अकादमी उज्जैन द्वारा इसका प्रकाशन होना है । लेकिन यह अनिश्चित है । पूरे ना०शा० के अनुवाद की योजना थी अतः अन्य अंशों के अनुवाद भी जब पूर्ण हो जायेंगे तभी प्रकाशन संभव हो पायेगा ।

ऊपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि बहनजी १९५३ से, जबसे आप पं० ओम्कारनाथजी की लेखन-सहायिका बनीं तबसे अपनी अंतिम श्वास तक अर्थात् ५-१२-९८ तक लिखती-पढ़ती तथा अध्ययन करती ही रहीं । ४५ वर्ष की इस काल-अवधि में बहनजी के पठन-पाठन एवं लेखन में कोई अवरोध नहीं आया ।

आपने प्रचुर मात्रा में लिखा है । अनेक पत्रिका एवं पुस्तकों का संपादन किया है । अनेक पुस्तकों का अनुवाद भी किया है तथा अनेक प्राचीन ग्रंथों का पाठ संशोधन भी किया है । आपकी विद्वत्ता एवं लगातार श्रम करने की क्षमता सभी ने स्वीकार की । किन्तु कुछ विद्वानों का बहनजी के उपर दबी जबान में यह आक्षेप था कि बहनजी ने संपादन, संकलन तथा अनुवाद का बहुत अधिक कार्य किया किन्तु एक भी अपनी 'मौलिक' कृति क्यों नहीं लिखी ?

किन्तु यह आक्षेप पूर्ण सत्य नहीं है । आपने जो भी अनुवाद किये वह केवल अनुवाद नहीं थे बल्कि अपनी टिप्पणी तथा व्याख्या सहित

अनुवाद थे (annotated translation) टिप्पणी तथा व्याख्या बहनजी की अपनी निजी थी । आपने जो भी संपादन कार्य किये हैं वे भी मात्र संपादन न होते हुए उसके पूर्व लंबी भूमिका, विषय का विश्लेषण, विषय का इतिहास आदि उनका अपना निजी लेखन है । उदाहरणतः 'संगीतराज' ग्रंथ की विशाल भूमिका, 'चित्रकाव्य कौतुकम्' में चित्र काव्यों का इतिहास एवं विश्लेषण, 'संगीतरत्नाकर' के अंग्रेजी अनुवाद के पूर्व 'रत्नाकर' की परिचयात्मक दीर्घ भूमिका, 'सहसरस' पुस्तक में बख्शू की ऐतिहासिकता इत्यादि उनका अपना अध्ययन है तथा निजी अभिव्यक्ति है ।

'रस सिद्धांत' पुस्तक में साहित्य के रस-सिद्धान्त को संगीत के साथ किस प्रकार जोड़ा जा सकता है ये विचार उनके मौलिक हैं ।

क्या 'अभिनवभारती' ग्रंथ जो कि 'नाट्यशास्त्र' की टीका है तथा 'कलानिधि' ग्रंथ जो कि 'संगीत रत्नाकर' की टीका है उनको हम अभिनवगुप्त तथा कल्लिनाथ की मौलिक कृति मानेंगे ? यदि हाँ तो मतंगकृत 'बृहद्देशी'' के दोनों खण्डों को बहनजी का मौलिक काम मानना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार 'अभिनवभारती' की सहायता से 'नाट्यशास्त्र' को ठीक से समझा जा सकता है, कल्लिनाथ और सिंहभूपाल की टीकाओं द्वारा ही 'संगीतरत्नाकर' अधिक सुस्पष्ट हो सका है । उसी प्रकार बहनजी की पुस्तक द्वारा ही मतंग का 'बृहद्देशी' अधिक सुस्पष्ट हो सका है । यदि आज संगीत जिज्ञासु या शोधकर्ता 'बृहद्देशी' पढ़ लेता है या समझ लेता है तो उसका पूरा श्रेय डॉ० प्रेमलता शर्मा को ही है ।

बहनजी ने प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक काल के संगीत के इतने अधिक ग्रंथों पर कार्य किया है तथा करवाया है कि इससे आपकी जो विस्तृत तथा समग्र दृष्टि विकसित हुई वो आपके फुटकर लेखों में उजागर होती है । आपके अधिकांश लेख एक बहुमूल्य मोती की तरह है तथा ये आपका मौलिक लेखन ही माना जाना चाहिए ।

अनेक भाषाओं की ज्ञाता प्रो० प्रेमलता शर्मा :-

बहनजी के अनेकविध भाषाज्ञान पर आश्चर्य होता है। एक व्यक्ति इतनी सारी भाषाएँ कैसे जान सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर में का० हि० वि० वि० के संस्कृत एवं धर्मविज्ञान संकाय के प्रो० कृष्णकांत शर्मा का कहना है कि, "प्रत्येक भाषा की अपनी एक प्रकृति होती है। बहनजी को भाषा की प्रकृति की बहुत अच्छी पहचान थी। यह उनकी जन्मजात प्रतिभा थी। इसीलिए वे विभिन्न भाषाएँ बहुत जल्दी से समझ लेती थीं, सीख लेती थीं।"

भाषाएँ जानना, समझना, बोल लेना, लिख लेना, पढ़ लेना इत्यादि एक बात है तथा किसी भाषा पर पूर्ण प्रभुत्व होना एक अलग बात है।

डॉ० प्रेमलताजी को संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी पर पूर्ण प्रभुत्व था। इन तीनों भाषाओं में आप घण्टों धाराप्रवाह भाषण कर सकती थीं, पुस्तकें लिख सकती थीं तथा अत्यंत दुष्कर माना जाने वाला अनुवाद का काम भी अत्यंत कुशलता के साथ कर सकती थीं। हिन्दी तथा संस्कृत में तो काव्यरचना भी कर लेती थीं। कहते हैं कोई काम करते-करते उसमें सिद्धि आ जाती है। बहनजी ने इतना अधिक पढ़ा तथा इन तीन भाषाओं में इतना अधिक लिखा कि उनकी लेखनी को धीरे-धीरे सिद्धि प्राप्त हो गई। आपकी लेखन शैली सीधी, सरल किन्तु प्रौढ़ है। विचार की अभिव्यक्ति अत्यंत सहज है। आपका शब्द चयन एकदम सटीक होता है अतः अभिव्यक्ति भी उतनी ही सटीक होती है। लेखन प्रवाह एकदम तरल है। समय के साथ जैसे-जैसे आपका ज्ञान, अनुभव एवं व्यक्तित्व विकसित होता गया वैसे-वैसे आपका लेखन, भाषण आदि भी अधिक विचारोत्तेजक एवं प्रभावशाली होता गया। ऊपरोक्त तीनों भाषाओं में आपने बहुत अधिक लेखन किया है, चाहे वह लेख के रूप में हो या पुस्तक के रूप में। आपने हिन्दी तथा संस्कृत में

अनेक काव्य-रचनाएँ भी की हैं।

इन तीन भाषाओं के अतिरिक्त आप पंजाबी, बांग्ला, गुजराती, मराठी, उर्दू तथा हिन्दी की सहोदरा ब्रज एवं अवधी की भी अच्छी जानकारी रखती थी। पंजाबी तो आपकी मातृभाषा ही थी। घर में माँ के साथ पंजाबी में ही बातचीत होती थी अतः उसकी जानकारी तो स्वाभाविक ही है।

गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण बांगला भाषा का अच्छा परिचय हो गया। बांगला लिपि देवनागरी लिपि से भी प्राचीन होने से संस्कृत की कई प्राचीन पुस्तकें बांगला लीपि में ही मिलती हैं। अतः बांगला लिपि से भी आपका परिचय हो गया। आपने बंगाल का श्रेष्ठ साहित्य एवं कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर का पूरा साहित्य पढ़ लिया था। आपने दर्शन के अपने गुरू पं० गोपीनाथ कविराजजी द्वारा बंगला भाषा में लिखित पुस्तक, 'साधु-दर्शन एवं सत् प्रसंग' का हिन्दी अनुवाद किया है तथा माँ आनंदमयी के वचनों का संग्रह, जिस 'अमरवाणी' नामक बांगला पुस्तक में है उसका भी हिन्दी अनुवाद किया है। ये दोनों पुस्तकें प्रकाशित भी हुई हैं। यह तो सर्वविदित है कि अनुवाद के लिये दोनों भाषाओं का सम्यक् ज्ञान आवश्यक होता है।

मथुरा के वैष्णव मंदिर में बहुत से गुजराती भक्त आते रहते थे। बहन जी मथुरा के वैष्णव मंदिर की सेवा में सात वर्ष थीं। अतः गुजराती भक्तजनों से गुजराती भाषा का परिचय हो गया था। बाद में वाराणसी में संगीत के आपके शिक्षक पं० बलवंतराय भट्ट तथा संगीत गुरू पं० ओम्कारनाथजी दोनों गुजराती थे तथा उनके दीर्घ काल के संपर्क के कारण गुजराती का ज्ञान परिपक्व हो गया। डॉ० प्रेमलताजी ने अपने गुजराती भाषा के ज्ञान के आधार पर अपने एक छात्र डॉ० अनिलबिहारी के पास श्री डाह्यालाल शिवराम रचित संगीत के गुजराती

ग्रंथ 'संगीत कलाधर' का हिन्दी अनुवाद करवाया है ।

मथुरा के सात-आठ वर्ष निवास तथा वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित होने से आप को ब्रजभाषा का भी अच्छा ज्ञान हो गया । अवधी तो हिन्दी की ही एक शाखा स्वरूप है उसमें भी आपकी अच्छी जानकारी थी ।

आपके पी-एच०डी० के निर्देशक डॉ० परशुराम लक्ष्मण वैद्य महाराष्ट्रीयन थे अतः मराठी भाषी थे । का० हि० वि० वि० में छात्रा के रूप में आपकी स्थानीय अभिभावक एवं परिवार की अभिन्न मित्र डॉ० विमलाताई देवधर भी मराठी भाषी थीं । पं० ओम्कारनाथजी स्वयं भी मराठी के बहुत अच्छे ज्ञाता थे । पं० बलवंतराय जी भी अच्छी मराठी जानते थे । आपकी दीर्घकाल की सहाध्यापिका डॉ० विमला मुसलगांवकर भी मराठी थी । इन सबके निकट परिचय के कारण आपको मराठी का भी ज्ञान हो गया ।

दिल्ली में, बचपन में, आपके पिताजी ने आपको उर्दू सिखाने के लिए निष्णात शिक्षक की व्यवस्था की थी जो घर पर आ कर उर्दू सीखाते थे । आपके साथ आपके पिताजी ने भी उर्दू तथा फारसी सीखी । आप उर्दू लिखना पढ़ना जानती थीं । आंप द्वारा संपादित पुस्तक 'सहसरस' की प्रस्तावना तैयार करने में आपके पिताजी ने आपकी बहुत सहायता की थी । पिताजी का उर्दू-फारसी का ज्ञान यहाँ बहुत सहायक सिद्ध हुआ ।

आपके समकालीन अन्य संगीतशास्त्रियों में आपका अनेकविध भाषा-ज्ञान आपका अत्यंत सबल पक्ष था । अनेक भाषाओं की जानकारी के कारण आपका वाँचन अत्यंत विशाल था । अतः जानकारी का विपुल भण्डार आपके पास था ।

●

पंचम अध्याय

प्रो० प्रेमलता शर्मा के क्रियात्मक संगीत सम्बन्धी विशिष्ट कार्य

संगीत के दो पक्ष हैं एक शास्त्र पक्ष तथा दूसरा प्रायोगिक पक्ष या कला पक्ष । संगीत मुख्यतः प्रायोगिक शास्त्र है किन्तु इसके दोनों पक्ष एक दूसरे के पूरक हैं तथा अन्योन्याश्रित हैं । एक के बिना दूसरा पंगु है । प्रो० प्रेमलता शर्मा जी भले ही संगीतशास्त्री के रूप में ही प्रसिद्ध हैं किन्तु आप एक संगीतकार एवं वाग्गेयकार भी थीं ! आप हमेशा अपने विद्यार्थियों से कहती रहती थीं कि बिना संगीत के केवल संगीतशास्त्र का ज्ञान पंगु होता है । आप संगीतशास्त्र के विद्यार्थियों को भी संगीत के नित्य अभ्यास के लिये प्रेरित करती रहती थीं ।

आपने बाल्यकाल में ही वाद्यसंगीत एवं नृत्य की प्रारंभिक तालीम ली थी । आप अनेक वाद्य थोड़ा-थोड़ा बजा लेती थी किन्तु दिलरुबा साधिकार बजाती थीं । मथुरा में श्री व्यवहारेजी नामक संगीतज्ञ के पास आपने गायन में ध्रुवपदकी तालीम ली थी । आपको क्रियात्मक संगीत का विशिष्ट एवं गहन ज्ञान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में पं० ओम्कारनाथ ठाकुर की छत्रछाया में प्राप्त हुआ । आप उनकी अति प्रिय विद्यार्थिनी थीं । वाराणसी में आपको ख्याल गायन की तालीम मिली थी तथा १९५४-५५ के समय में आपने का०हि०वि०वि० एम० म्यूज० (गायन) का कठिन पाठ्यक्रम तैयार कर लिया था । ख्याल एवं ध्रुवपद दोनों गायकी जानते हुए भी आपकी अपनी रूचि ध्रुवपदके प्रति थी तथा अपने कार्यक्रम में आप ध्रुवपद ही प्रस्तुत करती थीं । आप ध्रुवपद के साथ अनेक क्लिष्ट लयकारी कर लेती थीं । आपने वाराणसी की

'संगीतपरिषद्'[1] तथा कलकत्ता की 'सदारंग' संगीत कान्फरेन्स जैसी ख्यातनाम संस्थाओं में ध्रुवपदगायन का कार्यक्रम दिया था । आपको अनेक रागों का तथा तालों का सम्यक् ज्ञान था । आप हिन्दी तथा संस्कृत काव्य बनाकर स्वयं उसकी स्वर रचना किया करती थी । आपके प्रायोगिक संगीत सम्बन्धी विशिष्ट कार्य निम्नानुसार है–

१. ध्रुपद उत्थान के लिए किये गये कार्य–

उत्तर भारतीय संगीत में गायन की ध्रुवपद शैली मध्यकालीन संगीत की एक सशक्त एवं लोकप्रिय शैली थी । मियांतानसेन, बैजू, बक्षू, गोपालनायक तथा स्वामी हरिदास आदि कलाकार ध्रुवपद गायन किया करते थे । कालचक्र में इसकी लोकप्रियता का ह्रास हुआ तथा वर्तमान समय में ख्याल शैली अधिक लोकप्रिय है । ध्रुवपद जैसी पारंपरिक एवं सशक्त गायन शैली के पुनरुत्थान की महती आवश्यकता थी । वाराणसी में संकटमोचन हनुमान के अति प्रसिद्ध मंदिर के महंत स्व० पं० अमरनाथ मिश्र परवावज के जाने माने कलाकार थे । उस समय संगीत संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संकायाध्यक्ष, प्रसिद्ध विचित्र वीणा वादक प्रो० लालमणि मिश्रा थे । आप दोनों ने ध्रुवपद पुनरुत्थान की योजना बनाई तथा तत्कालीन काशी नरेश डॉ० विभूति नारायण सिंह जो प्राचीन विद्याओं के पुनरूत्थान में हमेशा सहयोग दिया करते थे उनसे सहयोग मांगा । काशीनरेश ने भी कुछ आर्थिक सहायता का वचन दिया । आप सबके साथ जुड़े युवाशक्ति से ओत-प्रोत प्रतिभावान् संगीतकार डॉ० राजेश्वर आचार्य । आप सबके सद्प्रयत्नों के फलस्वरूप १९७५ में महाराजा बनारस विद्या मंदिर न्यास एवं संकटमोचन फाउन्डेशन के

---

[1]'संगीतपरिषद्' के गायन की तसवीर इस पुस्तक में लगाई है जिसमें आपकी विद्यार्थिनी तथा व्रतमान में वायलिन की विख्यात कलाकार डॉ० एन० राजन् वायलिन पर आपकी संगति कर रही है ।

संयुक्त तत्वावधान में वाराणसी के तुलसीघाट पर सर्वप्रथम ध्रुवपद मेले का आयोजन हुआ। एकाध वर्ष बाद डॉ० प्रेमलता शर्मा भी इसकी सक्रिय सदस्या बन गई। आज तक प्रति वर्ष महाशिवरात्रि पर यह ध्रुपद मेला आयोजित होता है तथा उसमें विविध प्रांतों से ध्रुवपदगायक, परवावज एवं वीणावादक अपना कार्यक्रम देने आते रहते हैं। डॉ० प्रेमलता शर्मा इस मेले के समय प्रातः काल ध्रुवपद पर विचारगोष्ठी आयोजित किया करती थी, जिसमें ध्रुवपद के कलाकार अपने विचार प्रस्तुत करते थे तथा रात को गायन वादन का कार्यक्रम होता था। बाद में आपने दस वर्षों तक (१९८६ से १९९५ तक) 'ध्रुपद' वार्षिकी पत्रिका का संपादन किया जो वाराणसी से प्रकाशित होती थी।

केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की आर्थिक सहायता से आपने १९७९ तथा १९८० में वृंदावन में दो ध्रुपद मेले आयोजित किये। इसके बाद में वृंदावन में श्रीवत्स गोस्वामीजी एवं चैतन्य प्रेम संस्थान के गुरू एवं आचार्य श्री पुरूषोत्तम गोस्वामीजी आदि ने प्रतिवर्ष ध्रुपद मेला आयोजित करने की प्रवृत्ति चालू रखी। १९८१ में आपने राजस्थान के नाथद्वारा में केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की सहायता से ध्रुपद मेला आयोजित किया। १९८२ में पुनः आपने संगीत नाटक अकादमी की सहायता से महाराष्ट्र के अंबेजोगाइ में ध्रुपद मेला आयोजित किया। इन चार ध्रुपद मेलों के आयोजन के पश्चात् आपका कई ध्रुपद गायक, पखावज वादक, रुद्रवीणा वादक आदि के साथ अच्छा परिचय हो गया। आप युवा कलाकारों का खूब उत्साहवर्धन करती थी। आपकी विद्वत्ता, आपके ध्रुवपद प्रेम तथा उसके उत्थान में आपकी निष्ठा देखते हुए मध्य प्रदेश में भी ध्रुपद संबंधी प्रवृत्तियों में आपको याद किया गया, निमंत्रित किया गया। मध्यप्रदेश में ध्रुपद संबंधी प्रवृत्तियों में आप सक्रिय रूप से जुड़ीं रहीं तथा वहाँ भी ध्रुपद उत्थान में आपने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मध्यप्रदेश संस्कृति विभाग की सहायता से मध्यप्रदेश कला परिषद ने कई स्थानों पर ध्रुपद समारोह आयोजित किये । सबसे महत्वपूर्ण कार्य मध्यप्रदेश में भोपाल के भारत भवन के पास ध्रुपद-केन्द्र की स्थापना का हुआ । भविष्य में भी ध्रुपद के कलाकार निर्मित हो सकें तथा इच्छुक विद्यार्थी ध्रुपद सीख सके इस हेतु गुरू-शिष्य परंपरा पर आधारित ध्रुपद केन्द्र की भोपाल में १९८१ में स्थापना हुई । इसके निर्देशक बने डागुर परम्परा के उस्ताद जियाफरीदुद्दीन डागुर । इस पूरी योजना को मूर्तरूप देने में डॉ० प्रेमलता शर्मा का विशेष योगदान था । अतः आपको उक्त ध्रुपद केन्द्र की कार्यकारिणी परिषद् (Executive Council) का सदस्य बनाया गया । आज भी उक्त ध्रुपद केन्द्र में विद्यार्थियों को ध्रुपद की घरानेदार तालीम दी जाती है ।

संक्षेप में ध्रुपद पुनरूत्थान कार्य में आपने (१) ध्रुपद मेलों का आयोजन किया । (२) ध्रुपद से संबंधित विचारगोष्ठियों का आयोजन किया । (३) 'ध्रुपद' वार्षिकी पत्रिका का संपादन किया (४) गुरु शिष्य परंपरा पर आधारित ध्रुपद केन्द्र की स्थापना में अपना योगदान दिया ।

२. भरत नाट्यशास्त्र में वर्णित 'पूर्वरंग' की पुनः प्रतिष्ठा

नाट्यशास्त्रानुसार नाट्य प्रयोग में संगीत एवं नृत्य दो संदर्भों में आता है । १) पूर्वरंग में–अर्थात् नाट्य प्रारंभ होने से पूर्व जो संगीत एवं नृत्य का प्रयोग किया जाता है । २) नाट्यान्तर्गत–नाट्य प्रयोग के बीच-बीच में होने वाला संगीत, नृत्य का प्रयोग ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा जी बहुत वर्षों तक स्वयं नाट्यशास्त्र का अध्ययन एवं अध्यापन करती रही । नाट्यशास्त्र में पूर्वरंग में प्रयुक्त होने वाले संगीत एवं नृत्य के विषय में विस्तृत जानकारी दी गई है । बहनजी केवल शुष्क शास्त्रज्ञ ही नहीं थीं । आपके मन में पढ़ते पढ़ाते समय कई बार यह विचार आता था कि इन चीजों का प्रयोग भी होना चाहिये ।

एक ऐसा अवसर आपके सम्मुख उपस्थित हुआ जिससे आपको प्राचीन पूर्वरंग पुनर्जीवित करने की प्रेरणा हुई । १९७३ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा कालिदास सम्मेलन में, उज्जैन में एक प्रस्तुति भेजने का निर्णय हुआ । इसका उत्तरदायित्व डॉ० प्रेमलता शर्माजी को सौंपा गया । इस प्रथम प्रयास में तो बहनजी ने कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्', 'मालविकाग्निमित्रम्' तथा 'शाकुन्तलम्' से कुछ प्राकृत भाषा के पद लिये, जिनको 'ध्रुवा' कहते हैं तथा उनको ऐसे रागों में बाँधा जिन रागों का प्राचीन ग्राम से (षड्ज एवं मध्यम ग्राम) कोई सम्बन्ध बैठा सकते हैं । बहनजी ने इन पदों को स्वर बद्ध किया तथा मधुर कण्ठवाले तथा स्पष्ट संस्कृत उच्चारण कर सकने वाले गायक गायिकाओं से गवाया । गीतों के बीच में बहनजी द्वारा संस्कृत में लिखित वार्तालाप बोले गये । कार्यक्रम का शीर्षक दिया गया 'कालिदास संगीतम्' । यह कार्यक्रम उज्जैन में बहुत अधिक पसंद किया गया तथा उसको पुरस्कार भी दिया गया । उक्त कार्यक्रम में बहनजी ने अन्य स्थानों से आई संस्कृत नाटकों की प्रस्तुति देखी तथा अगले वर्ष से स्वयं संस्कृत नाटक प्रस्तुत करने का निर्णय कर लिया ।

दूसरे वर्ष उज्जैन के कालिदास समारोह के लिये बहनजी ने 'मालविकाग्निमित्रम्' के मंचन का निर्णय लिया । नाटक के पूर्व आपने पूर्वरंग का प्रयोग करने का मन बनाया । आप बहुत वर्षों से कक्षा में छात्रों को पूर्वरंग पढ़ाती आई थीं । अब इसका प्रयोग कर दिखाने का समय आया । बहनजी ने इस प्रयोग के लिए बहुत विचार मंथन किया, अनेक संस्कृत एवं संगीत विद्वानों से विचार विमर्श किया । इस पूर्वरंग के मंचन में जो भी समस्या आयी उसका स्वयं समाधान करते हुए आपने गीत के उपोहन तथा कण्डिकाओं को स्वर ताल बद्ध किया, उसे गवाया तथा डॉ० चंद्रशेखरजी एवं श्रीमती जया चंद्रशेखर, जो भरतनाट्यम्

नृत्य के निष्णात थे, उनकी सहायता से प्राचीन अंगहारों का प्रयोग करवाते हुए नृत्य भी करवाया । गीत के ताल के लिए नाट्यशास्त्र में स्पष्ट विधान है । बहनजी ने राग अपने विवेकानुसार चुने । उन्हीं रागों का चयन किया गया जो प्राचीन शास्त्रोक्त ग्रामों से तथा उनकी मूर्च्छनाओं से सम्बद्ध है । इस प्रकार ग्रंथोक्त पूर्वरंग को पुनर्जीवित करने का प्रामाणिक एवं श्रमसाध्य प्रयत्न किया गया जिसकी विद्वानों ने हृदय खोलकर प्रशंसा की । पूर्वरंग के पुनः प्रतिष्ठापन से आपने शास्त्र और प्रयोग के बीच सेतु बना दिया । आपका यह कार्य आपके जीवन का तथा संस्कृत नाटकों के इतिहास का एक अति महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाना चाहिए ।

१९७५ में बहनजी ने संस्कृत नाट्य, नृत्य तथा गीत संगीत आदि के प्रस्तुतीकरण के लिये 'अभिनयभारती' नामक संस्था का विधिवत् गठन किया ।

वैसे इस प्रकार की संस्था स्थापित करने की योजना तो आपके मन में तीन-चार वर्षों से थी । आपके साथ इस संस्था में डॉ० विद्यानिवास मिश्र, डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० कमलेशदत्त त्रिपाठी जैसे दिग्गज संस्कृत विद्वान्, डॉ० चन्द्रशेखर एवं श्रीमती जया चंद्रशेखर जैसे नृत्य निष्णात, श्री वासुदेव स्मार्त जैसे चित्रकला के विशिष्ट कलाकार (आप मंचसज्जा का काम अत्यंत कलात्मकता से कर देते थे) डॉ० भालचन्द्र पाटेकर जैसे गायक जो नाट्य के तथा संगीत के निष्णात थे आदि सम्मिलित थे । संस्कृत नाटक में अभिनय के लिये संस्कृत महाविद्यालय के शिक्षक एवं वरिष्ठ छात्र उपलब्ध थे । संस्कृत ठीक से न जानने वाले कलाकारों के उच्चारण ठीक करवाने के लिए डॉ० उर्मिला शर्मा (बहनजी की कनिष्ठ भगिनी) जैसी सहायक थी । नृत्य के लिए नृत्य सीख रही तथा सीखी हुई छात्रायें थीं । गायन के लिए संगीत संकाय के शिक्षक

एवं छात्र थे । निष्णात वादक एवं संगतकर्ता भी संगीत संकाय से उपलब्ध थे । बहनजी स्वयं नाट्य निर्देशन, संगीत निर्देशन तथा तमाम सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों पर ध्यान देने का कार्य करती थीं । आप तथा पं० कमलेशदत्तजी डॉ० चंद्रशेखरजी को साथ में रखकर घण्टों नाट्यशास्त्र का पूर्वरंग तथा संगीतरत्नाकर का नर्तनाध्याय पढ़ते थे, चर्चा करते थे। इस आपसी विचार विमर्श से तीनों व्यक्तियों को ज्ञान लाभ होता था । इस ज्ञानलाभ से नाट्य प्रयोग की गुणवत्ता में वृद्धि होती थी । कुछ वर्षों का वह काल ऐसा था जिसमें काशी के अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ अनेक विद्वानों तथा कलाकारों का सहयोग बहनजी को मिल गया । इन सब सधे हुए कलाकारों के समूह द्वारा बहनजी के नेतृत्व में श्रेष्ठ नाट्य प्रस्तुतियाँ देश के विभिन्न स्थानों पर मंचित की गईं जिनमें भाषा, उच्चारण, वेशभूषा, मंचसज्जा, वाद्यवृन्द, गायन, नृत्य इत्यादि सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों पर बहनजी द्वारा ध्यान दिया जाता था ।

बहनजी ने
१. कालिदास संगीतम् (संगीत रूपक) १९७३
२. ऋतु संहार (नृत्य रूपक)
३. मालविकाग्निमित्रम् (सम्पूर्ण नाटक का उज्जैन तथा वाराणसी इन दो स्थानों पर १९७५ तथा १९८१ में मंचन हुआ)
४. भवभूति के उत्तररामचरितम् (१९७८ में लखनऊ तथा वाराणसी में मंचन हुआ)
५. विशाखदत्त के मुद्राराक्षसम् का १९८० में लखनऊ तथा वाराणसी में दो स्थानों पर मंचन हुआ ।

नं० ३, नं० ४ तथा नं० ५ इन तीनों नाटकों के मंचन के पूर्व आपने पूर्वरंग प्रस्तुत किया । नाट्य में प्रयुक्त ध्रुवागान तथा पूर्वरंग में प्रयुक्त गीतकों को आपने राग एवं ताल बद्ध किया । इस प्रकार दो ढाई

हजार वर्ष प्राचीन नाट्यमंच को नवीन तकनीकी के साथ वर्तमान संदर्भ में पुनः प्रस्थापित करने का प्रामाणिक एवं श्रमसाध्य प्रयोग आप द्वारा नाट्य क्षेत्र एवं संगीत क्षेत्र को बहुत बड़ी देन है ।

यहाँ मैं उज्जैन में १९७५ में का० हि० वि० वि० की 'मालविकाग्निमित्रम्' की प्रस्तुति के समय इस नाट्य प्रयोग का महत्त्व दर्शाती पत्रिका का मुखपृष्ठ तथा कुछ महत्त्वपूर्ण अंश दे रही हूँ । पुस्तिका मुझे डॉ० कृष्णकांत शर्माजी ने दी थी । मुखपृष्ठ पर नायिका का चित्र श्री वासुदेव स्मार्त द्वारा बनाया गया है । भूमिका परिचय से उस समय नाट्य से जुड़े व्यक्तियों का परिचय मिलेगा । उसमें भाग लेने वाले कई छात्र उच्च पद पर आ गये, कुछ वरिष्ठ व्यक्ति दिवंगत हो गये । 'प्रस्तुत प्रयोग की विशेषताएँ' पढने से पूर्वरंग के मंचन में बहनजी की क्या दृष्टि रही थी उसका अंदाज आ जायेगा ।

नाट्य में प्रयुक्त संगीत की दो भूमिकाएँ है । (१) नाट्य प्रारंभ होने से पूर्व के भाग को पूर्वरंग कहा गया है । यहाँ संगीत स्वयं प्रतिष्ठित है । यहाँ संगीत का प्रयोग देवता परितोष एवं नाट्य प्रयोग के विघ्ननाश के लिये है । यहाँ संगीत विभिन्न परिस्थिति में से आये दर्शकों के मन को नाट्य प्रयोग के लिये तैयार करने के लिये है । यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में है । अतः पूर्वरंग का संगीतप्रयोग अदृष्ट फल की प्राप्ति हेतु है । (२) नाट्य प्रयोग के अन्तर्गत प्रयुक्त संगीत की अपनी स्वप्रतिष्ठा नहीं है । वह नाट्यकी परिस्थिति, नाट्यके रस के अनुकूल चलता है तथा नाट्य प्रसंगो को अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायभूत होता है ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा के व्याख्यान से

दि० २२-१-९७

मालविकाग्निमित्रम्
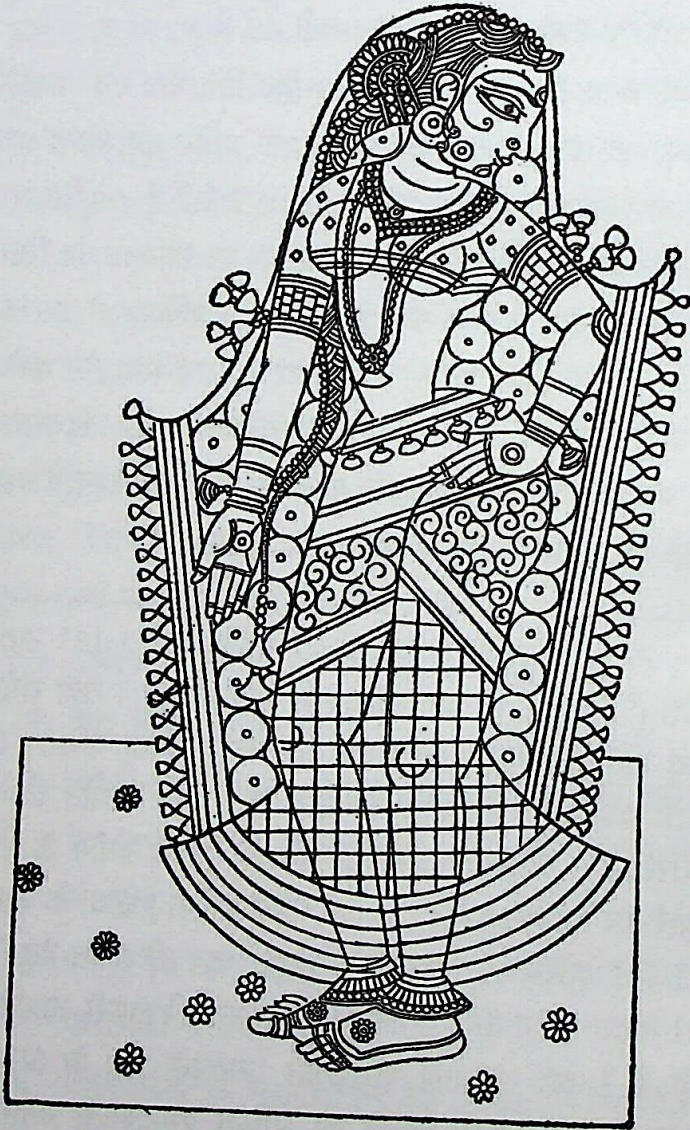
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दल द्वारा उपस्थापन
अष्टादश कालिदास समारोह, उज्जैन
प्रबोधिनी एकादशी, १४ नवम्बर, १९७५

संरक्षक

श्री० ल० ओ० जोशी : कुलपति के सलाहकार

निर्देशन

सामान्य : डॉ० प्रेमलता शर्मा (अध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग)
डॉ० कमलेशदत्त त्रिपाठी (प्रवक्ता, प्राच्यविद्या एवं धर्मविज्ञान संकाय)

संगीत : डॉ० प्रेमलता शर्मा

नृत्य : श्री को० वें० चन्द्रशेखर (प्रवक्ता, महिला महाविद्यालय)

आहार्य : श्री वासुदेव स्मार्त (प्रवक्ता, महिला महाविद्यालय)
श्रीमती जया चन्द्रशेखर (प्रवक्त्री, बसन्त महिला महाविद्यालय, राजघाट)

अनुबोधन

डॉ० सावित्री श्रीवास्तव (प्रवक्त्री, वसन्त कन्या महाविद्यालय)

डॉ० शिवदत्त चतुर्वेदी (प्रवक्ता, प्राच्यविद्या एवं धर्मविज्ञान संकाय)

प्रकाश-संयोजन

श्री निर्मल मिश्र एवं सहयोगी

भूमिका परिचय

१. सूत्रधार : डॉ० विश्वनाथ भट्टाचार्य (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग)
२. परिपार्शिक : श्री कृष्णकान्त शर्मा (छात्र, संस्कृत विभाग)
३. अग्निमित्र (राजा) : श्री को० वें० चन्द्रशेखर
४. गौतम (विदूषक) : डॉ० कमलेशदत्त त्रिपाठी
५. वाहतक (अमात्य) : श्री न० रामनाथन् (शोधछात्र, संगीतशास्त्र विभाग)
६. गणदास (आचार्य) : डॉ० कपिलदेव पाण्डे (प्रवक्ता, आर्य महिला

विद्यालय)

७. हरदत्त (आचार्य) : श्री कृष्णकान्त शर्मा
८. मौद्गल्य (कञ्चुकी) : श्री गोपाललाल भट्ट (शोध सहायक, संगीतशास्त्र विभाग)
९. सारसिक (अनुचर) : श्री कृष्णकान्त शर्मा
१०. वैतालिक : डॉ० भालचन्द्र वामन पाटेकर (प्रवक्ता, महिला महाविद्यालय)
११. धारिणी देवी (पट्टमहिषी) : श्रीमती जया चन्द्रशेखर
१२. मालविका : कु० मधुच्छन्दा पाटेकर (छात्रा)
१३. इरावती (अन्य महिषी) : डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्त्ती (प्रवक्त्री)
१४. पण्डित कौशिकी (परिव्राजिका) : डॉ० ऊर्मिला शर्मा (प्रवक्त्री, वसन्त कन्या महाविद्यालय)
१५. बकुलावलिका (परिचारिका) : कु० लयलीना भट्ट (छात्रा)
१६. कौमुदिका (परिचारिका) : कु० हेमा कृष्णन् (छात्रा)
१७. मधुकरिका (उद्यानपालिका) : कु० मधूलिका गुप्ता (शोध छात्रा, संस्कृत विभाग) ।
१८. समाहितिका (परिचारिका) : कु० सिद्धि अग्रवाल (छात्रा)
१९. निपुणिका (,,) : कु० शाश्वती चक्रवर्ती (छात्रा)
२०. ज्योत्स्निका (शिल्पकारिका) : कु० हेमा कृष्णन् (छात्रा)
२१. मदनिका (,,) : कु० शीला ज्योतिषी (छात्रा)
२२. जयसेना (प्रतीहारी) : कु० छाया बहल (शोध छात्रा, संगीतशास्त्र विभाग)
२३. नागरिका (परिचारिका) : कु० रोहिणी तैलंग (छात्रा)
२४. परिजन : श्री रामप्रभा ओझा (छात्र), श्री सो० विजयकुमार (छात्र), कु० अलका गुप्त (भू० पू० छात्रा)

संगीत

गीत

१. डॉ० भालचन्द्र वामन पाटेकर

२. डॉ० चित्तरञ्जन ज्योतिषी (प्रवक्ता, गान विभाग)

३. डॉ० वनमाला पर्वतकर (प्रवक्त्री, आर्य महिला महाविद्यालय)

४. कु० ज्योत्स्नामयी मुखर्जी (छात्रा, गान विभाग)

५. श्रीमती न० सरोजिनी (छात्रा)

६. श्री न० रामनाथन्

वाद्य

१. वंशी : श्री राधेश्याम जायसवाल (कर्मचारी)

२. सितार : कु० एलेन माइनर (छात्रा)

३. वीणा : श्री सुरेन्द्रकुमार त्रिपाठी (छात्र)

४. वायलिन : श्री वें० बालाजी (छात्र)

५. मृदंगम् : श्री के० वें कृष्णन् (कर्मचारी)

६. पखावज : श्री गोविन्दरामजी

७. कांस्यताल : श्री० न० रामनाथन्

८. तालघर : श्री तेजसिंह (शोधछात्र, संगीतशास्त्र विभाग)

नृत्य

१. कु० सिद्धि अग्रवाल (छात्रा) २. कु० अलका गुप्त (भू०पू०छात्रा)

३. कु० मधूलिका गुप्त (छात्रा) ४. कु० रोहिणी तैलंग (छात्रा)

प्रस्तुत प्रयोग की विशेषताएँ

१. भरत-पद्धति से पूर्वरङ्ग का प्रयोग किया गया है । आधुनिक प्रेक्षक की समय-मर्यादा के अनुसार भरतोक्त विधान का संक्षेप करना पड़ा है । यथा बहिर्गीत के छः प्रकारों में से केवल दो का ग्रहण, 'परिवर्तन' का संक्षिप्त प्रयोग, जर्जर-स्थापन के पूर्व अवकृष्टा ध्रुवा का

त्याग इत्यादि ।

२. संगीत में भरत पद्धति के निर्वाह के दो प्रमुख अङ्ग हैं–एक तो भरतोक्त मूर्च्छनाओं से सम्बद्ध रागों का ग्रहण एवं दूसरे हाथ से ताल देते समय भरतोक्त सशब्द-निःशब्द क्रियाओं का प्रयोग । गृहीत वाद्यों में केवल 'वायलिन' को आधुनिक कहा जा सकता है, किन्तु वह भी 'रावणहस्तक' का ही रूपान्तर है ।

३. यवनिका का केवल आरम्भ और अन्त में उपयोग हुआ है । विशिष्ट 'प्रवेश' के समय तिरस्करिणी का उपयोग किया गया है ।

४. संस्कृत दृश्यकाव्य में वर्णन-बहुल पद्यों का प्रचुर समावेश प्रेक्षकों की 'कल्पना' को जागृत करने के लिए होता है । अतः 'पुस्त' (सेट्स, स्टेज प्रॉपर्टी) का न्यून उपयोग संस्कृत-नाट्य परम्परा में विहित माना गया है । किन्तु 'पुस्त' का प्रयोग निषिद्ध भी नहीं है । इस परम्परा के सन्तुलित पालन का पूरा यत्न किया गया है ।

५. 'नाट्यधर्मी' के अनुसार स्वगत, जनान्तिक का प्रयोग हुआ है । केवल अभिनय द्वारा, स्थूल वस्तुओं के उपयोग के बिना, अनेक अवस्थाओं का निर्वाह किया गया है । यथा बकुलावलिका द्वारा मालविका के 'चरणालंकार' में न आलक्तक (आलता) है और न नूपुर । यथास्थान 'लोकधर्मी' का भी ग्रहण हुआ है । यथा 'सन्देश'-पाठ के समय अमात्य और राजा के हाथ में पत्र है । अतः यह प्रयोग 'नाट्यधर्मी' प्रधान है, किन्तु 'लोकधर्मी' से सर्वथा शून्य हो ऐसा नहीं कहा जा सकता । केवल एक 'धर्मी' से कोई प्रयोग हो सकता हो, ऐसा हमें नहीं लगता । 'नाट्य' का आधार 'लोक' ही है, फिर भी नाट्य की अपनी विशिष्ट पद्धति है । अतः दोनों 'धर्मी' परस्पर पूरक हैं, विरोधी नहीं ।

६. पाठ-संक्षेप मुख्य रूप से वर्णनात्मक श्लोकों तक सीमित है । केवल पञ्चम अङ्क के अन्त में 'गति' की रक्षा के लिए कुछ संवाद छोड़े

गए हैं। अपनी ओर से एक भी 'वर्ण' कहीं जोड़ा नहीं गया है। प्राकृत के स्थान पर संस्कृतच्छाया का ही प्रयोग किया गया है। सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से ही ऐसा किया गया है। हाँ, गीत में प्राकृत को ही रखा गया है, क्योंकि प्राकृत की गेयता का अपना वैशिष्ट्य है।

७. रूपक-स्थित पद्यों के गान का कहीं स्पष्ट सङ्केत प्राप्त न होने से उनका पाठ्य रूप ही प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक प्रेक्षक की समय-मर्यादा के भी यही अनुकूल है।

८. नाटक का नायक अग्निमित्र 'धीरललित' है। उसका 'कामतन्त्रसचिव' विदूषक 'राजतन्त्रसचिव' की अपेक्षा उसके कहीं अधिक निकट है। प्रणय-व्यापार में उचित-अनुचित, सत्य-असत्य के विवेक का त्याग कालिदास को चुभता है। 'जागती हुई' देवी धारिणी को 'सुप्त' बनाया जा रहा है, इरावती 'कुपित होकर भी क्या कर लेगी'। ये कालिदास की समवेदना के उद्‌गार हैं। किन्तु नायक के गौरव की रक्षा अन्त में हो ही जाती है, क्योंकि मालविका उसी के लिये 'प्रथम-संकल्पिता' थी। देवी धारिणी की 'अनुकूलता', इरावती का रोष-त्याग सब कुछ कलुष-रहित हो जाता है। शुङ्ग-कालीन राज-जीवन के अन्तरङ्ग की यह झाँकी षड्यन्त्र, मिथ्याचरण आदि के मध्य किस प्रकार कालिदास की मङ्गलमयी वाणी में, अपनी निष्प्रयोजनता खो कर सार्थक हो उठी है, उसे उभारने का हमारा यत्न है।

९. 'नेपथ्य'-रचना (वेशभूषा) में यथासम्भव प्राचीनता की झलक लाने का यत्न किया गया है। फिर भी वर्तमान युग की मर्यादाओं को भुलाना असम्भव था।

पूर्वरङ्ग-प्रयोग का क्रम

अन्तर्यवनिका (यवनिका उठने के पूर्व)

१. प्रत्याहार : कुतप का यथास्थान सन्निवेश

२. **अवतरण** : गायिकाओं (गायक भी) का निवेशन

३. **आरम्भ** : वाद्य-प्रयोग-रहित शुष्काक्षरों का गान

४. **बहिर्गीत अथवा निर्गीत** : (वाद्य प्रधान, केवल एक कण्ठ द्वारा शुष्काक्षर गान)

(क) आश्रावणा (ख) वक्त्रपाणि

बहिर्यवनिका (यवनिका उठने के बाद)

१. **मद्रक** : नामक गीतक का गान

२. **वर्धमान** : गीतक के साथ नृत्य

३. **उत्थापन** : सूत्रधार के द्वारा भूमि-वन्दना एवं आकाश-वन्दना के साथ प्रयोग का उत्थापन

४. **परिवर्तन** : सूत्रधार के द्वारा रङ्ग की चारों दिशाओं में परिक्रमण करते हुए लोकपालों का वन्दन

५. **नान्दी** : सूत्रधार द्वारा आशीर्वचन एवं प्रोक्षण

६. जर्जर-स्थापन एवं जर्जर-वन्दन

७. **रङ्गद्वार** : वाचिक, आङ्गिक अभिनय का अवतरण

८. **चारी** : श्रङ्गार-प्रचरण

९. **त्रिगत** : विदूषक, सूत्रधार और पारिपार्श्विक–तीनों का संजल्प

१०. **प्ररोचना** : रूपक का संक्षिप्त परिचय एवं दर्शकों का आमन्त्रण

प्रस्तावना

इसमें कवि द्वारा सूत्रधार और पारिपार्श्विक के माध्यम से रूपक का एवं स्वयं का 'परिचय' प्रस्तुत है ।

- -

१९७३ से करीब दस ग्यारह वर्ष आपकी यह नाट्य प्रवृत्ति सशक्त रूप से चली लेकिन बाद में जैसे-जैसे एक-एक सदस्य का या तो

स्थानान्तरण हुआ या कोई निवृत्त होता गया वैसे-वैसे संस्था में स्थान रिक्त होने लगे । डॉ० चंद्रशेखरजी बड़ौदा म्यूजिक कालिज में चले गये। श्री स्मार्तजी निवृत्त होकर सूरत चले गये । डॉ० कमलेशदत्तजी उज्जैन चले गये । स्वयं बहनजी १९८५ में खैरागढ़ चली गईं । इसके बाद भी आपकी स्थापित संस्था द्वारा संस्कृत नाटकों की सशक्त प्रस्तुतियाँ हुईं । का० हि० वि० वि० के भरतनाट्यम् के शिक्षक श्री प्रेमचंद होम्बल एवं उनकी पत्नी श्रीमती माला होम्बल द्वारा प्रेमलताजी की स्मृति में प्रायः प्रतिवर्ष संस्कृत नाट्य या नृत्य प्रस्तुती हो रही है ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा मूलतः अध्यात्मवादी प्रवृत्ति की थी । किशोरवय के वैष्णव संस्कार आपकी रग-रग में व्याप्त थे । आप हमेशा कृष्ण की माधुरी की ही बात करती थी । निवृत्ति के बाद अपनी अनेकविध लेखन, संकलन प्रवृत्तियों के बीच आप के पास कृष्ण भक्ति संबंधी गीतों को सांगीतिक धुन में बांधकर उस पर नृत्य प्रस्तुत करवाने का प्रस्ताव आया । इस प्रस्ताव का क्रियान्वयन निम्नानुसार हुआ-

१. भ्रमरगीत-श्रीमद्भागवत में गोपियाँ भ्रमर को श्रीकृष्ण का दूत मानकर उससे जो बात करती हैं तथा भ्रमर को जो उलाहना देती हैं वे श्लोक भ्रमरगीत के नाम से जाने जाते हैं । डॉ० प्रेमलता शर्माजी ने भागवत पुराण के ५४ ऐसे श्लोक (भ्रमरगीत) तथा सूरदास के छः पद, पदावलि से दो पद, दामोदर स्तोत्र से दो पद, एक श्लोक तथा एक दोहा लघुभागवतामृत से तथा एक श्लोक गीतगोविन्द से लेकर उन्हें पचास राग तथा छः तालों में स्वरबद्ध किया । इन स्वर रचनाओं को श्रीमती मंगला तिवारी और श्रीमती विद्या कातगड़े से गवाया तथा इन पर डॉ० रंजना श्रीवास्तव का कथक शैली का एकल नृत्य हुआ । डॉ० रंजनाजी को बहनजी ने प्रत्येक गीत, प्रत्येक श्लोक का भाव समझाया तथा उसी के अनुसार नृत्य रचना हुई । मार्च १९९४ में यह कार्यक्रम वृंदावन के

श्री चैतन्य प्रेम संस्थान की प्रेरणा तथा सहयोग से वृंदावन में ही प्रस्तुत हुआ। इसकी प्रस्तुति वाराणसी में भी हुई।

२. श्री कृष्ण प्रसंग–इसमें डॉ० प्रेमलता द्वारा सूरदासजी के छह पद लिये गये थे तथा इनको १८ रागों में बांधा गया था। इनमें दो राग-माला भी बहनजी द्वारा बनाई गई थी। इस पर भी डॉ० रंजना श्रीवास्तव ने कथक शैली में एकल नृत्य किया तथा यह कार्यक्रम मार्च १९९५ में वृंदावन के श्री चैतन्य प्रेम संस्थान में प्रस्तुत हुआ।

३. श्री गोविन्द बिरूदावलि–श्री रूपगोस्वामीजी रचित गोविन्द बिरूदावलि में से कुछ श्लोकों का चयन किया गया था। इन श्लोकों को तेइस राग तथा विविध तालों में प्रेमलताजी द्वारा बाँधा गया था। इन पर नृत्य संयोजन डॉ० चंद्रशेखरजी ने किया था तथा नृत्य श्रीमती जया चंद्रशेखर और उनकी शिष्याओं द्वारा प्रस्तुत हुआ। यह प्रस्तुतीकरण जयपुर के गोविन्ददेव जू मंदिर में नवम्बर १९९५ में हुआ।

इस बिरुदावलि को राग ताल बद्ध करने और उस पर नृत्य योजना करने का काम चुनौतियों से भरा था। गेय की समस्या तो यह थी कि न तो इसमें पद का बन्ध (form) था, न ही सामान्य छन्दों का बन्ध था। कथा का सूत्र सर्वथा अनुपस्थित होने के कारण नृत्यरचना की अपनी समस्याएँ थी। केवल विशेषणों की लड़ियों को लेकर गेय और नृत्यरचना करना कठिन काम था।

४. वेणुगीत–कृष्ण की वेणु की महत्ता तथा महिमा का वर्णन करने वाले भागवत के श्लोकों को वेणुगीत कहा गया है। विशेष बात यह है कि वेणु का गोपियों पर प्रभाव इसका वर्ण्य विषय नहीं है। स्वयं गोपियाँ चराचर जगत् पर वेणु के प्रभाव का परस्पर वर्णन करती हैं। इस प्रस्तुति के लिये प्रेमबहनजी ने भागवत के दशमस्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय से बीस श्लोक चुने थे तथा चार ब्रजभाषा के पद चुने थे जिनमें

से दो पद सूरदासजी के, एक पद घनानंद का तथा एक पारंपरिक पद था । इन सबको २२ राग एवं छ तालों में निबद्ध किया गया था । नवम्बर ९५ में जयपुर के ही गोविन्ददेव मंदिर में इन वेणुगीतों पर श्रीमती कुमुदिनी लाखिया के निर्देशन में उनके दल ने कथक शैली में समूह नृत्य-नाट्य प्रस्तुत किया था । इसके गायक विख्यात गायक श्री अतुल देसाई थे ।

५. युग्मगीत–भ्रमरगीत तथा वेणुगीत के पश्चात् फरवरी ९६ में भागवत के युग्मगीत को स्वर ताल में बाँधकर नृत्य द्वारा प्रस्तुत करने का निर्णय हुआ । गेय रचना की सेवा का अवसर डॉ० प्रेमलताजी को मिला । प्रख्यात नृत्यांगना श्रीमती सोनल मानसिंह ने ओडिसी शैली में एकल नृत्य द्वारा यह प्रस्तुति करने का दायित्व स्वीकार किया । युग्म अथवा युगल शब्द इस प्रकार सार्थक है कि दो-दो श्लोकों का अन्वय एक साथ होता है ।

श्रीमद्भागवत के पाँच गीत प्रसिद्ध हैं–वेणुगीत, गोपीगीत, युग्मगीत, भ्रमरगीत और महिषीगीत । डॉ० प्रेमलता शर्माजी ने श्री चैतन्य प्रेम संस्थान के अधिष्ठाता गौडीय संप्रदायाचार्य श्री १०८ पुरूषोत्तम गोस्वामीजी महाराज की प्रेरणा से वेणुगीत, भ्रमरगीत तथा युग्मगीत को स्वरबद्ध किया । युग्मगीत का कार्यक्रम वृंदावन के श्री चैतन्य प्रेम संस्थान में फरवरी ९६ में प्रस्तुत किया गया ।

ऊपरोक्त सब कार्यक्रम डॉ० प्रेमलताजी के सांगीतिक रचना कौशल के साक्षात् प्रमाण हैं । ये सब कार्यक्रम आपको केवल एक शुष्क संगीत शास्त्री के स्थान पर रसिक संगीतज्ञ एवं कुशल वाग्गेयकार की श्रेणी में स्थान दिलाते हैं । आपको वाग्गेयकार इसलिये भी कह सकते हैं कि आपको छन्द शास्त्र तथा संगीत दोनों का ज्ञान था । आप कविता बनाती थीं तथा उन कविताओं को स्वर देते समय भाव के अनुरूप राग चयन

करती थीं। ताल, छंद, यति चरण आदि का ध्यान रखती थीं। एम०ए० में आपका विषय साहित्यशास्त्र था तथा इसमें आपका विशेष नैपुण्य था। इस प्रकार साहित्य और संगीत दोनों का उत्तम ज्ञान होने से आप उपरोक्त सब कार्यक्रम में संगीत रचना कर सकी थी तथा उन रचनाओं को कण्ठ माधुर्य वाले गायक गायिकाओं से आपने गवाया था। सुंदर स्वरयोजना, सुन्दर गायन तथा उस पर सधे हुए नृत्य निष्णात द्वारा नृत्य प्रस्तुति ! भक्तिरस पूर्ण ये प्रस्तुतियाँ दर्शनीय एवं श्रवणीय थी। नाट्य प्रयोग में भी आ-बहनजी का ही संगीत निर्देशन तथा संपूर्ण निगरानी रहती थी। इस प्रकार आप केवल विद्वान् संगीतशास्त्री ही नहीं, एक कुशल संगीत रचनाकार भी थी।

बहनजी का ध्रुवपद प्रेम, ध्रुवपद की पुनः प्रतिष्ठा में अपूर्व योगदान चिर काल तक स्मरणीय रहेगा।[१] नाट्यप्रवृत्ति में संस्कृत नाटकों की स्तरीय प्रस्तुतियाँ तथा प्राचीन पूर्वरंग का वर्तमान समय में मंचन आपका अतिविशिष्ट एवं अविस्मरणीय योगदान है। प्राचीन ध्रुवागीत तथा गीतकों को पुनर्जीवित करने का आपका प्रयास विद्वज्जन द्वारा प्रशंसित है। भ्रमरगीत, युग्मगीत, वेणुगीत, गोविन्द बिरूदावलि आदि में आपका संगीत

---

१. आ० बहनजी स्वयं भी अच्छा ध्रुपद गाती थी तथा लयकारियों पर आपका अच्छा प्रभुत्व था। आपके वाराणसी, कोलकाटा आदि में जो कुछ भी एकल कार्यक्रम हुए वे ध्रुपद गायन के ही थे। मेरे गुरूजी पं० बलवंतराय भट्ट, श्री कनकराय त्रिवेदी, मेरे पति प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित एवं जाने माने विद्वान् प्रो० आनंदकृष्णजी आदि सबने बहनजी का ध्रुपद कार्यक्रम सुना है।
बहनजी जैसी मेहनती व्यक्ति यदि मात्र अपने ध्रुपद गायन को ही मांजने सँवारने में अपनी पूरी शक्ति लगा देती तो हो सकता है देश को एक समर्थ ध्रुपद गायिका मिल जाती। किन्तु आपने मंच का मोह त्यागकर अपनी पूरी शक्ति, सामर्थ्य शास्त्राध्ययन तथा शास्त्राध्यापन में ही लगा दिया। डा० भानुशंकर मेहता ने मुझे बताया कि १९६० में 'संगीतपरिषद्' वाराणसी के वसंतोत्सवमें प्रो० प्रेमलता शर्मा ने प्रथम बार ध्रुपद गायन प्रस्तुत किया था जो विरल तालों में था।

रचना कौशल दिखता है । आप इन गीतों को विभिन्न रागों में नृत्य प्रस्तुति लायक धुन में बाँधती थी । आपके द्वारा रचे गये ये गीत तथा उन पर देश के गण्यमान्य नृत्यकारों द्वारा नृत्य प्रस्तुतियाँ वृन्दावन के मंदिरों में ऑडियो वीडियो टेप में सुरक्षित होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है ।

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए शाङ्गदेव ने कहा हैः– 'तल्' धातु से ताल शब्द बना है । तल वह आधार है जिस पर कोई भी वस्तु टिकी रह सकती है । हाथ के तल पर हम वस्तुओं को धारण करते हैं, हमारे पद तल पर शरीर टिका रहता है और पृथ्वी तल पर सभी प्राणी व स्थिर वस्तुएं टिकी रहती हैं । 'ताल' पर गीत, वाद्य, नृत्य तीनों की प्रतिष्ठा है । इसका तात्पर्य यही है कि गीत, वाद्य और नृत्य तीनों चल होने के कारण कालाश्रित हैं और अखण्ड काल को खण्ड में विभाजित करने वाला ताल इन तीनों का सहज आधार है ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा 'भावरंग लहरी' भाग–२

अध्याय 6 अ

प्रो० प्रेमलता शर्मा द्वारा आयोजित विचार गोष्ठियाँ तथा उनको मिले विशिष्ट सम्मानों का संक्षिप्त विवरण

प्रो० प्रेमलता शर्मा ने अपने जीवनकाल में अनेक विचारगोष्ठियों का आयोजन किया । बहनजी की योजनाशक्ति अद्‌भुत थी । आप मानसिक रूप से विचारगोष्ठी की जो योजना बनाती थी उसके पश्चात् उसके क्रियान्वयन में आवश्यक शारीरिक श्रम भी स्वयं कर लेती थी । यह बहुत बाद के वर्षों की बात है जब आप वार्धक्य के कारण शारीरिक रूप से बहुत कमजोर हो गई थी अतः स्वयं दौड़धूप नहीं कर पाती थीं । किन्तु मानसिक क्षमता इतनी अधिक थी कि कुर्सी में बैठे-बैठे ही तमाम सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों का ध्यान रखते हुए आप विचारगोष्ठी को सफल बनाती थीं । अन्यथा प्रारंभ के वर्षों में तो विचारगोष्ठी की योजना तथा उसका कार्यान्वयन दोनों आप बखूबी कर लेती थीं । किससे क्या काम लिया जाना चाहिए तथा किस व्यक्ति की क्या क्षमता है इसको आप बहुत अच्छी तरह से भाँप लेती थीं । अतः कभी आपके आयोजन में गलत व्यक्ति को गलत काम सौंपने से होने वाली अव्यवस्था नहीं दिखती थी ।

विचारगोष्ठी के मुख्य विषय का चुनाव करना, उससे संबंधित विषयों की सूची बनाना, किन विद्वानों को प्रपत्र पढ़ने के लिये आमंत्रित करना है उसकी सूची तैयार करना, विचारगोष्ठी के स्थान का चयन, समयबद्ध कार्यक्रम बनाना, कौन अध्यक्ष हो, कौन मुख्य वक्ता हो, धन कहाँ से आयेगा, बाहरी विद्वानों को बुलाने में क्या खर्च होगा, उनको

कहाँ ठहराया जायेगा, भोजन पानी की क्या व्यवस्था हो इत्यादि छोटी से छोटी बात आपके ध्यान में रहती थी। अतः आयोजन एकदम चुस्त एवं सुव्यवस्थित होता था। आप संपूर्ण विचारगोष्ठी के प्रत्येक प्रपत्र तथा चर्चा में स्वयं उपस्थित रहती थीं तथा किसी की भी अनुपस्थिति या किसी अन्य काम के बहाने गोष्ठी छोड़कर जाना आपको पसंद नहीं आता था। खरीदारी करना, दर्शन करने जाना, किसी से मिलने जाना या घूमने जाना आदि सब काम गोष्ठी के समय के बाद ही होना चाहिए, ऐसा आपका आग्रह रहता था। पूरी विचारगोष्ठी का बौद्धिक स्तर तथा प्रपत्रों का स्तर उच्च रहता था। कई बार इतना अधिक उच्च रहता था कि छात्र-छात्राओं को समझने में कठिनाई होती थी। बहनजी का अपना वक्तव्य सरल रहता था। सरल शब्दों में क्लिष्ट बात कह देती थीं, समझा देती थीं।

१९६६ से का० हि० वि० वि० में 'संगीत एवं मंचकला' नामसे एक अलग संकाय का गठन हुआ तथा १९६६ से ही संकाय में तीन विभाग बने। आप संगीतशास्त्र विभाग की अध्यक्षा थीं। आप के विभाग में आपके अलावा संस्कृत भाषा पढ़ाने के लिए एक प्राध्यापिका थी। केवल दो शिक्षिका, दो शोध सहायक, एक कार्यालय अधीक्षक तथा एक चपरासी एवं दस-बारह छात्र-छात्राओं के इस छोटे से विभाग ने अपने कार्यों के बल पर विश्वविद्यालय में, देश में तथा विदेशों में अपने अस्तित्व की छाप छोड़ी। आपने अपने संगीतशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में (१) भाषा और संगीत का अंतर्संबंध विषय पर अखिल भारतीय विचारगोष्ठी का आयोजन १९७६ में किया (२) १९८१ में 'अभिनवगुप्त की भारतीय संस्कृति को देन' विषय पर अंताराष्ट्रिय विचारगोष्ठी का आयोजन किया। इसमें प्रमुख वक्ता ठाकुर जयदेव सिंह जी थे। इस गोष्ठी में अभिनवगुप्त के भारतीय संगीत, भारतीय

संस्कृति तथा भारतीय दर्शन को योगदान पर विचार हुआ । (३) आपने अपने विभाग में साम संगीत पर भी एक कार्यशाला की थी तथा देश के विभिन्न प्रांतों से साम संगीत की विभिन्न शाखाओं के विद्वान् बुलाकर उनका साम गान रेकार्ड किया । साम संगीत पर व्याख्यान भी हुए ।

वाराणसी में ध्रुपद मेलों के आयोजन के समय भी आप द्वारा विचारगोष्ठियों का आयोजन होता था[1] । आपने वाराणसी, वृंदावन आदि स्थानों पर ध्रुपद मेले के अंतर्गत ध्रुपद पर लघु विचार गोष्ठियाँ आयोजित की थीं ।

आपने संगीत रिसर्च अकादमी कलकत्ता द्वारा १९८६ में 'लय और ताल' विषय पर आयोजित अंताराष्ट्रिय सेमीनार की भी पूर्ण योजना बनाकर दी थी । जयपुर के सत्यसांई कालेज द्वारा एक अखिल भारतीय सेमीनार हुआ था उसकी योजना भी आपकी सलाह के अनुसार बनाई गई थी ।

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (मध्य प्रदेश) की कुलपति के रूप में आपने खैरागढ़ में 'छत्तीसगढ़ की लोक कलाएँ' विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया । खैरागढ में बहनजी की उपस्थिति में एक अन्य विचार गोष्ठी संपन्न हुई जिसकी व्यवस्थापक थी डॉ० सुभद्रा चौधरी । इस गोष्ठी के प्रत्येक प्रपत्र तथा चर्चाओं को लिपिबद्ध कर के एक पुस्तक का प्रकाशन हुआ है । पुस्तक का नाम है 'संगीत में अनुसंधान की समस्याएं और क्षेत्र' तथा इसकी संपादिका है डॉ० सुभद्रा चौधरी । यह सेमीनार यु०जी०सी० के अनुदान से दिसम्बर १९८६ में आयोजित किया गया था । इस विचारगोष्ठी में बहनजी ने बहुत उत्साहपूर्वक भाग लिया था ।

---

१. 'वाराणसी के तुलसीघाट पर १९७५ से काशीराज न्यास तथा संकटमोचन फाउन्डेशन के तत्वाधान में प्रतिवर्ष ध्रुपद मेलों का आयोजन होता रहा है ।

निवृत्ति के बाद आपने वाराणसी में एक ट्रस्ट की स्थापना की थी जिसका नाम था 'भरतनिधि' । 'भरतनिधि' के तत्वावधान में आपने दो सेमीनार आयोजित किये । (१) ठाकुर जयदेव सिंह के सांगीतिक योगदान पर (२) पं० ओम्कारनाथ ठाकुर के व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर ।

केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली की उपाध्यक्षा के रूप में आपने तीन विचारगोष्ठी आयोजित की । (१) १९९४ में 'शार्ङ्गदेव और उनका संगीत रत्नाकर'-विषय पर वाराणसी में (२) १९९५ में 'मतंग के बृहद्देशी' विषय पर हम्पी, कर्णाटक में (३) १९९७ में 'कलाओं में रस तत्व' पर वाराणसी में । 'कलाओं में रस तत्व' एक आंतरानुशासनिक (Interdisciplinary) विचारगोष्ठी थी तथा उसमें विविध कलाओं के विद्वान् आमंत्रित किये गये थे । शाङ्र्गदेव वाले सेमीनार के पत्रों एवं चर्चाओं पर पुस्तक प्रकाशित हो गई है । अन्य दो सेमीनार के प्रपत्रों के पुस्तकाकार में प्रकाशन के पूर्व ही बहनजी का देहान्त हो गया ।

वाराणसी में पिछले कुछ वर्षों में स्थापित एक सांस्कृतिक ट्रस्ट 'ज्ञानप्रवाह' की प्रत्येक प्रवृत्ति में प्रो० प्रेमलता शर्मा बहुत उत्साह से भाग लेती थीं । आपके देहान्त के पूर्व आप 'ज्ञानप्रवाह' ट्रस्ट के लिए 'ध्वनि' विषय पर एक आन्तरानुशासनिक (क्योंकि ध्वनि के साथ दर्शन, भाषा, साहित्य, संगीत, नाटक आदि कई विषय जुड़े हैं) विचारगोष्ठी की संपूर्ण योजना बना चुकी थीं । आपके मरणोपरान्त 'ज्ञान प्रवाह' की श्रीमती विमला पोद्दार ने उक्त सेमीनार आयोजित किया तथा उसे प्रेमलताजी की स्मृति को समर्पित किया ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा ने देश में तथा विदेश में लगभग पचास से अधिक विचार गोष्ठियों में भाग लिया तथा अपने विद्वत्तापूर्ण प्रपत्रों या विद्वत्तापूर्ण अध्यक्षीय भाषण, चर्चा द्वारा देशी तथा विदेशी अनेक विद्वानों

को प्रभावित किया ।[१] अनेक युनिवर्सिटी के संगीत विभाग, कई अन्य संगीतसेवी संस्थाएँ विचारगोष्ठी के आयोजन में प्रो० प्रेमलताजी की राय माँगते थे तथा योजना बनवाते थे । इस प्रकार आपने अनेकानेक सेमीनारों की योजना बनाई, अनेक सेमीनार स्वयं आयोजित किये, अनेक सेमीनार संगीत नाटक अकादमी या यू० जी० सी० की तरफ से आप द्वारा आयोजित हुए ।

आपके द्वारा सेमीनार केवल बौद्धिक वाग्विलास नहीं हुआ करते थे । प्रत्येक सेमीनार से स्वयं भी ज्ञान, अनुभव अर्जित करती थीं तथा सुननेवालों को भी ज्ञान प्राप्ति होती थी । आप द्वारा आयोजित अनेक सेमीनार के प्रपत्र पुस्तकाकार में प्रकाशित हैं जिससे उसमें उपस्थित न रहने वालों को भी पठन का, जानकारी का लाभ मिल सकता है । सेमीनार का आयोजन स्वयं श्रम साध्य होता है तथा बाद में उसके प्रपत्रों, चर्चाओं का प्रकाशन भी अति श्रम साध्य होता है । बहनजी आदि से अंत तक जुटी रहती थीं । ऐसा भी नहीं था कि हमेशा आप के पास सहायक दल हो जो ये सब काम उठा ले । कोई एकाध सहायक रहे तथा प्रेस तक कागज लाने ले जाने वाला कोई मिल जाय तो बहनजी स्वयं भी घण्टों बैठकर ध्वनि मुद्रित प्रपत्रों तथा चर्चाओं को लिपिबद्ध करती रहती थीं ।

आप द्वारा संयोजित, आयोजित सेमीनार अति व्यवस्थित एवं उच्चस्तरीय होते थे यह सर्वमान्य तथ्य है । लगता है कि कतिपय

---

१. १९८० में 'अनामिका' कोलकाटा द्वारा आयोजित 'भरत नाट्यशास्त्र' परिसंवाद में बहनजी ने भाग लिया था और उस अवसर पर प्रकाशित स्मारिका में 'चारी' पर एक लेख भी लिखा था । डॉ० भानुशंकर मेहता ने बताया कि विषय की प्रामाणिकता के प्रति बहनजी इतनी सजग थी कि 'चारी' पर लिखने से पूर्व आपने प्रो० चंद्रशेखरजी (नृत्य के आचार्य) को बुलाकर 'चारी' के श्लोकों का क्रियान्वयन देखा और तब लेख लिखा ।

विद्वान् वक्ताओं से (जिनमें से कुछ तो आपके स्वयं के पुराने विद्यार्थी ही थे) आपका तारतम्य अच्छा बैठ गया था अतः अधिकांश विचार गोष्ठियों में आप उनको प्रपत्र पढ़ने आमंत्रित किया करती थी ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा को मिले विशिष्ट सम्मान

संगीत से सम्बन्धित तथा अन्य विभिन्न मान्य संस्थाओं द्वारा आप आपके ज्ञान, विद्वत्ता एवं कर्मठता के लिये सम्मानित की गई थीं ।

१. युनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन द्वारा १९८६ से १९९८ तक आप 'कला तथा ललित कलाओं का इतिहास' विषय की समिति की सदस्या चुनी गयी थीं ।
२. १९७१ में आपको केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशन पुरस्कार दिया गया था ।
३. आकाशवाणी के संगीत ओडीशन बोर्ड की आप कई वर्षों तक सदस्य रहीं ।
४. १९८३ में आप उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की अध्यक्ष नियुक्त हुई थीं ।
५. १९७८-७९ में आपको उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की रत्न सदस्यता दी गई थी ।
६. अमेरिका के फुलब्राइट फाउन्डेशन द्वारा आपको फेलोशिप दी गई थी ।
७. १९८४ में 'रचना' संस्था, कलकत्ता द्वारा कथेतर साहित्य के लिये आपको पुरस्कृत किया गया था ।
८. मध्य प्रदेश सरकार द्वारा भोपाल में स्थापित ध्रुपद केन्द्र की कार्यकारिणी परिषद् की आप सदस्या बनाई गई थीं ।
९. १९८४ में आप इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ की कुलपति नियुक्त हुई थी ।

१०. श्री हक्सरजी के नेतृत्व में १९८६ में संगीत नाटक अकादमी आदि के कार्यकलापों के अवलोकनार्थ एक उच्चस्तरीय समिति गठित की गयी थी उसमें बहनजी एक महत्वपूर्ण सदस्या थी ।

११. १९९२ में आपको केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की रत्न सदस्यता एवं फेलोशिप प्रदान की गई थी ।

१२. १९९४ में आप केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की उपाध्यक्ष नियुक्त हुई थीं ।

१३. १९९३ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा आप अमेरीटस प्रोफेसर बनाई गई थीं ।

१४. अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा आप मानपत्र, शाल, स्मृति चिन्ह इत्यादि से सम्मानित हो चुकी थीं । आपको मिले कई मानपत्रों में से वाराणसी के डीजल लोकोमोटीव वर्क्स में 'नादार्चन' संस्था द्वारा आपको दिया गया मानपत्र इस अध्याय के अंत में प्रस्तुत है ।

ऊपरोक्त सम्मान अवश्य ही महत्वपूर्ण हैं किन्तु आपकी योग्यता, दक्षता एवं योगदान को देखते हुए भारत सरकार द्वारा आपको 'पद्म' सम्मान से क्यों नहीं सम्मानित किया गया यह एक प्रश्न है, क्योंकि संगीत के क्षेत्र में थोड़ा सा गा-बजा लेने वाले कलाकारों को भी 'पद्मश्री' दिया जा चुका है । कुछ कुछ संगीतज्ञों को दो तीन 'पद्म' सम्मान दिये गये हैं । लगता है वो विभाग, जो यह सम्मान तय करता है उसका या तो प्रेमलताजी की ओर ध्यान नहीं गया या किसी ने आपके नाम पर ध्यान दिलाया नहीं तथा प्रेमबहनजी स्वयं कभी इन सबमें आगे बढ़कर अपना नाम सुझाने की प्रवृत्ति वाली नहीं थीं ।

मेरी राय में व्यक्ति का सबसे बड़ा सम्मान यही है कि मृत्यूपरांत भी उनके संपर्क में आने वाले लोग उनको ससम्मान, सप्रेम याद करें ।

बहनजी के विभिन्न रूप
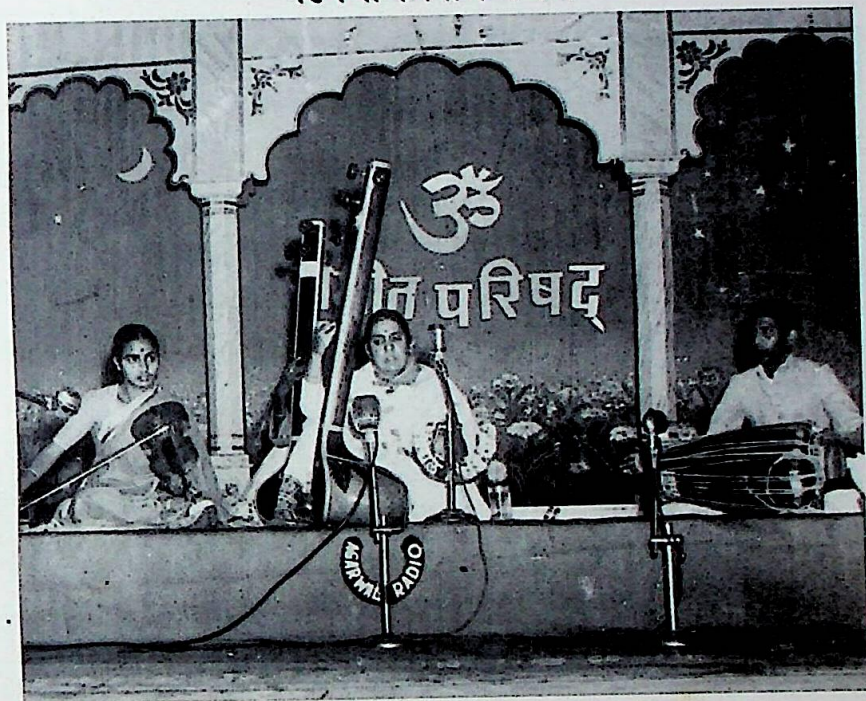
कार्यक्रम देते हुए

विदेशी प्रोफेसर के साथ

सम्मान ग्रहण

उपराष्ट्रपति श्री कृष्णकान्तजी से

श्रीमती गिरजा देवी के हाथों

बहनजी को सब कोई उनकी विद्वत्ता, छात्रों के प्रति वत्सलता, उनके विद्या प्रेम, उनकी कार्यदक्षता तथा उनके उज्ज्वल चरित्र के लिये आज भी सम्मान सहित याद करते हैं, करते रहेंगे ।

मान पत्र
अभिनन्दन अभिवन्दन
गुणानुकीर्तन

गुरु-भक्ति एवं ज्ञान की गंगा, जागरूकता एवं जनहित-चिन्तन की जमुना तथा सौहार्द एवं सदाशयता की सरस्वती के 'त्रिवेणी-संगम' का मूर्तिमय स्वरूप, हम डॉक्टर प्रोफेसर प्रेमलता शर्माजी के व्यक्तित्व में पाते हैं ।

विविध विद्यादायी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शिक्षित-दीक्षित डॉ० शर्मा, १९५५ में, प्रवक्ता पद पर नियुक्त होने के पश्चात् क्रमशः आरोही सोपान चढ़ती हुई, 'रीडर' तथा 'प्रोफेसर' पद को शोभायमान करती हुई, १९८५ में, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ की कुलपति नियुक्त हुईं ।

सुदीर्घकालीन अध्यापन-प्रशासन के कार्य-भार को सुचारु रूप से वहन करते हुए आपने अनेक महत्त्वपूर्ण पदों को गौरव प्रदान किया । उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की अध्यक्षा तथा केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की उपाध्यक्षा होने के उपरान्त अनेकानेक प्रकार की अनेकानेक समितियों को आपने विद्वत्तापूर्ण दिशा-निर्देश द्वारा लाभान्वित किया । 'फुलब्राइट', उत्तर प्रदेश संगीत-नाटक अकादमी' तथा 'केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी' की 'रत्न-सदस्यता' अपने को आदरणीय बहन जी के साथ संलग्न पाकर गौरवान्वित अनुभव कर रही है ।

ऋण-स्वीकार

सम्पादकत्व की जो सरिता 'रसविलास' से प्रारम्भ होकर 'संगीतराज' 'सहसरस' से होती हुई बृहद्देशी की ओर प्रवाहित हुई है, उसमें निमज्जित होकर विद्यार्थी, विद्वान हुए हैं तथा विद्वान्, अधिकारी हुए हैं। 'संगीत-रत्नाकर' सहित अनेक ग्रन्थों का अनुवाद प्रस्तुत करते हुए आपने देवभाषा संस्कृत तथा गरिमामंडित बँगला से अनभिज्ञ शोधार्थियों का मार्ग प्रशस्त किया है, उसके लिए साधुवाद है।

स्वयं ध्रुपद-गायन की क्लिष्टतम लयकारियों को सहज रूप से प्रदर्शित करने का सामर्थ्य रखने वाली, मंच-प्रदर्शन के मोहमयी मायाजाल से मुक्त होकर शास्त्राध्ययन, सत्यान्वेषण तथा रहस्योद्घाटन में अपनी शक्तियों को केन्द्रित करने वाली, प्रेमलताजी ! आप धन्य हैं।

देश-विदेश के अनेकानेक छात्र-छात्राओं में सहज रूप से, निःस्वार्थभाव से आपने जो विद्या-प्रसाद वितरित किया है तथा कर रही हैं, वह आपके उदारमना, ऋजु तथा सरल स्वभाव का परिचायक है।

आचार्य भरत-प्रतिपादित सिद्धान्तों की पुनः स्थापना हो अथवा ध्रुपद के प्रायोगिक एवं शास्त्रीय पक्ष का समुद्धार, देश-विदेश की विचार-गोष्ठियों में निर्णयात्मक भूमिका का निर्वाह हो अथवा किसी छिपी प्रतिभा के उद्घाटन का सत्कार्य, गोमाता की सेवा हो अथवा कन्या-शिक्षण का दायित्व-स्वीकार, प्रोफेसर शर्माजी ने सदैव अपने को समर्पित किया तथा परिचय-परिधि में आने वाले प्रत्येक को 'प्रेम' की 'लता' से आवेष्टित करते हुए अपना 'प्रेमलता' नाम सार्थक किया।

शुभाशंसा

संगीत, साहित्य तथा संस्कृति की सेवाव्रती आदरणीया बहन जी आज जीवन के सातवें दशक के अंतिम चरण में हैं। जिस प्रकार निवृत्ति के पश्चात् जीवन-पथ के प्रति उदासीनता, तटस्थता तथा विमुखता

अपना कुप्रभाव छोड़ते हैं उसी प्रकार अत्यधिक शारीरिक-मानसिक श्रम, विभिन्न प्रकारके उत्तरदायित्वों की बहुलता तथा बार-बारके यात्रा-प्रवास वार्धक्योन्मुख देह से अपना 'दान' तो वसूलते ही हैं । हम सभी बहन जी के स्नेही, शिष्य-प्रशिष्य, गुणानुरागी, ऋणी एवं निकटवर्ती, भगवान भूत-भावन से सविनय याचना करते हैं कि हम सबकी प्रिय, बहनजी को सुदीर्घ, निरामय, फलप्रद आयुष्य प्रदान करें । वाग्देवी की वरद विदुषी को अपने संकल्पित कार्य यथा-'संगीत विषयक पारिभाषिक शब्दकोष' का सम्पादन, 'कलातत्त्व-कोष' का प्रकाशन, अनेक भाषाओं पर समान अधिकार रखने वाली बहनजी द्वारा ही संभव 'पुनर्नवा' की योजना-पूर्ति, भक्ति-रसपूरित 'भागवत गीतियों का संगीत-संयोजन', 'पूज्य-गुरुवर्य संगीतमार्तण्ड पं० ओम्कारनाथजी ठाकुर की जन्म शताब्दी का बृहद् संयोजन', प्रभृति कार्यों को सम्पन्न कर सकने का समय दें–सामर्थ्य दें–संतुष्टि दें । सदैव की भाँति, विविध विषयों के उपेक्षित शास्त्रग्रंथों का उद्धार आपके द्वारा होता रहे । विद्या-व्यासंगियों की पथप्रदर्शिका बनी रहें तथा प्रकाश-स्तंभ की अपनी भूमिका का निर्वाह करने हेतु सक्षम बनी रहें ।[1]

विनयावनत
गुणग्राहक, कृतज्ञ, शुभकामी
'आपके अपने'

बृहस्पतिवार, १ फरवरी, १९९६ वाराणसी, माघ शुक्ल द्वादशी

●

---

१. नादार्चन-पर्व-समिति तथा डीरेका संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित नादार्चन-पर्व-समारोह के 'नाद-गुंजन' पर सादर समर्पित । इस मानपत्र को प्रो० प्रदीप कुमार दीक्षित ने तैयार किया था ।

अध्याय ६ ब

प्रो० प्रेमलता शर्माजी की देश विदेश की शैक्षणिक यात्राएँ

विभिन्न पदों पर रहते हुए आप प्रवचन देने हेतु, विचार गोष्ठियों में भाग लेने हेतु, विचार गोष्ठियों की अध्यक्षता करने हेतु, विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्राध्यापकों के चयन के लिये साक्षात्कार लेने हेतु तथा अंतिम चार वर्ष संगीत नाटक अकादमी की उपाध्यक्षा के रूप में, आप पूरा भारत भ्रमण कर चुकी थीं। आप पंजाब से कन्याकुमारी तक तथा द्वारिका से आसाम-मणिपुर तक सब स्थानों पर जा चुकी थीं। आपको विभिन्न प्रदेशों की लोक-कला, लोक-संगीत, लोक-नृत्य, लोक-नाट्य आदि में गहन रुचि थी। केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की उपाध्यक्षा के रूप में आपने कर्नाटक के 'यक्षगायन', केरल के 'कुडियाट्टम्', मणिपुर के 'मणिपुरी संगीत एवं नृत्य', उड़ीसा के 'प्रांतीय संगीत', ब्रज के 'लोकसंगीत', उत्तर प्रदेश की 'रामलीला', मध्यप्रदेश की 'पण्डवानी शैली' आदि में गहन रूचि दिखलाते हुए उनका सबका documentation करवाया। देश में अनेक स्थानों पर आयोजित विचार गोष्ठियों में आपने भाग लिया–प्रारंभ में वक्ता के रूप में तथा बाद में अध्यक्ष के रूप में तथा विषय प्रवेश कराने वाले विशिष्ट वक्ता के रूप में। आपने स्वयं द्वारा निर्देशित संस्कृतनाट्य प्रयोग भी देश में विभिन्न स्थानों पर करवाये।

विदेशयात्राएँ–

आप प्रवचन देने हेतु, विचार गोष्ठियों में भाग लेने हेतु तथा अध्यापन करने अनेक बार विदेश गईं।

आपने रशिया की दो बार यात्रा की। प्रथम रशिया यात्रा १९६६

में हुई । १९६६ में, मास्को की 'मास्को कन्ज़रवेटरी'[1] का शताब्दी समारोह आयोजित किया गया था। उसमें भारत के सांगीतिक प्रतिनिधि के रूप में, आप मास्को गई थीं।

रशिया की दूसरी यात्रा १९८७ में हुई । १९८७ में रशिया में भारत महोत्सव चल रहा था तथा उस महोत्सव के अंग के रूप में, एक सेमिनार का आयोजन वहाँ हुआ था । आप उस सेमिनार में भारतीय संगीतकारों के दल की नेता के रूप में, (as a leader) मोस्को गई थीं।

१९८७ में ही, हॉलेन्ड देश के लाइडन शहर में सप्तम विश्व संस्कृत परिषद में, आप अपना प्रपत्र पढ़ने हॉलेण्ड गई थी ।

१९८१ में, आप कुछ महिनों के लिए मोरीशस गई थीं । मोरीशस के गाँधी संगीत संस्थान में, आप विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में आमंत्रित की गई थीं ।

अमेरिका की आपकी तीन यात्राएँ हुई । प्रथम अमरीकी यात्रा जुलाई अगस्त १९७० में हुई । आप न्यूयोर्क की यूनिवर्सिटी आफ रोचेस्टर द्वारा आयोजित समर स्कूल[2] में भारतीय संगीत के दो विषय पढ़ाने गई थी । आपने १. हिन्दी की भक्ति कविताएँ (भजन), २. दामोदर का 'संगीत दर्पण' ये दो विषय वहाँ पढ़ाये ।

अगस्त १९७७ में, आपकी दूसरी अमरीकी यात्रा हुई । इस बार वहाँ के केलीफोर्निया प्रांत के बर्कले शहर में अंताराष्ट्रीय म्यूजिकॉलोजिकल

---

१. पाश्चात्य देशों में केवल क्रियात्मक संगीत की बारीकियाँ सिखाते हुए कलाकार बनाने की शाला को कन्ज़रवेटरी (Conservatory) कहा जाता है ।
२. पश्चिमी देशों में गर्मी की छुट्टियों में यूनीवर्सिटी में एक डेढ़ महिने के समर कैंप, समर स्कूल ई० आयोजित होते हैं जिसमें कोई विशिष्ट विषय पढ़ाया जाता है ।

सोसायटी का बारहवाँ सम्मेलन हुआ जिसमें डॉ० प्रेमलता शर्माजी ने अपना प्रपत्र पढ़ा ।

अमरीका की तृतीय यात्रा, सितम्बर १९७८ में हुई । इस बार बहनजी को यूनिवर्सिटी ऑफ नोर्थकरोलीना, चार्लेट द्वारा विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में चार महिनों के लिये आमंत्रित किया गया था । यहाँ आपने १. भारतीय रस सिद्धांत (Indian Aesthetics) २. भारतीय संगीत से परिचय (Introduction to Indina music) ये दो विषय पढ़ाये ।

आपकी विदेश यात्राओं में आपके प्रवचन तथा आपके अध्यापन से प्रभावित अनेक विदेशी वरिष्ठ प्राध्यापक आपसे मार्गदर्शन प्राप्त करने लगे । अपने कार्यों में आपकी सलाह एवं मदद लेने लगे जिनमें से कुछ नाम निम्नोक्त है ।

1. Prof. Harold Powers - University of Princeton (U.S.A.)
2. Prof. Lewis Rowell - University of Indiana (U.S.A.)
3. Prof. Anna Radicchi - University of Sienna (Italy)
4. Dr. Francoise Delvoye - (France)

आपके पास पढ़ने तथा मार्गदर्शन प्राप्त करने अनेक विदेशी छात्र-छात्राएँ आये जिनमें से कुछ नाम तथा उनके शोध के विषय निम्नोक्त है ।

1. Edward Henry (U.S.A.) 'भोजपुरी प्रांतों का लोक संगीत'
2. Wayna Howard (U.S.A.) 'सामगान'
3. Bettina Baumer (Austria) 'दर्शन एवं प्राचीन भारतीय स्थापत्य'
4. James arnold (U.S.A.) 'श्रुतियाँ'
5. Allyn Miner (U.S.A.) 'संगीत पर उर्दू एवं पर्शीयन ग्रंथ'
6. Hariotte Hurine (U.S.A.) M. Musicology B.H.U. से, बहनजी के पास किया ।

7. Nelly Van Ree Bernard (Holland) 'Construction of Hindustani Music'
8. Selina Theilman (Italy) 'ब्रज का संगीत'

एलन माइनर तथा सेलीना ने बहनजी के निर्देशन में, बी०एच०यू से, पी-एच०डी० उपाधि प्राप्त की। सेलीना की थीसिस के दोनों खण्ड पुस्तकाकार में प्रकाशित हैं।

●

जिन दो नादों की संगति में ऐसे कम्पन हों जो अभीष्ट न हों, जिन्हें HELMHOLTZ ने Beats कहा है उनको विवादी स्वर कहा जाता है। ये Beats कानको और कान द्वारा मन को बेचैन कर देते हैं। जिस प्रकार किसी दिये की लौ यदि स्थिर होती है तो देखने वालों की आँखों को और मन को कष्ट नहीं पहुँचता किन्तु यदि वह लौ सतत हिलती रहे, डोलती रहे, तो देखनेवालों की आंखों को कष्ट पहुँचता है और वे तत्काल ही मुँह मोड़ लेते हैं। जैसे यह दीपक की लौ की अवस्था है, वैसे ही विवादी स्वरों की भी अवस्था है। संगीत कष्ट पहुँचाने के लिए नहीं, अपितु विशेषरूप से आनंद-निमज्जित करने के लिए है। और विवादी स्वरों से वह आनन्द नष्ट होता है। इसलिए भारतीय संगीत में संवाद को अटूट रखा गया है।

पं० ओम्कारनाथ ठाकुर 'प्रणव भारती'

प्रथम संस्करण, पृ० ७८

अध्याय ६ स

विशिष्ट समितियों की सदस्या तथा विशिष्ट संस्थाओं से सम्बद्ध प्रेमलताजी

प्रो० प्रेमलता शर्माजी सरकार द्वारा बनाई गई विभिन्न समितियों से सम्बद्ध रही हैं कभी सदस्या के रूप में, कभी परामर्शदात्री के रूप में या कभी अध्यक्ष-उपाध्यक्ष के रूप में। आप गैर सरकारी अनेक सामाजिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संगठनों से भी संलग्न रही हैं। नीचे कतिपय सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों की सूची दे रही हूँ जिनसे बहनजी संबद्ध थी।

१. केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली, १९७८ से १९८२ तक आप इसकी कार्यकारिणी-परिषद्-सदस्या रहीं। २१ अप्रैल ९४ के दिन से आप इसकी उपाध्यक्ष निर्वाचित हुई। इस पद का कार्यकाल पाँच वर्ष था। किन्तु ५/१२/९८ को इसी पद पर काम करते हुए आपका देहावसान हो गया।

२. नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा (राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय) की प्रबन्धकारिणी समिति की १९७८ से १९८२ तक आप सदस्या रहीं।

३. केन्द्रीय साहित्य अकादमी में संस्कृत साहित्य के लिए आप १९७८ से १९८४ तक परामर्शदात्री समिति की सदस्या रहीं।

४. आकाशवाणी के संगीत के केन्द्रीय ऑडीशन बोर्ड की १९६६ से १९७४ तक आप सदस्या रहीं।

५. उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ में १९८३ से १९८६ तक आप अध्यक्ष पद पर रहीं।

६. १९८८ में भारत सरकार द्वारा पी० एल० हक्सरजी की अध्यक्षता में एक कमिटी नियुक्त हुई जिसकी प्रेमलताजी एक सदस्या थीं। इस कमिटी को केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी, साहित्य अकादमी, ललित कला अकादमी तथा नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा, इन चारों संस्थाओं के कार्यकलापों के मूल्यांकन का काम सौंपा गया था। इस समिति ने दो वर्षों में अपनी रिपोर्ट दे दी। किन्तु इतने समय में प्रेमलताजी एवं पी० एल० हक्सर में भाई बहन का स्नेह संबंध बन गया जो आजीवन बना रहा। दोनों एक दूसरे को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

७. आप इंदिरा गाँधी नेशनल सेन्टर फार आर्ट्स (IGNCA) के साथ भी जुड़ी रहीं तथा यहाँ की अध्यक्ष डॉ० कपिला वात्स्यायन तथा बहनजी के बीच में बहुत आत्मीय संबंध था। बहनजी ने IGNCA के लिए बहुत लेखन कार्य किया है।

८. संगीत रिसर्च अकादमी SRA कोलकाता से भी आप जुड़ी रहीं। आप वहाँ नियमित प्रवचन देने जाती रहीं। वहाँ के छात्र एवं संगीतकार सबमें आप का प्रवचन सुनने की ललक रहती थी। एस०आर०ए० के प्रत्येक प्रोजेक्ट में बहनजी परामर्शदात्री के रूप में रहती थीं।

९. कालिदास अकादमी, उज्जैन से भी आप जुड़ी थीं तथा उसका भी बहुत सा लेखन कार्य आपने संपन्न किया है। इसमें आपने तथा प्रो० कमलेशदत्त त्रिपाठी ने मिलकर भरतनाट्यशास्त्र का हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद करने का बहुत बड़ा प्रोजेक्ट हाथ में लिया। बहनजी ने नाट्यशास्त्र के संगीत सम्बन्धी अध्यायों का काम तथा अन्य अध्यायों में संगीत संबंधी श्लोकों का उत्तरदायित्व स्वीकार किया तथा अपने निधन से पूर्व बहुत सा कार्य संपन्न

कर लिया ।

१०. ध्रुपद मेला समिति वाराणसी की आप प्रमुख सदस्या रहीं । आपने इस समिति के तत्वावधान में ध्रुपद के विभिन्न पक्षों पर सेमिनार आयोजित करवाये तथा दस वर्ष तक 'ध्रुपदवार्षिकी' पत्रिका का संपादन किया ।

११. विश्व संस्कृत परिषद् की भी आप सदस्या रहीं तथा इस परिषद् के वाराणसी अधिवेशन में तमाम सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन का उत्तरदायित्व आपको सौंपा गया था ।

१२. विनोबा भावेजी द्वारा चलाये जा रहे कृषि गो सेवा संघ की आप कर्मठ सदस्या थीं । उत्तर प्रदेश गो सेवा संघ की आप अध्यक्षा थीं । गो वध रोकने के लिये इस संगठन ने धरने व उपवास इत्यादि किये थे जिसमें बहनजी भी सम्मिलित हुई थीं ।

१३. वाराणसी में संस्कृत कवियों की एक संस्था 'कवि भारती' की आप अग्रगण्य सदस्या थीं । वहाँ 'समस्यापूर्ति' के रूप में आप तुरन्त ही संस्कृत में श्लोक पूर्ण कर देती थीं ।

१४. आपने स्वयं 'अभिनयभारती' नामक संस्था बनायी जिसका उद्देश्य संस्कृत नाटकोंकी प्राचीन परंपराको नवीन तकनीकों के साथ पुनः प्रतिष्ठित करना था ।

●

अध्याय ७

डॉ० प्रेमलता शर्मा : एक प्रशासक के रूप में

डॉ० प्रेमलता शर्मा के जीवनवृत्त को देखने पर ज्ञात होता है कि, आपको अपनी विद्या-साधना, अध्यापन, लेखन, पठन-पाठन के अतिरिक्त बहुत वर्षों तक किसी न किसी ऐसे पद पर आसीन होना पड़ा जो प्रशासन कार्य से जुड़ा हुआ था। आप कई वर्षों तक विभागाध्यक्ष रही, संकाय प्रमुख रहीं, विश्वविद्यालय की कुलपति रहीं, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की अध्यक्षा रहीं तथा जीवन के अंतिम चार वर्ष केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की उपाध्यक्षा रहीं। आपने अपने प्रशासनिक पदों के उत्तरदायित्वों का निर्वाह निःसंदेह कुशलतापूर्वक ही किया।

१९५५ में प्रवक्ता पद पर नियुक्ति के तुरन्त बाद श्री कला संगीत भारती में आप को प्रशासनिक कार्य में तत्कालीन प्राचार्य पं० ओम्कारनाथ ठाकुरजी को, उनके बिगड़े हुए स्वास्थ्य के कारण एक महत्वपूर्ण कार्य में मदद करनी पड़ी थी। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में, १९५४ में, डॉ०सी०पी० रामस्वामी अइय्यर, कुलपति के पद पर नियुक्त होकर आये थे। आपने चार ही वर्ष पूर्व स्थापित श्री कला संगीत भारती के पुनर्गठन में व्यक्तिगत रूचि दिखाते हुए एक कमिटी बनाई जिसके प्रमुख थे श्री कला संगीत भारती के तत्कालीन प्राचार्य पं० ओम्कारनाथ ठाकुर। इस कमिटी द्वारा पाठ्यक्रम का नवीनीकरण, शिक्षकों के नवीन पद सृजन, उनके वेतनमान निर्धारण (प्रारंभ में श्री कला संगीत भारती के प्राध्यापकों को विश्वविद्यालय के अन्य विषयों के प्राध्यापक के बराबर वेतन नहीं मिलता था) आदि अनेक महत्वपूर्ण निर्णय होने थे, साथ ही कालिज के पुनर्गठन का भी प्रारूप तय होना था। कमिटी की कुछ

मीटिंग के बाद पंडितजी पर हृदयरोग का प्रथम आक्रमण हुआ। ऐसे कठिन समय में नव नियुक्त प्रवक्ता डॉ० प्रेमलता शर्मा को इस कमिटी के सेक्रेटरी का कार्य करना पड़ा। आ० बहनजी ने पं० ओम्कारनाथ ठाकुर तथा अन्य सदस्यों से राय लेने के पश्चात् कालिज का नवीन प्रारूप, नवीन योजनाएँ, नवीन शैक्षणिक पद, शिक्षकों के वेतनमान आदि का पूर्ण ब्योरा लिखित रूप में प्रस्तुत किया। दीर्घ रिपोर्ट की पूरी ड्राफ्टिंग बहनजी ने की थी। इसी समय से लोग आपकी सटीक लेटर ड्राफ्टिंग का लोहा मानने लगे। आपके लिखे हुए पत्र, पत्रलेखन के उत्कृष्ट मापदण्डानुसार हुआ करते थे तथा प्रशासक के रूप में आपका यह अत्यंत सबल पक्ष था।

इस प्रकार प्रवक्ता पद पर नियुक्त होते ही ऐसे गंभीर प्रशासनिक कर्तव्य को निभाने से प्रशासनिक कार्यों की शिक्षा का श्रीगणेश हो गया। १९५७ में पं० ओमकारनाथ ठाकुरजी की निवृत्ति के बाद, आपको रीडर पद पर नियुक्त किया गया तथा साथ में कालिज का स्थानापन्न प्राचार्य भी नियुक्त कर दिया गया। १९५७ से, शोध प्रभाग की तथा कालिज की, दोनों जिम्मेदारी आप पर आ गई। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में आपने जिन प्रशासनिक पदों पर जितने समय कार्य किया उसका विवरण प्रस्तुत है–

१. अध्यक्षा, थियरी एवं शोध प्रभाग, श्री कला संगीत भारती का०हि०वि०वि० वाराणसी, १९५५ से १९६६ तक
२. स्थानापन्न प्राचार्या (Acting Principal), श्री कला संगीत भारती, का०हि०वि०वि० वाराणसी, १९५७ से १९६१[1]
३. स्थानापन्न प्राचार्या (Acting Principal), श्रीकलासंगीत भारती

---

१. १९६१ से १९६४ तक प्रो० बी० आर० देवघरजी की नियुक्ति प्राचार्य के पद पर की गई थी।

का०हि०वि०वि० वाराणसी १९६४ से १९६६

४. अध्यक्षा, संगीत शास्त्र विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय का०हि०वि०वि०, वाराणसी, १९६६ से १९८५

५. स्थानापन्न संकाय प्रमुख, संगीत एवं मंचकला संकाय, का०हि०वि०वि०, वाराणसी १९६९ से १९७१[1]

६. संकाय प्रमुख, संगीत एवं मंचकला संकाय, का०हि०वि०वि०, वाराणसी १९७९ से १९८३

१९५५ में, प्रवक्ता बनने के तुरंद बाद संकाय पुनर्गठन समिति के सेक्रेटरी का कार्य तथा दो ही वर्ष में १९५७ से, थियरी एवं रिसर्च सेक्शन के प्रभारी तथा स्थानापन्न प्राचार्य का दोहरा कार्य आप पर आ गया। उस समय आयु भी तथा अनुभव भी कम था, फिर भी नीडर होकर, समर्पित भाव से, आप कार्य करने लगीं। प्रो० बी० आर० देवधर जी (१९६१ से १९६४) तीन वर्ष की कालावधि के लिये प्राचार्य नियुक्त हुए थे। आप के जाने के बाद बहनजी को पुनः दो वर्ष स्थानापन्न प्राचार्य बनाया गया। तथा इसी १९६६ के वर्ष में, फेकल्टी ऑफ म्यूजिक तथा फेकल्टी ऑफ फाइन आटर्स् ये दो स्वतंत्र संकाय विश्वविद्यालय में बने। संगीत एवं मंचकला संकाय में तीन विभाग बने १) गायन एवं २) वाद्य संगीत विभाग का०हि०वि०वि० परिसर में संकाय के नवनिर्मित भवन में चले गये।३) संगीत शास्त्र विभाग का०हि०वि०वि० स्थित 'गुजरात हाउस' में ही चलता रहा, जिसकी आप उन्नीस वर्ष तक अध्यक्ष रहीं। पुराना थियरी एवं रिसर्च सेक्शन इस विभाग में विलीन कर दिया गया।

---

१. १९६९ में तत्कालीन डीन प्रो० लालमणि मिश्राजी दो वर्ष के लिये युनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिलविनिया, अमेरिका गये थे। अतः दो वर्ष बहनजी संकाय अध्यक्ष थी।

१९६६ से १९७९ तक प्रो० लालमणि मिश्रा संकाय प्रमुख रहे। बीच में ६९ से ७१ दो वर्ष मिश्राजी के विदेश गमन के समय तथा १९७९ में प्रो० मिश्राजी की मृत्यु के पश्चात् आप पुनः संकाय प्रमुख बनाई गईं।

प्रशासन एक कला है तथा उसकी अनेक 'तकनीक' है। लूथर गुलिक ने प्रशासन की तकनीकों का सारांश 'POSDCORB' के रूप में दिया है। इसके अनुसार 'POSDCORB' के हर एक अक्षर से एक-एक तकनीक बताई गई है।

P	-	Planning	(योजना बनाना)
O	-	Organizing	(व्यवस्था बनाना)
S	-	Staffing	(कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति करना)
D	-	Directing	(निर्देशन करना)
C, O	-	Co-ordination	(समन्वय करना)
R	-	Reporting	(प्रतिवेदन देना)
B	-	Budgeting	(आय-व्यय प्रपत्र बनाना)

यह स्मरण करते हुए, वास्तव में संतोष होता है कि, बहनजी उपरोक्त अधिकांश तकनीक में सफल कही जा सकती हैं। प्रशासक के रूप में आपके अधिकांश पक्ष सशक्त थे। आपकी छवि एक स्वच्छ प्रशासक की थी। चरित्र की उच्चता के कारण कभी आप पर झूठ बोलने का, पद का दुरूपयोग करने का, अधीनस्थ कर्मचारी को परेशान करने का, या संस्था के वित्तीय मामलों में गड़बड़ी का कोई आक्षेप नहीं हुआ। आप विभाग की या संकाय की कोई भी चीज (पुस्तकें, रेकार्ड, वाद्ययंत्र इत्यादि) अपने निजी उपयोग के लिये कभी घर नहीं ले गईं।

विभाग में जो भी सामान की खरीद होती उसमें कभी कोई कमीशन देने-लेने की बात तो उनके काल में सोची ही नहीं जा सकती थी। विभाग में खरीदे गये प्रत्येक सामान की निजी सामान की तरह़ खूब अच्छी तरह से वे देखभाल करती थीं।

आप बोलने में बहुत सभ्य एवं शिष्ट थीं। अपने सभी सहयोगियों से आप सम्मानपूर्ण व्यवहार करती थीं। चपरासी को भी सम्मानपूर्वक संबोधित करती थीं। सबका ख्याल रखती थीं तथा सबकी कठिनाइयों को समझती थीं। सबकी रूचि एवं क्षमता का सही आकलन करके तदनुसार ही सबसे काम लेती थीं। स्वयं श्रमपूर्वक सब काम करती थीं तथा साथियों से भी जमकर काम लेती थीं। स्वयं अनुशासित थीं तथा सबसे वैसे ही अनुशासन की अपेक्षा रखती थीं। स्वयं समय की पाबन्द थीं तथा दूसरों से भी समय पालन की अपेक्षा रखती थीं। स्वयं पूरे समय पूर्ण मनोयोग से विविध काम में जुटी रहती थीं अतः आपके विभाग में कोई निठल्ला बैठ नहीं सकता था। वैसे किसी से कठोरता से बात करना आपके स्वभाव में नहीं था किन्तु आवश्यकता पड़ने पर कठोरता से बोल भी लेती थीं। वैसे बिना कुछ कहे आप की उपस्थिति मात्र विभाग के छात्रों तथा अन्यों के अनुशासन में रहने का कारण बन जाती थी। अपने छोटे से संगीतशास्त्र विभाग को तो आपने एक गुरूकुल की तरह संजोया था। वहाँ का अनुशासन, समर्पण भाव़ तथा पठन-पाठन का वातावरण अनुकरणीय था।

एक प्रशासक से स्वच्छ सुचारू प्रशासन के अतिरिक्त विभाग या संकाय के विस्तार की, संकाय को देश के-संसार के मानचित्र पर स्थापित करने की आदि कई अपेक्षा भी रहती हैं। विभाग तथा संकाय में नवीन पद हेतु बहनजीने पर्याप्त प्रयत्न किये थे लेकिन पता नहीं क्यों उनको सफलता नहीं मिल पाई। इसका एक सबल कारण तो यह

समझ में आता है कि आप अधिकांश समय स्थानापन्न प्रमुख के रूप में कार्य करती रहीं। केवल १९७९ से १९८३ चार वर्ष आप पूर्ण-रूप से संकाय प्रमुख रहीं। युनिवर्सिटी के अधिकारियों से नित्य संपर्क तथा उनसे युक्ति प्रयुक्ति से काम निकलवाना आपके स्वभाव में नहीं था। बहनजी एक सिद्धांतवादी, विद्याव्यासंगी, विद्याप्रेमी व्यक्ति थीं तथा ऐसा व्यक्ति स्वच्छ सुचारू प्रशासन तो दे सकता है किन्तु प्रशासनिक दावपेंच नहीं कर सकता। आपके इतने उज्ज्वल पक्षके बाद भी कुछ प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं। पता नहीं क्यों आप अपने सर्वथा योग्य एवं कर्मठ सहयोगियों को पदोन्नत नहीं करवा पाईं तथा नवीन नियुक्ति के समय भी अपने योग्य, परिश्रमी तथा उज्ज्वल चरित्र के जाने माने पुराने छात्रों के स्थान पर आपने ऐसे अनजान व्यक्तियों का चयन किया जो कालिज की भव्य शैक्षणिक परंपरा के अनुकूल नहीं थे, तथा जिनके मन में संकाय के लिये आत्मीय भाव का अभाव था। इसका कई लोगों को आश्चर्य था।

इन कतिपय अनुत्तरित प्रश्नों को छोड़कर अपनी विद्वता, कर्तव्य परायणता, शिष्टता तथा छात्रवत्सलता के कारण आप हमेशा कालिज में सबकी सम्मान्नीय बनी रहीं। देखा गया है कि जब तक व्यक्ति पद पर होता है, सब लोग सम्मान देते रहते हैं। लेकिन यदि पद से निवृत्त हो जाने के बाद या मृत्यूपरांत भी लोग उस व्यक्ति का उतना ही हृदय से सम्मान करें तभी उस व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की असली पहचान होती है। बहनजी ऐसी ही एक व्यक्ति थीं जिनके बारे में स्वयं को किंचित अन्याय हुआ, ऐसा समझने वाले लोग भी प्रशंसा करते हैं तथा उनका सम्मान करते हैं।

अपने संकायाध्यक्ष पद के अंतिम वर्ष में (१९८३) आप संकाय के गायन तथा वाद्यसंगीत विभाग से कुछ विरक्त सी हो गई थीं। संभवतः

गायन वादन के डिप्लोमा वर्ग के विषय में, आपके तथा इन दो विभागों के शिक्षकों में मतभेद हो गया था । तब से आप 'गुजरात हाउस' छोड़कर, संकाय के मुख्य भवन में, क्वचित् ही पधारती थीं । सब ऑफीशियल कागज एवं प्रपत्र हस्ताक्षर के लिए अपने ही विभाग में मँगवा लेती थीं । गायन वादन विभाग एवं संकायाध्यक्ष प्रो० प्रेमलता शर्माजी के बीच में संपर्क सूत्र के रूप में डॉ० कैलाशचन्द्र गंगराडेजी थे तथा आप उनके ही माध्यम से अंत-अंत में प्रशासन चला रही थीं ।

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में

आपने इस विश्वविद्यालय के कुलपति का कार्यभार ३१ अगस्त १९८५ के दिन संभाला । १९८४ में, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में श्री विमलेन्दु मुखर्जीजी का कार्यकाल समाप्त होने पर, डॉ० प्रेमलता शर्माजी का इस पद के लिए चयन हुआ । जैसा मैंने उपर बताया बहनजी का०हि०वि०वि० के गायन-वादन विभागों से कुछ विरक्त सी हो गई थी तथा स्वयं अपने संगीतशास्त्र विभाग में भी आप कुछ बेचैन थीं । बहुत वर्षों की लगातार मांग के बाद का०हि०वि०वि० के संगीतशास्त्र विभाग में एक रीडर का नवीन पद मिला था । उस पर नियुक्त होकर आयी म्यूजिकॉलीजी की एक विदुषी डॉ रंगनायकी अय्यंगार । बहनजी स्वयं उनकी विद्वता से प्रभावित होकर उन्हें चयनित कर अपने विभाग में लाई थीं । डॉ० रंगनायकिजी अत्यंत कर्मठ शिक्षिंका थी । बावजूद इसके परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनी कि खैरागढ़ का आमंत्रण आपने तुरंत एवं सहर्ष स्वीकार कर लिया । डॉ० सुभद्रा चौधरी तथा डॉ० अनिलबिहारी व्यौहार ये दोनों आपके शिष्य खैरागढ़ में कार्यरत थे तथा वहाँ की परिस्थिति से अच्छी तरह से परिचित थे । अच्छा होता यदि बहनजी आमंत्रण स्वीकार करने से पूर्व वहाँ की परिस्थिति जान लेतीं, समझ लेतीं तब वहाँ जाने या न जाने का निर्णय लेती ।

बहन जी की योजना इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के शैक्षणिक स्तर में गुणात्मक सुधार लाने की थी । आप वहाँ का शैक्षणिक स्तर उच्चीकृत करने के पवित्र उद्देश्य से वहाँ गई थीं । आपने वहाँ का पदभार संभालते ही 'छत्तीसगढ़ की लोक कलाएँ' विषय पर 'सेमिनार' करवाया तथा दो पुस्तकों का विमोचन करवाया १) विश्वविद्यालय के अनुसंधान विभाग द्वारा संपादित संगीत का शास्त्रग्रंथ 'संगीत सूर्योदय' २) भातखण्डे जी की मराठी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद-'मेरी दक्षिण भारत की संगीत यात्रा' ।

खैरागढ़ में चाहते हुए भी आप अपने ढंग से विशिष्ट कार्य कर नहीं पाईं । वहाँ का वातावरण आपके स्वभाव एवं आपकी कार्यप्रणाली के अनुरूप नहीं था । आपने स्वच्छ और ईमानदार प्रशासक के रूप में वहाँ भी मान्यता प्राप्त की किन्तु बहुत मजबूत एवं दृढ़ कुलपति के रूप में आप अपने को वहाँ स्थापित नहीं कर पाईं । दबंग लोगों को सख्ती से नियंत्रित नहीं कर पाईं । आप वहाँ हमेशा झमेलों से बचने के प्रयत्न करती रहती थीं । अतः युनिवर्सिटी के कुछ शिक्षक आपके कार्यकाल में असन्तुष्ट रहे । बाद में, संपूर्ण प्रशासन, वहाँ के रजिस्ट्रार श्री गंगाजलीवाले ही चलाते थे । बहनजी ने अपना कार्यकाल वहाँ शांति से पूर्ण तो किया तथा आप के समय में विश्वविद्यालय में कोई दुखद काण्ड भी नहीं हुआ किन्तु बहनजी अपने ढंग से वहाँ कोई विशिष्ट कार्य भी नहीं कर पायीं । खैरागढ़ के ही कार्य काल में केन्द्रीय सरकार द्वारा श्री हक्सरजी के नेतृत्व में एक कमिटी बनाई गयी थी जिसको संगीतनाटक अकादमी, साहित्य अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय आदि के कार्यकलापों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना था, जिसमें प्रो० प्रेमलताजी भी एक सदस्या थी । खैरागढ़ में रहते हुए बाद में आप उसी कमिटी के काम में व्यस्त हो गईं ।

खैरागढ़ में, आपने संगीत विषय की, हाईस्कूल, इण्टर, स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिये स्तरीय पाठ्यपुस्तक लेखन की एक सुंदर योजना बनाई थी लेकिन किसी अज्ञात कारणवश यह योजना अच्छी होते हुए भी कार्यान्वित नहीं हो पाई ।

संगीत नाटक अकादमी की उपाध्यक्षा के रूप में–

आप १९८३ से १९८६ तक उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की अध्यक्षा रह चुकी थी । आपको अकादमी के काम का अच्छा अनुभव था । केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी से तो आप तब से जुड़ी हुई थीं जब श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय अकादमी में थी । आप ने केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी के सहयोग से डॉ० रंगनायकी अय्यांगार के साथ चार ध्रुवपद मेलों का आयोजन किया था तथा एक 'सेमिनार' 'The text and context of Bharat Natya Shastra' का १९९२ में आयोजन किया था ।

२१ अप्रैल १९९४ के दिन आप केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की उपाध्यक्ष निर्वाचित हुई । आप का यहाँ का कार्यकाल आपके लिए बहुत अनुकूल एवं सुखद था । अकादमी में, सेक्रेटरी पद पर कार्यरत श्रीमती उषा मलिक तथा सुश्री शर्वरी मुखोपाध्याय तथा अन्य कार्यकर्ता बहनजी से तथा उनकी कार्यप्रणाली से बहुत प्रसन्न थे । श्रीमती उषा मलिक ने साक्षात्कार में बताया कि "बहनजी सबको ज्येष्ठ भगिनी की तरह प्यार करती थीं । आपमें किसी ऑफिसर पद के रूआब के स्थान पर सबके लिये प्रेमभाव था । आपके व्यवहार में अकादमी के सभी कार्यकर्ताओं के प्रति आत्मीयता की ऊष्मा थी ।"[1]

---

१. श्रीमती उषा मलिक से दिल्ली में उनके निवास स्थान पर प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित (मेरे पति) ने साक्षात्कार किया था तथा उनसे ही प्रो० प्रेमलताजी के अंतिम चार वर्षों के उपाध्यक्षा के रूप में कार्यकलापों पर बातचीत हुई थी ।

आपके पास सबसे काम लेने की विशिष्ट शक्ति थी। 'श्रुति' के फरवरी १९९९ के अंक में, लीला वेंकटरामन् लिखती हैं, "She had the unique ability of making even those known for taking up adversarial positions against each other, work together with dedication for a common cause" आप पहली ऐसी उपाध्यक्ष थी जो अकादमी के प्रत्येक प्रोग्राम में स्वयं पूरे समय उपस्थित रहती थीं तथा एक-एक काम के बारे में जानकारी लेती रहती थीं। आप अस्वस्थ रहते हुए भी, जिस भी शहर में अकादमी का कार्यक्रम हो, वहाँ पहुँच जाती थीं। प्रत्येक कार्य में सक्रिय सहयोग देती थीं। नवयुवक कलाकारों का बहुत उत्साहवर्धन करती थीं। संगीत, नृत्य, नाट्य, आदि किसी भी विषय पर आकस्मिक कुछ कहने की आवश्यकता उपस्थित होती तो बहनजी उस पर अधिकार पूर्वक बोल लेती थीं।

श्रीमती उषा मलिक के अनुसार, "आपने अपने कार्यकाल में डोक्युमेन्टेशन पर बहुत बल दिया। आपने विविध लोकनाट्य, लोकनृत्य, आदि का तीन सौ पचास घण्टे का डोक्यूमेन्टेशन (Documentation) करवाया। डोक्यूमेन्टेशन के अलावा आप 'सेमीनार' एवं पुस्तक प्रकाशन जैसे शैक्षणिक महत्त्व के कार्यों पर भी बहुत बल देती थीं। आपने अपने कार्यकाल में 'तीन सेमीनार' करवाये तथा इनमें से 'शार्ङ्गदेव' वाले सेमीनार' के तमाम प्रपत्र मिलाकर पुस्तकाकार में छपवाकर प्रकाशित करवाया। इस प्रकार का शैक्षणिक अभिगम आपको अन्य उपाध्यक्षों से अलग करता है। उपाध्यक्ष के नाते आप अकादमी की छः समितियों की अध्यक्ष थीं।१) डोक्यूमेन्टेशन २) प्रकाशन ३) अनुदान ४) संगीत ५) नृत्य ६) नाट्य।

संगीत नाटक अकादमी का आपका कार्यकाल बहुत अच्छा रहा। आप एक जानी मानी विद्वान् होते हुए भी हमेशा नई-नई बात जानने

सीखने की वृत्ति रखती थीं। अतः आपने अकादमी के सब कार्यों में भरपूर रुचि ली। अकादमी के कार्यकर्ता भी आपसे संतुष्ट थे। इस कार्यकाल की एक ही विडम्बना थी और वह थी, बहनजी का निरंतर गिरता स्वास्थ्य। यदि स्वास्थ्य साथ देता तो बहनजी इन अनुकूल कार्यकर्ताओं के साथ बहुत अधिक कार्य संपन्न कर ले सकती थीं।

२२ से २९ नवम्बर १९९८ आपने भुवनेश्वर में, अकादमी की तरफ से 'ओडीसी संगीत और उसके उपयोग' विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया था। अस्वस्थता के बावजूद आप इस सेमीनार में दिन १० बजे से अपरान्ह तीन बजे तक भाग लेती रहीं तथा संध्या ६ से ९ नृत्य गायन के कार्यक्रम में भी उपस्थित रहीं। ३० नवम्बर ९८ के दिन आप वाराणसी लौटीं। फिर से ९ दिसम्बर को मद्रास, त्रिचूर आदि स्थानों पर जाने वाली थी किन्तु ४ दिसम्बर की रात्रि में आप की तबियत अधिक खराब हो गई तथा उसी रात के उत्तरकाल में आप 'गोलोक' सिधार गईं। अकादमी का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व ही आप चिरनिद्रा में सो गईं।

आपके जीवन के संपूर्ण प्रशासनिक कार्यकलापों पर विहंगम दृष्टि डालें तो अपने अतिविशिष्ट शैक्षणिक योगदान के साथ-साथ आपने कुशल एवं स्वच्छ प्रशासन दिया। आपके का०हि०वि०वि० के संकाय प्रमुख के कार्यकाल में छात्र-आंदोलन, छात्रों की अभद्रता आदि चरम बिंदु पर था। आप को भी उद्दण्ड छात्रों से अपमान झेलने पड़े थे। किन्तु आपने सब समस्याओं को शांति से सुलझाया तथा कहीं कोई अप्रत्याशित दुर्घटना या अशांति नहीं होने दी।

●

अध्याय ८

डॉ० प्रेमलता शर्मा : एक मानव के रूप में

डॉ० प्रेमलता शर्मा का व्यक्तित्व इस रूप में अनोखा कहा जा सकता है कि, आप में बुद्धि की तीव्रता और तीक्ष्णता के साथ-साथ हृदय की वत्सलता और मृदुता दोनों थीं । आप में हृदय तथा मस्तिष्क के विशिष्ट गुणों का समन्वय था । 'श्रुति' पत्रिका के फरवरी १९९९ अंक में, सुश्री लीला वेंकटरामन् आपके विषय में लिखती हैं– "She represented a rare combiantion of incisive scholarship and great human qualities. It was through her qualities of head and heart that she earned the love and respect of all who worked with her." आपने अपना 'प्रेमलता' नाम सार्थक कर दिया था । आपके संसर्ग में आने वाले छोटे-बड़े सब को आप प्रेम बाँटती थीं । अपने विभाग के चपरासी तक को आप सम्मान से बुलाती थी । कठोरता से बात करना आपके स्वभाव में नहीं था । सामान्यतः आप मृदुभाषिणी थीं लेकिन यदि अक्षम्य चूक किसी से हो जाये तो कठोर भी बन जाती थी । सबसे जम के काम लेती थीं लेकिन सबकी कठिनाई, समस्या समझती थीं तथा यथाशक्ति सबकी आर्थिक, शारीरिक मदद भी कर दिया करती थीं ।

आप प्रेमी होने के साथ उदारमना थीं । गरीब किन्तु होनहार छात्रों को पढ़ने में सब तरह की सहायता करती थीं । देने में आपने कभी कृपणता नहीं की बल्कि सब को जी खोल कर देती थीं । विद्यादान के लिए भी अतिशय औदार्य था । कोई कभी भी, कैसी भी समस्या लेकर जाय, यथाशीघ्र सरल भाषा में समझा कर समस्या सुलझा देती थीं ।

फिर चाहे जिज्ञासु विदेशी हो, देशी हो, छोटा हो या बड़ा हो । अपनी संतान न होते हुए हिमाचल प्रदेश से आपने अपनी किसी परिचित के विद्यालय की दो छात्राओं को (छात्राओं के नाम कु० लीलावती एवं कु० ज्योति था उम्र ७-८ वर्ष) वाराणसी लाकर यहाँ के 'पाणिनी कन्या विद्यालय' में दाखिल करवाया तथा उनकी फीस, कपड़े, रहने-खाने का सब खर्च स्वयं उठाया । मुझे स्मरण है कि हिमांचल प्रदेश से वाराणसी आने के बाद, एकाध दिन पश्चात् ही दोनों बालिकाओं को विद्यालय ले जाना था। उनके कपड़े मैले हो गये थे । बालिकाएँ छोटी थीं अतः बहनजी ने स्वयं उन दोनों के कपड़े धो दिये ताकि दूसरे दिन स्वच्छ धुले कपड़े पहन कर वे विद्यालय जा सकें । यह घटना १९९४-९५ की है । आपने हिमाचल प्रदेश की कु० चंद्रकान्ता नेगी नामक कन्या को अपने घर में बेटी की तरह रखा तथा उसका पूर्ण उत्तरदायित्व लेते हुए उसे बी०ए० तक पढ़ाया । कु० चंद्रकान्ता को बहनजी तथा उर्मिलाजी प्यार से 'हंसी' कह कर पुकारते थे । हंसी को पूरा प्यार तथा उत्तम भोजन-दूध मिलता था, पढ़ाई लिखाई की पूरी सुविधा मिलती थी । लेकिन उसे कड़े अनुशासन में रहना पड़ता था । हंसी ने स्कूल में संगीत विषय लिया था तथा आ० प्रेमबहनजी के कहने से मैंने ही हंसी को संगीत की शिक्षा दी थी । आप अपने घर में गायन-वादन का कार्यक्रम करती तो प्रत्येक कलाकार को शाल आदि का उपहार देतीं । संगीत संकाय के कलाकार आपका इतना सम्मान करते थे कि कभी भी आप बुलाएँ तो हर समय सब आपके काम के लिये तैयार रहते थे तथा हम जैसे विद्यार्थी तो बहनजी के घर कार्यक्रम देने में गौरव अनुभव करते थे लेकिन बहनजी ने किसी को भी मुफ्त में गवाया-बजवाया नहीं । चाहे वह विद्यार्थी हो या संगतकर्ता या शिक्षक-शिक्षिका । सब को या तो कुछ राशि या शाल आदि आशीर्वाद स्वरूप देती थी । मुझको भी आपके

घर गायन प्रस्तुत करने पर आशीर्वाद रूप शाल मिली है ।

आप परंपरावादी थीं लेकिन आधुनिकता से कभी परहेज नहीं करती थी । परंपरा के विषय में वे कहती 'परंपरा तो वृक्ष की भाँति होनी चाहिए । उसमें समय-समय पर नवीन पल्लव, फल आते रहने चाहिए फिर भी जड़ और तना वही का वही सुदृढ़ रहे ।' आप संस्कृत के मूल ग्रंथों का अध्ययन-अध्यापन करती थीं, प्राचीन शास्त्रकारों के बताये हुए सिद्धांतों को समझाती थीं, साथ ही साथ शोध की पाश्चात्य देशों में प्रचलित नवीनतम पद्धतियों को भी स्वीकार करती थी तथा उन्हें भी अपनाती थीं । लीला वेंकटरामन तथा डॉ० कपिला वात्स्यायन ने कहा है कि "Dr. Premlata Sharma was a traditional woman with modern mind".

आप तेरह–चौदह वर्ष की अवस्था से वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित हुई थी तथा मुग्धावस्था के कतिपय पांच–सात वर्ष आपके मथुरा के मंदिरों के सान्निध्य में बीते । आपने अनेक वैष्णव आचार्यों के प्रवचन सुने तथा आत्मसात् किये । आपके ये वैष्णव संप्रदाय के संस्कार आपके व्यक्तित्व में ताने बाने की तरह बुन गये थे । आपके शरीर, आत्मा, बुद्धि, अभिव्यक्ति आदि व्यक्तित्व के समग्र पहलुओं में शुचिता थी । हमेशा आप कृष्ण की माधुरी की बात किया करती थीं । आपके यहाँ बराबर गौसेवा होती रही तथा गोवर्धन-धारी कृष्ण की बराबर पूजा होती रही । जन्माष्टमी, एकादशी, संक्रान्ति, दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा तथा अन्नकूट आदि सब त्यौहारों पर आपके घर विशिष्ट प्रसाद बनता तथा बँटता । आपका वैष्णवत्व केवल पूजा पाठ या प्रसाद तक ही सीमित नहीं था । नरसिंह मेहता के प्रसिद्ध भजन "वैष्णव जन तो तेने रे कहिऐ जे पीड पराई जाणे रे" को आपने अपने जीवन में चरितार्थ किया था । आप प्राणीमात्र के दुख को हृदय से अनुभव करती थीं तथा

यथासंभव सबकी मदद करती थीं। १९९६-९७ में आपको हृदयरोग के आक्रमण झेलने पड़े तथा ८-१० दिन अस्पताल में रहना पड़ा था तब दो-चार दिन में थोड़ी सी तबियत ठीक होने पर आप आस-पास के बेड पर पड़े रोगियों का हाल पूछने लगती थी। कोई गरीब हो, दूध ना पाता हो तो घर से अपने लिये आये दूध में से उसको आधा दूध दे देती थीं। घर जाने के समय परिचारिकाओं को भी उनकी सेवा के बदले उपहार देकर जाती थीं। आपका व्यवहार इतना मधुर रहता था कि परिचारिकाएँ भी प्रेम से आपकी सेवा करती थीं।

आपको गायों पर क्शिेष प्रेम था। आपने वाराणसी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित अपने क्वाटर न्यू ई-५ में १५-१७ वर्षों तक गायों को रखकर गो सेवा की है। आपके घर की गाय खूब स्वस्थ एवं पुष्ट रहती थीं। बछड़े भी मोटे-तगड़े रहते थे क्योंकि गाय को उत्तम खुराक दी जाती थी तथा उनकी उत्तम देखभाल की जाती थी। गाय को चोट लगे या उसकी प्रसव-पीड़ा से बहनजी विचलित हो जाती थी। आपने कभी गाय के दूध, दही, घी को बेचा नहीं बल्कि अधिक होने पर सब को बाँटा। गाय या बछड़े अधिक होने पर उनको भी कभी बेचा नहीं। वे ऐसे घर गाय का बछड़ा दे देती थी जहाँ उसकी सुचारू रूप से पूर्ण सेवा हो। विनोबा भावेजी द्वारा स्थापित कृषि गो सेवा संघ की, वाराणसी शाखा की आप अध्यक्ष थीं। आपने गोवध के विरूद्ध सरकार के सामने दिल्ली में उपवास भी किये थे। आप 'गोग्रास' नामक पत्रिका का खूब प्रचार भी करती थीं। आपने गाय और बैल के संवाद के रूप में लंबी कविता लिखी थी जिसमें आपने उपनिषद् काल से आज तक गोमाहात्म्य दर्शाते हुए गोपालन एवं गोरक्षा संबंधी पूरे विचार-दर्शन को स्थान दिया है। आपकी यह कविता इस पुस्तक के परिशिष्ट ६ में दी गई है जिससे आपके गोप्रेम तथा कवित्व शक्ति दोनों की प्रतीति हो जाती है। आपने

अपनी गायों के बहुत सुंदर नाम रखे थे–'गायत्री', 'वृंदा', 'मंजरी', 'सुरभि', 'सुमंगला' इत्यादि। डॉ० हेरोल्ड पावर्स ने आपके गो प्रेम की बात अपने लेख में इस प्रकार बताई है।[1] "१९७० में डॉ० प्रेमलता शर्मा को अमेरिका में मेहमान प्रोफेसर के रूप में आमंत्रित किया गया था। उनको न्यूयार्क के पास रोचेस्टर नामक स्थान पर समर प्रोग्राम मे भारतीय संगीतके विषय में पढ़ाना था। ट्रावेल एजेन्ट ने इस रोचेस्टर से हजारों मील दूर मीनीसोटा के रोचेस्टर की उड़ान में बहनजी को बैठा दिया। वहाँ पहुँचने पर आपको पता चला कि 'समर प्रोग्राम' तो न्यूयार्क के पास रोचेस्टर में है। तुरंत दूसरी उड़ान में वे न्यूयार्क पहुँचीं। उस समय थकान या आक्रोश या खीज के स्थान पर आप अपने पर ही हँसने लगी तथा 'कुछ दिनों से गाय का दर्शन नहीं किया है। कुछ गाय दिखा दो, उनको सहला लूँ तो मेरी थकान मिट जायेगी'। इस प्रकार गोदर्शन की इच्छा आपने व्यक्त की जो पूरी की गई।" अमेरिका में भी गाय को देखने की इच्छा होना उनके निश्चल गो प्रेम का ही उदाहरण है।

आप में एक विशेष गुण था; भयंकर से भयंकर असफलता को पचा लेना, उससे व्यथित न होना। बल्कि असफलता मिलने पर भी आप दुगुनी लगन से उस काम में लगी रहतीं। ऐसी दुखद घटना आपकी एम-म्यूज की परीक्षा में हुई। लेकिन विचलित हुए बिना आप संगीत की लगातार सेवा करती रहीं। १९५७ में रीडर पद पर नियुक्ति के बाद आप दो बार संकाय की स्थानापन्न प्राचार्या रहीं। फिर भी 'प्रोफेसर' पद पर नियुक्ति के लिए आपको चौबीस वर्ष प्रतीक्षा करनी

---

1. Indian Aesthetics & Musicology Edited by Dr. Km. Urmila Sharma, Article 'Scholar Teacher, Collegue, friend' by Harold Powers Page. 408.

पड़ी। संकाय में एक ही प्रोफेसर का पद था। उस पर दो प्रत्याशी थे। एक डॉ० लालमणि मिश्र एवं दूसरी डॉ० प्रेमलता शर्मा। प्रायः दो-तीन बार साक्षात्कार हुए लेकिन विषय निष्णात भी कोई निर्णय नहीं दे पाते थे। अंत में, डॉ० लालमणि मिश्राजी को प्रोफेसर बनाया गया। बहनजी को १९८१ में प्रोफेसर पद पर नियुक्ति मिली। ऐसा होते हुए भी मिश्राजी से बहनजी ने वैमनस्य नहीं रखा। कभी सिद्धांततः मतभेद हुए होंगे अन्यथा दोनों के बीच सौहार्द ही था।

१९८१ में बहनजी के प्रोफेसर के साक्षात्कार के समय विषय निष्णात के रूप में मद्रास यूनिवर्सिटी की संगीत विभाग की अध्यक्षा प्रो० सीता आयी थी। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन्ही सीताजी की पी-एच०डी० की थीसिस डॉ० प्रेमलता शर्माजी के पास ही जांचने हेतु आयी थी तथा प्रेमलताजी ने ही उनको पी-एच०डी० डिग्री के लिए उपयुक्त बताया था। वही प्रो० सीता प्रेमबहनजी का साक्षात्कार ले रही थीं। बहनजी ने जीवन में कई ऐसे कड़वे घूँट पीये थे। फिर भी अपने स्वभाव में कटुता नहीं आने दी थी। आपके अपने तैयार किये शिष्य भी कभी अजीब ढंग से व्यवहार करते तब भी आप कभी किसी का अपमान नहीं करतीं। बल्कि सद्व्यवहार बनाये रखतीं। बहनजी का कहना था कि 'मैं अपना स्वभाव छोड़कर परभाव में क्यों जाऊँ ?'

आपका एक रूप अन्नपूर्णा का भी था। सामान्यतः पढ़ने लिखने में इतनी अधिक रूचि रखने वाली, अपना 'केरियर' संवारने वाली कामकाजी महिलाओं को घर-गृहस्थी के काम में या रसोई के काम में अधिक आनन्द नहीं आता। कभी शौकिया तौर पर एकाध व्यंजन नौकर को साथ में रखकर बना लेती हैं। किन्तु बहनजी इसका अपवाद थीं। परम विदुषी होते हुए भी घर गृहस्थी तथा रसोई बनाने में आपकी अत्यधिक रूचि थी। आपको सालभर के आम, नीबू, ऑवला आदि का

आचार बनाने का, विधविध शरबत बनाने का (बेल का तथा आँवला का शरबत आपको अतीव प्रिय था) नवीन मिठाइयाँ तथा व्यंजन बनाने का बहुत शौक था। मकरसंक्रांति पर तिल के विभिन्न व्यंजन बनाती तथा सबको खूब खिलाती थीं। घर पर एक बार दावत रखी थी तथा प्रायः सौ से अधिक लोगों को बुलाया था। (संभवतः प्रोफेसर पद पर नियुक्ति के बाद) उस समय चना भिगो कर, उबाल कर मसाले युक्त चने सबके लिये स्वयं अपने हाथों से बनाये थे। वाराणसी में 'सेमीनार' आयोजित करतीं तो सेमीनार के अंत में बाहर के सब विद्वानों को घर पर भोजन करने बुलाती। तथा भोजन स्वयं ही उर्मिलाजी की मदद से बनातीं। घर में पूर्णकालिक नौकर कभी नहीं रहा। रसोई का काम तो स्वयं दोनों बहनें कुछ छात्राओं की मदद से कर लेती थीं। आपने घर के या रसोई के काम को कभी बोझ नहीं समझा। अपने तमाम शैक्षणिक एवं प्रशासकीय कार्य के साथ आप प्रेम से घर-काम करतीं। अंतिम दो-तीन वर्ष जब आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं था तब घर का काम केवल उर्मिलाजी हंसी की सहायता से करती। का०हि०वि०वि० की जोधपुर कालोनी के न्यू ई-५ क्वार्टर में रहते हुए रोज अपने घर से डिब्बा भर के छाछ संगीतशास्त्र विभाग ले जातीं तथा छात्रों तथा सहकर्मियों को पिलातीं। आप अक्सर पैदल ही विभाग जाया करती थीं जो आपके निवास से करीब डेढ़ किलोमीटर दूर था। वहाँ तक प्रायः रोज डिब्बा भरके छाछ ढोकर ले जाना तथा सबको छाछ पिलाना बहनजी के ही बूते की बात थी।[1] उन्हीं का यह सद्भाव था।

आपके जीवनमें, व्यक्तित्वमें एक व्यवस्था अंतर्निहित थी। अव्यवस्थित व्यक्ति जीवन में इतना अधिक कार्य संपन्न कर ही नहीं सकता। प्रातः

---

1. Indian Aesthetcs and Musicology edited by Dr. Urmila Sharma article by Dr. N. Ramnathan Page 434.

उठना, थोड़ी पूजा, रसोई, दूध, दही, छाछ, मक्खन, घी घर पर ही तैयार करना, विभाग जाना, शाम को वापस आकर शाम का भोजन तैयार करना। जब उर्मिलाजी १२ वर्ष तक आबू चली गई थीं, तब घर का सब काम आप अकेले ही करती थीं। आप बिना विवाह किये भी माताजी, उर्मिलाजी आदि के साथ परिवार में रहीं। माताजी के निधन के बाद उर्मिलाजी तथा हंसी के साथ परिवार का आनन्द लिया। आप बालकों से बेहद प्यार करती थीं। आपने अपने बाद भी अपने पुस्तकों की, अपनी संपत्ति की अच्छी व्यवस्था कर दी थी। प्रायोगिक कलाओं में शोध को प्रोत्साहन देने के लिये आपने एक 'ट्रस्ट' बनाया। ट्रस्ट की प्रवृत्ति सुचारू रूप से चल सके इस लिये आपने वाराणसी के करौंदी क्षेत्र में एक तिमंजिला भवन खरीदा। १९८९ की विजयादशमी से 'भरतनिधि' नामक इस ट्रस्ट ने कार्यारंभ कर दिया। ट्रस्ट का पंजीकरण आदि कानूनी कार्यवाही २७ अगस्त १९९३ के दिन संपन्न हो गई। आपने आदर्श पुत्री तथा आदर्श विद्यार्थनी की तरह-माता पिता एवं गुरूओं के नाम से इस ट्रस्ट की कुछ प्रवृत्तियाँ करने का निश्चय किया–

१. भरतनिधि द्वारा डॉ० पी० एल० वैद्यकी स्मृति में व्याख्यान माला
२. पं० ओम्कारनाथ ठाकुर की स्मृति में संगीत या नाट्य प्रयोग
३. पिताजी श्री लालचंद शर्मा की स्मृति में संगीत नाट्य 'प्रशिक्षण शिविर'
४. माताजी श्रीमति मायादेवी शर्मा की स्मृति में शोध छात्रवृत्ति प्रदान करने का निर्धारण किया गया।

आप एक आदर्श पुत्री, आदर्श छात्रा, आदर्श आचार्या रहीं। आपने माता–पिता की खूब सेवा की। आपने गुरूकी भी अनन्य सेवा की।

बहनजी किसी में भी कोई विशेष गुण या योग्यता देखतीं तो उससे तुरंत आकर्षित हो जाती थीं, प्रभावित हो जाती थी। बहनजी को

कुछ लोग अतीव प्रिय थे । आप पर आध्यात्मिक प्रभाव श्री रूपगोस्वामी, श्री आनंदमयी माँ, पं० गोपीनाथ कविराज, सुश्री विमला ठकार, आदि का पड़ा । आप पर नीतिमय जीवन के लिये राष्ट्रपिता गांधीजी एवं विनोबाजी का गहरा प्रभाव था । आप खद्दरकी प्रेमी थी । आप श्री षड्गोपनजी (दिल्ली), श्री सत्यनारायणजी (मैसूर), श्रीमती कपिला वात्स्यायन (दिल्ली), डॉ० कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति (दिल्ली), श्री पी०एल० हक्सर (दिल्ली) आदि से बहुत प्रभावित थीं । आप का इन महानुभावों के साथ जीवन भर निकट का संबंध रहा । आप वाराणसी के डॉ० विद्यानिवास मिश्र, ठाकुर जयदेव सिंहजी, डॉ० आनंदकृष्ण, पं- बलवंतराय भट्ट आदिको बहुत सम्मान की दृष्टि से देखती थी । आप पर डॉ० हेरोल्ड पावर्स, डॉ० रंगनायकी अय्यंगार, डॉ० मुकुंद लाठ, डॉ० कमलेशदत्त त्रिपाठी आदिका बहुत प्रभाव पड़ा । आपके स्नेहभाजन व्यक्तियों में श्री सोमस्कंदनजी, डॉ० विमला मुसलगांवकर, डॉ० इंद्राणी चक्रवर्ती, डॉ० रामनाथन्, डॉ० प्रज्ञादेवी आर्या, डॉ० मेधा देवी आर्या, श्री एवं श्रीमती चंद्रशेखरजी आदि प्रमुख है ।

अंत में कतिपय विद्वानों ने बहनजी के लिए जो उद्गार व्यक्त किये हैं या उनकी स्मृति में जो लिखा है उसको उद्घृत करती हूँ ।

श्रीमती मंजु सुंदरम् (वाराणसी) अध्यक्ष, संगीत विभाग, वसंत कन्या महाविद्यालय

बहनजी का थोड़ा सान्निध्य मेरे व्यक्तित्व में इत्र की तरह रचा बसा है । उनका हृदय हीरे की तरह उज्जवल था । बहनजी के व्यक्तित्व के कोई भी पक्ष सतही नहीं थे । सब में वह पूर्णता से गहराई तक गई थी । हालांकि मैंने उनसे संगीत की कोई तालीम नहीं ली है । फिर भी मैं उनको गुरू मानती हूँ क्योंकि, क्षण में जो शाश्वत के दर्शन करा सकें वह भी गुरू ही होता है । बहनजी ने मुझे अंतर्दृष्टि दी है इस नाते वे

मेरी गुरू है ।

श्री पी० सी० होम्बल (वाराणसी) रीडर, भरतनाट्यम्

१९८४ में, उज्जैन में नाट्य के पूर्वरंग पर एक सेमीनार था । प्रेमलता शर्माजी को सुश्री शांता गांधी[1] नामक प्रसिद्ध रंगकर्मी महिला के साथ एक कमरे में ठहराया गया था । सुश्री शांता गांधी लगातार धूम्रपान की आदी थी । बहनजी का व्यक्तित्व निर्व्यसनी था । हालांकि सुश्री शांता गांधी ने बहनजी के सामने कभी सीगरेट नहीं पी । कमरे के बाहर जाकर ही धूम्रपान करती थी । किन्तु ऐसे विरूद्ध व्यक्तित्ववाली दोनों महिलाएं प्रायः १०-१५ दिन साथ रही वह केवल नाट्य प्रेम, विद्या तथा कला प्रेम के कारण ही । दोनों को एक दूसरे से बहुत जानने को मिला। बहनजी की विद्या पिपासा इतनी तीव्र थी कि कहीं से कुछ ज्ञान प्राप्त होता हो तो वे कुछ भी निभाने के लिए तैयार रहती थी ।

प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित (वाराणसी) प्रोफेसर, गायनविभाग

बहनजी का व्यक्तित्व गहरा तथा विशाल था । आप संगीत के साथ जीवन जीने की कला भी जानती थीं । जीवन के प्रत्येक पहलू पर गहन दृष्टि रखती थीं । बहनजी की क्षमताएँ समय बीतते धीमे-धीमे परत दर परत खुलती गई ।[2]

प्रो० सी० वी० चंद्रशेखर (बड़ौदा) डीन, फेकल्टी आफ म्यूजीक एण्ड ड्रामेटीक्स

---

१. सुश्री शांता गांधी अतीव प्रसिद्ध रंगकर्मी थी । आप प्रसिद्ध सिने कलाकार दीना पाठक की बड़ी बहन थी तथा आपने अनेक नाट्य प्रयोग किये हैं तथा अनेक नाटकों का दिग्दर्शन भी किया है ।

२. उपरोक्त तीनों महानुभावों की उक्तियाँ–काशी विद्यापीठ वाराणसी के ललितकला विभाग में बहनजी की स्मृति में ८.१२.२००० के दिन आयोजित कार्यक्रम में हुए भाषणों से उद्घृत है ।

She believed in simple living and was a very compassionate person. As a dutiful daughter she took care of her demanding mother all her life. She always gave without expecting anything in return. Our only complaint to her was that she overstrained herself even when she was not keeping good health.

Bahenji, apart from being an erudite scholar and teacher was always an ardent student in wanting to enrich her knowledge all the time.

Indian Aesthetics & Musicology-Page 413, 414, 415

प्रो० एन० रामनाथन (चेन्नई) अध्यक्ष, संगीतविभाग

As a disciple and associate of Pt. Omkarnath Thakur, Dr. P.L. Sharma inherited the master's likes and dislikes. Panditji was a severe critic of the theories of Bhatkhande. But when one of her students Dr. Tej Singh Tak was working on the subject of 'Musicological development in the post Bhatkhande Period' for his doctoral dissertation, she discovered for herself the many positive aspects of Bhatkhande's contributions and never felt ashamed to admit the prejudice she had nurtured till then.

'Shruti' Feb. 1999 issue

Page- 38

●

परिशिष्ट –१

जीवन वृन्त (Bio-Data)

१. नाम : प्रेमलता शर्मा

२. जन्म तिथि : १० मई, १९२७

३. जन्म स्थान : नकोदर, जिला जालन्धर (पंजाब)

४. पिता का नाम : स्व० श्री लालचन्द शर्मा

५. माता का नाम : स्व० श्रीमती मायादेवी शर्मा

६. शैक्षणिक योग्यता :
   १. एम०ए० - हिन्दी (१९५०)
   २. एम०ए० - संस्कृत (१९५१)
   ३. पी-एच०डी०- संस्कृत (१९५४)
   ४. शास्त्राचार्य -(साहित्य) (१९५५)
   ५. संगीतालङ्कार -(गायन) (१९५५)

७. सेवायें :
   १. लेक्चरर संगीत १९५५-५७, का० हि० वि० वि०, वाराणसी
   २. रीडर संगीतशास्त्र १९५७-८१, का० हि० वि० वि०, वाराणसी ।
   ३. प्रोफेसर संगीतशास्त्र १९८१-८५, का० हि० वि० वि०, वाराणसी
   ४. वाइसचांसलर-इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़राज, म० प्र० ३१ अगस्त, १९८५ से सितम्बर १९८८ ।

८. पदभार :

१. प्राचार्या (प्रिंसीपल) श्री कला संगीत-भारती-१९५७-६१, का०हिं०वि०वि०, वाराणसी।

२. अध्यक्षा-संगीत एवं ललित कला विभाग १९५७-६१, एवं १९६४-६६ ।

३. संकाय प्रमुख (डीन)-संगीत एवं मंचकला संकाय का०हि०वि०वि०, १९६९-७१, १९७९-८३

४. अध्यक्षा - संगीतशास्त्र विभाग-१९६६-१९८५ ।

५. अध्यक्षा - उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी-मार्च १९८३-मार्च १९८६ ।

६. उपाध्यक्षा-संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, २१ अप्रैल ९४ को निर्वाचित ।

७. एमेरिटस प्रोफेसर, का०हि०वि०वि० १९९३ से ।

९. विशिष्ट समितियों की सदस्यता

१. केन्द्रिय संगीत नाटक अकादमी की कार्यकारिणी १९७८-८२ ।

२. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की प्रबन्ध कारिणी समिति, १९७८-८२ ।

३. साहित्य अकादमी (केन्द्रिय) की परामर्शदात्री समिति (संस्कृत) १९७८-८४ ।

४. संगीत ऑडीशन बोर्ड–आकाशवाणी

१९६६-१९७४ ।

५. भारत सरकार द्वारा नियुक्त हक्सर कमेटी–१९८८-९० ।

१०. विशिष्ट सम्मान : १. संगीत नाटक अकादमी (केन्द्रिय) का प्रकाशन पुरस्कार, १९७१ ।

२. उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की रत्नसदस्यता, १९७८-७९ ।

३. "रचना" संस्था (कलकत्ता) का कथेतर साहित्य के लिए पुरस्कार १९८४ ।

४. संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली की रत्न-सदस्यता (फेलोशिप) १९९२ ।

११. विशिष्ट कार्य : १. केन्द्रिय संगीत नाटक अकादमी के तत्वावधान में चार अखिल भारतीय ध्रुपदमेलों का आयोजन-१९७९, ८०, ८१, ८२, में क्रमशः वृन्दावन में (दो) (उ० प्र०), नाथद्वारा (१) (राजस्थान), अम्बेजोगाई (१) (महाराष्ट्र) ।

२. "अभिनय भारती" नाम से संगीत-निष्ठ गीत-नृत्य-नाट्य-प्रयोगों का निर्देशन, प्रस्तुतीकरण-भाटपाररानी, उज्जैन, वाराणसी, लखनऊ में-१९७३-८५ तक इस प्रसंग में प्राचीन विधाओं का पुनरुद्धार विशेषतः भरतनाट्य शास्त्र के आधार पर ।

३. का०हि०वि०वि० में सुश्री विमला ठकार के नेतृत्व में ध्यान शिविर (१९७१) तथा अध्ययन शिविर (१९७२) का आयोजन।

४. विश्वसंस्कृत परिषद्–१९८१ में समस्त सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन।

५. भाषा और संगीत विषय पर- अखिल भारतीय विचारगोष्ठी का संगीत संकाय (का०हि०वि०वि०) में आयोजन-१९७६ "अभिनवगुप्त की भारतीय संस्कृति को देन"–विषय पर अन्ताराष्ट्रीय विचार गोष्ठी १९८१, अखिल भारतीय गोष्ठी–१९८२।

६. "कवि-भारती"–नाम से संस्कृत रचना दल की सदस्यता।

७. शाङ्र्गदेव समारोह, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली द्वारा वाराणसी में फरवरी, ९४ में आयोजित, उसकी परामर्शदात्री रही।

८. एमेरिटस प्रोफेसर, का०हि०वि०वि०, १९९३ से कार्यरत।

१२. विशिष्ट गुरुजन : संस्कृत एवं पाठसंशोधन–स्व० डा० परशुराम लक्ष्मण वैद्य (राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित)

दर्शन एवं समग्र-महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज

संस्कृत साहित्यशास्त्र-पं० महादेव शास्त्री,
पं० रामचन्द्र दीक्षित
संस्कृत व्याकरण-पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु
संगीत–पं० ओङ्कारनाथ ठाकुर

१३. विशिष्ट अध्यापन एवं अनुसंधान निर्देशन
1. संगीतशास्त्र के अध्ययन में आदिम स्रोतों के प्रत्यक्ष अध्ययन का सूत्रपात ।
२. १६ शोधप्रबंध-पी-एच०डी० उपाधि के लिये निर्देशित एवं प्रस्तुत-स्वीकृत ।
३. अनौपचारिक अध्ययन के लिये अनेकों विदेशी विद्वानों को मार्गदर्शन एवं प्रत्यक्ष अध्यापन ।

१४. विदेश-यात्रायें : रूस-१९८६, १९८७ । अमेरिका १९७०, ७७, ७८। मारिशँस–१९८१, हालैण्ड-१९८७ ।

१५. विशिष्ट व्याख्यान एवं विचार गोष्ठियों में योगदान
देश के (प्रायः ५०) विभिन्न भागों में आयोजित गोष्ठियों में योगदान एवं व्याख्यान ।

१६. भाषा-ज्ञान : हिन्दी, संस्कृत, बांगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी, उर्दू, अंग्रेजी ।

१७. प्रकाशन-पाठ संशोधन
१. रस विलास (१९५२) संस्कृत ।
२. संगीतराज (१९६३) संस्कृत ।
३. सहसरस (१९७२) हिन्दी ।
४. एकलिङ्ग माहात्म्य (१९७६) संस्कृत ।
५. बृहद्देशी (१९९२) संस्कृत खण्ड १

६. बृहद्देशी (१९९४) संस्कृत खण्ड २

सम्पादन (मुख्य) : १. वैदिक मेथमेटिक्स १९६५ ।

२. चित्रकाव्यकौतुकम् १९६५ संस्कृत ।

३. स्तोत्रभारती कण्ठहार १९६८-७६ संस्कृत ।

४. सख्यसंवाद १९७१ ।

५. पावकस्फुलिङ्ग (भाग १) १९७१ ।

६. जीवनयोग १९७३ ।

७. कस्तूरबा ट्रस्ट की बहनों से १९७३ ।

अनुवाद तथा संपादन : १. संस्कृत से अंग्रेजी टिप्पणी सहितः

क) संगीतरत्नाकर १९७८, १९८८

ख) बृहद्देशी १९९२, १९९४ ।

२. बंगला से हिन्दी :

क) जपसूत्रम् (प्रथम भाग) १९६६, द्वितीय भाग १९९२

ख) साधुदर्शन व सत्प्रसंग १९७३ ।

ग) अमरवाणी १९७२ ।

पत्रिका : १. ध्रुपद पर केन्द्रित "ध्रुपद वार्षिकी" पत्रिका सन् ८६ से सम्पादन-दस अंक प्रकाशित ।

विशिष्ट लेख : १. रस सिद्धान्त -मूल, शाखा, पल्लव और पतझड़ : वत्संलनिंधि द्वारा आयोजित एवं पुस्तकाकार में प्रकाशित व्याख्यानमाला ।

२. प्रायः १०० विशिष्ट लेख विभिन्न

पत्रिकाओं में प्रकाशित (देश-विदेश)

१८. सामान्य : गोरक्षा (अध्यक्षा-कृषि गोसेवा संघ-वाराणसी शाखा) संस्कृत प्रचार-सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय कार्यकारिणी की सदस्या।

पूर्णाहुति-५-१२-१९९८

●

Prof. Premela Sharma was among the earliest scholars to disprove the theory that the scales of the medieval Period had faithfully retained the intervallic arrangement of the svaras of the two gramas. Her Presentation on this subject at the Music Academy, Madras had been hailed by Dr. V. Raghvan as 'revolutionary'. She was the first to Point out the discrepancies in the descriptions in the writings of the medieval authors (Starting with Ramamatya) on the placement of Gramika svaras on the frets of the Vina.

Prof.N. Ramnathan

'Indian Aesthetics & musicology' Page-VII

परिशिष्ट –२

प्रो० प्रेमलता शर्माजी के निर्देशन में डी० म्यूज० एवं पी-एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत एवं स्वीकृत शोध प्रबन्धों का विवरण

क्रम	वर्ष	शोधप्रबन्ध का विषय	शोधकर्ता का नाम	शोध की भाषा	प्रकाशित या प्रकाशन की प्रतीक्षा में
१	१९६४	नायक नायिका भेद और राग-रागिणी वर्गीकरण का तुलनात्मक, अध्ययन–डी०म्यूज० शोध प्रबन्ध	श्री प्रदीपकुमार दीक्षित	हिन्दी	प्रकाशित
२	१९६४	रामकल्पद्रुम का विश्लेषणात्मक अध्ययन-डी०म्यूज० शोधप्रबन्ध	श्री चित्तरंजन ज्योतिषी	हिन्दी	प्रकाशित
३	१९६५	A Comparative Study of Musical Systems of Northen and Southern India	Mrs. N. Rajam	English	
४	१९७२	भा० संगीत में ताल, छंद और प्रबन्ध का ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन	सुश्री सुभद्रा चौधरी	हिन्दी	प्रकाशित
५	१९७४	स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान	सुश्री इंद्राणी चक्रवर्ती	हिन्दी	प्रकाशित
६	१९७९	A critical Study of Treatment of Geetak in Sangita Ratnakar of Sarangdev	Mr. N. Ramnathan	English	प्रकाशित
७	१९७९	भातखण्डे के उत्तर काल में (१९३५ से १९७०) संगीतशास्त्र में संपन्न अनुसंधान एवं अध्ययन का आ०	श्री तेज सिंह टाक	हिन्दी	
८	१९८०	The Predicate 'Musical' a Philosophical Analysis	Mr. Ritwik Sanyal	English	प्रकाशित

क्रम	वर्ष	शोधप्रबन्ध का विषय	शोधकर्ता का नाम	शोध की भाषा	प्रकाशित या प्रकाशन की प्रतीक्षा में
९	१९८०	भा० संगीत शास्त्र पर विभिन्न दर्शनों का प्रभाव	श्रीमती विमला मुसलगांवकर	हिन्दी	प्रकाशित
१०	१९८१	Hindustani Instrumental Music in Early ModernPeriod-A study of Sitar and Sarod in 18th & 19th Century	Allyn Jane Miner	English	
११	१९८२	'संगीतपारिजात' का विवेचनात्मक अध्ययन	श्रीमती कमला देवी नौटियाल	हिन्दी	इस शोधप्रबन्ध के दो भाग है ।
१२	१९८२	उत्तर भारतीय शास्त्रीय गायन के ध्वन्यांकित रूप का समीक्षात्मक अध्ययन (१८८०-१९८० तक)	श्री रमाकांत द्विवेदी	हिन्दी	प्रकाशित
१३	१९८५	मतंग कृत 'बृहद्देशी' का अध्ययन भाग-१, भाग-२	श्री अनिल ब्योहार	हिन्दी	मूलग्रंथका संशोधित रूप भी प्रस्तुत है ।
१४	१९८७	तबला एवं पखावज के लक्ष्य का संगीत शास्त्रोक्त लक्षण से संबंध	श्री नीरज कुमार	हिन्दी	
१५	१९९२	A Study of the Tuning System of Sitar and Tanpura from the Point of view of accoustics and aesthetics	Mr. Sudhakar Bhatt	English	
१६	१९९९	Musical Tradition of Vaishnav Temples in Braj	Selina Theilmann	English	Published

NOTE : उपरोक्त शोधप्रबन्धों के अतिरिक्त अनेक देशी-विदेशी शोधकर्ताओं ने प्रो० प्रेमलता जी से परामर्श लिया, मार्गदर्शन प्राप्त किया है ।

परिशिष्ट –३

भारतीय संगीतशास्त्र में एकाधिक अनुशासनों का योग

–प्रो० प्रेमलता शर्मा

भारतीय सङ्गीतशास्त्र में सङ्गीत पर विचार करने की रीति अनेक अनुशासनों से प्रेरित है। इन अनुशासनों को निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है।

१. शरीर–सम्बन्धी चिन्तन–इसमें आयुर्वेद, योग और तन्त्र आते हैं।

२. वाक्–सम्बन्धी चिन्तन–इसमें शिक्षा, व्याकरण, छन्द और साहित्यशास्त्र का स्थान है।

३. चित्तसम्बन्धी चिन्तन–इसमें रससिद्धान्त का प्रमुख स्थान है।

४. पुरुषार्थ–सम्बन्धी चिन्तन–जो सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का केन्द्र बिन्दु है।

५. देश काल–सम्बन्धी चिन्तन–इसमें ज्योतिष का प्रमुख स्थान है।

६. दार्शनिक चिन्तन–इसमें मीमांसा, वेदान्त, सांख्य आदि का स्थान है।

इन वर्गों पर परिचयात्मक विचार क्रमशः प्रस्तुत है–

१. शरीर सम्बन्धी चिन्तन–नादोत्पत्ति का प्रमुख साधन शरीर को ही माना गया है, जिसे उपनिषद् में दैवी वीणा नाम दिया गया है और सङ्गीतशास्त्र में शारीरी वीणा। इसलिये शरीर ('पिण्ड') की उत्पत्ति अर्थात् माता के गर्भ–धारण से लेकर शिशु के जन्म तक की प्रक्रिया का

संक्षिप्त अथवा विस्तृत वर्णन सङ्गीतशास्त्र-ग्रंथों में मिलता है। प्रथम का उदाहरण है शारदातनय का 'भावप्रकाश' एवं द्वितीय का शार्ङ्गदेव का 'संगीतरत्नाकर'। यह निरूपण सीधे आयुर्वेद से लिया गया है। इसके अतिरिक्त भी आयुर्वेद से प्रभावित चिन्तन संगीतशास्त्र में दो प्रसङ्गों में मिलता है। कण्ठ के वर्गीकरण के प्रसङ्ग में, जहाँ वात-पित्त कफ और सन्निपात को आधार बनाया गया है। इसका आरम्भ मतङ्ग की बृहद्देशी में ही हो जाता है। बाद के ग्रन्थों यथा संगीतरत्नाकर में इसका विस्तार हुआ है। प्रबन्ध के निरूपण में 'अङ्ग' और 'धातु' का विचार सीधे आयुर्वेद से प्रभावित है। आयुर्वेद की दृष्टि से शरीर या 'पिण्ड' के वर्णन के साथ-साथ हठयोग की दृष्टि से चक्रों और नाड़ियों का निरूपण भी सङ्गीतशास्त्र में मिलता है। इसका सर्वाधिक विस्तृत रूप 'संगीतरत्नाकर' से प्राप्त है। वैसे, नाद-बिन्दु की चर्चा तो 'बृहद्देशी' से ही आरंभ हो जाती है।

तन्त्र की दृष्टि से सात स्वरों के वाचक अक्षरों-'स रि-ग-म-प-ध-नि' का बीजाक्षरों की भाँति निरूपण बृहद्देशी में मिलता है और वहीं से तन्त्र का संगीतशास्त्र में प्रवेश लक्षित होता है। आगे चलकर तान्त्रिक पद्धति से रागध्यान देने की रीति सामने आती है। इसका स्पष्ट दर्शन चौदहवीं शताब्दी के ग्रन्थ 'सङ्गीतोपनिषत्सारोद्धार' में होता है और पन्द्रहवीं शताब्दी के 'सङ्गीतराज' में और भी विस्तार सामने आता है। इस पद्धति में राग के पुल्लिङ्ग वाचक अथवा स्त्रीलिङ्ग वाचक नाम के अनुसार उसका 'ध्यान' देव या देवी के रूप में दिया जाता है। इस ध्यान में शरीर का वर्ण यानी रङ्ग, वस्त्रों का वर्ण, सिरों और भुजाओं की संख्या, आयुध अर्थात् हाथों में धारण किये हुए उपकरण और वाहन ये पाँच बातें सम्मिलित रहती है।

२. वाक्सम्बन्धी चिंतन-'शिक्षा' शास्त्र का सम्बन्ध वर्णोच्चारण

से है । संगीत का प्रमुख तत्त्व नाद है, किन्तु वास्तव में नाद और वर्ण अभिन्न रूप से जुड़े हैं । इसलिये शिक्षा में वर्णोत्पत्ति का जो क्रम बताया गया है, अर्थात् पहले आत्मा में विवक्षा (कहने की इच्छा) उठना, फिर आत्मा द्वारा मन को नियुक्त किया जाना, मन का कायाग्नि को प्रेरित करना, और कायाग्नि से वायु की ऊर्ध्व गति होना–यही क्रम संगीतशास्त्र में भी स्वरोत्पत्ति के लिये ज्यों का त्यों स्वीकृत एवं वर्णित हुआ है । यह वर्णन 'बृहद्देशी' एवं 'सङ्गीतरत्नाकर' में मिलता है । स्वर, वर्ण और पद व्याकरण शास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं और ये ही सङ्गीतशास्त्र में भी ज्यों के त्यों आये हैं । दोनों शास्त्रों में इनके अर्थ स्थूल रूप से भिन्न हैं, किन्तु उनमें आन्तरिक समानता है । व्याकरण में 'स्वर' की व्याख्या है 'स्वयं राजते' अर्थात् जो स्वयं प्रकाशित होता है । संगीत में 'स्वतो रञ्जयति' स्वर का लक्षण है । स्वयं अर्थात् किसी अन्य अक्षर की सहायता के बिना जो प्रकाशित होता है वह व्याकरण का स्वर है । सङ्गीत का स्वर स्वयं अर्थात् किसी अन्य अर्थ की अपेक्षा के बिना ही श्रोता के चित्त को आनन्द देता है । दोनों 'स्वरों' में 'स्वतः' या 'स्वयं' समान है । एक स्वयं प्रकाशित होता है और दूसरा रन्जन भी करता है ।

वर्ण (अक्षर, व्यक्त श्रव्य ध्वनि) भाषा की पहली ईकाई है और सङ्गीत में भी स्वर की गति की प्रथम अभिव्यक्ति है वर्ण । 'वर्ण' शब्द का सामान्य अर्थ है रङ्ग । दृश्य में रङ्ग ही विशिष्टता लाता है । भाषा में वर्ण ही विशिष्टता का प्रथम साधन है । उसी प्रकार सङ्गीत में भी विशिष्टता 'वर्ण' से ही आती है । या तो हम किसी स्वर को पुनः पुनः लेते हैं (स्थाई) या क्रमशः ऊँचाई की ओर बढ़ते हैं (आरोही) या नीचे की ओर उतरते हैं (अवरोही) और या तीनों का मिश्रण करते हैं (सञ्चारी) ।

पद, भाषा में पहली सार्थक इकाई है । संस्कृत भाषा में कोई भी

शब्द तब तक प्रयोग के योग्य नहीं माना गया जब तक उसमें सुप् (संज्ञा में लगने वाले) प्रत्यय या तिङ् (धातु–क्रिया वाचक शब्द में लगने वाले) प्रत्यय न लग जायें। इसलिये पद का लक्षण दिया गया है "सुप् तिङन्तं पदम्' अर्थात् जिसके अन्त में सुप् या तिङ् प्रत्यय लगा हो वह पद होता है। संगीत में सार्थक अथवा निरर्थक दोनों ही प्रकार की वर्णात्मक ध्वनियों के विशिष्ट समूह की संज्ञा पद है। किसी भी भाषा के सार्थक पद तो 'गेय' में आते ही हैं, साथ ही झण्टुं, जगतिय, वलितक, दिगिनिगि, तितिझल, कुचझल, तितिचा" जैसे अर्थहीन अक्षरसमूह भी पद कहलाते हैं। ये पद–समूह नाट्यशास्त्र में 'शुष्काक्षर' अथवा 'वाक्करण' कहे गये हैं। जाति या राग जैसे स्वरसन्निवेश के विस्तार में स्वरों के सञ्चार की जो इकाइयाँ बनती हैं उन्हें भी 'पद' कहा गया है। भाषा में जैसे पदों से वाक्य बनता है, वैसे ही इन स्वरात्मक पदों से 'जाति' या 'राग' का स्वरसन्निवेश प्रकट होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि व्याकरण और संगीत के मूलभूत चिन्तन में कितनी समानता है। व्याकरण के दर्शन 'स्फोट' का जो विचार है उसे सङ्गीत में स्वरगत अनुरणन के रूप में स्थान मिलता है।

छन्दःशास्त्र में पद के लघु-गुरु अक्षरविन्यास अथवा मात्रा–संख्या के अनुसार पदरचना अथवा केवल अक्षरों की संख्या के नियमन पर विचार होता है। पदगत रचना के प्रारूप (पैटर्न) सरगम में, और सितार–सरोद जैसे प्रहारयुक्त तन्त्रीवाद्यो में, सभी अवनद्ध वाद्यों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। यों तो घर्षण–वह चाहे गज से हो या फूँक से–में भी ये प्रारूप बनते ही हैं। किन्तु प्रहार में इनका रूप अधिक स्पष्ट होता है। 'ध्रुवा' 'गीतक' और 'प्रबन्ध' में क्रमशः लघु गुरू विन्यास से बने वार्णिक वृत्तों, अथवा चार पादों में विभाजन से हटकर विन्यास के अन्य प्रारूपों, चतुर्मात्रिक गणों और वार्णिक तथा मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ

है । आज भी मौखिक परम्परा में बीन, सितार या सरोद में मिजराब या जवे के बोलों के प्रसङ्ग में 'छन्द' शब्द का प्रयोग भरपूर होता है । तबला पखावज के बोलों में भी 'छन्द' की झलक दिखाई देती है और इस शब्द का प्रयोग भी होता है । इस प्रकार छन्द सङ्गीत में सर्वत्र व्याप्त है, उसका प्रत्यक्ष उल्लेख हो या न हो ।

साहित्यशास्त्र में शब्द और अर्थ के 'सहित' भाव पर विचार होता है । शब्द के समकक्ष स्वर का संगीत में स्थान है । काव्य का शरीर यदि शब्द से बनता है तो गेय का शरीर स्वर से । काव्य में शब्द या पद की रचना में समास की बहुलता या विरलता के आधार पर रीति का निरूपण हुआ हैं । उसके समकक्ष संगीतशास्त्र में गीति का विचार है, जिसमें प्रमुख रूप से स्वरों के सरल अथवा वक्र प्रयोग, गमकों की बहुलता अथवा विरलता आदि का विचार विषय–निरूपण का आधार बना है । गुण–दोष, अलंकार भी दोनों शास्त्रों में समानरूप से निरूपण का विषय बने हैं । काव्य में शब्द और अर्थ के गुण–दोष कहे गये हैं तो सङ्गीत में गायक, कण्ठ और गीत, उसी प्रकार वादक, हस्त और वाद्य के गुण-दोष कहे गये हैं । काव्य में अलंकार का दर्शन शब्द और अर्थ में किया गया है और संगीत में उसका सम्बन्ध केवल स्वर से है । आज अलंकार का दर्शन शब्द और अर्थ में किया गया है और संगीत में उसका सम्बन्ध केवल स्वर से है । आज अलंकार को 'पलटे' का पर्याय माना जाता है, किन्तु अलंकार का प्राचीन अर्थ उससे अधिक व्यापक है, जिसमें बाद के गमक का भी समावेश है । विस्तारभय से व्याख्या का यहाँ अवकाश नहीं है । इतना अवश्य कहना होगा कि गेय में सार्थक पद के माध्यम से काव्य के शब्दालंकारों का सहज प्रवेश हो जाता है ।

३. चित्तसम्बन्धी चिन्तन–मनोवृत्तियों को लेकर नाट्य के प्रसङ्ग में जो विचार हुआ है, उसकी निष्पत्ति भाव और रस में हुई है । यह

विचार सभी कलाओं में व्याप्त है । संगीत शास्त्र में भी राग, प्रबन्ध, नृत्य के प्रसंग में विशेष रूप से रसों और भावों का उल्लेख हुआ है । विस्तार के लिये यहाँ अवकाश नहीं है । इस चिन्तन का सार यह है कि 'लोक' अर्थात् जीवन में हमारी चित्तवृत्तियाँ देश-काल-पात्र के साथ जुड़ी रहती हैं, इसलिये हम उनके प्रति तटस्थ नहीं रह पाते । तादात्म्य और तटस्थता दोनों एक साथ रहें, यह तभी हो पाता है जब जीवन की अवस्थाएँ नाट्य अथवा किसी अन्य कला के माध्यम से प्रस्तुत की जायें । तब चित्तवृत्तियों का आस्वादन सम्भव होता है और आस्वादन का अनुभव ही रस है । (देखें लेखिका की पुस्तक 'रस सिद्धान्तः' मूल, शाखा, पल्लव और पतझड़) ।

४. पुरूषार्थ सम्बन्धी चिन्तन-'पुरूषार्थ भारतीय संस्कृति का केन्द्र बिन्दु है । मानव-जीवन के चार अर्थ या प्रयोजन माने गये हैं-धर्म अर्थात् नीतिमूलक आचरण, 'अर्थ', अर्थात् जीवनोपयोगी सभी पदार्थ, 'काम' अर्थात् आत्म-विस्तार की कामना और 'मोक्ष' अर्थात् आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति और निरतिशय सुख-स्वरूप होना । संगीत को इन चारों पुरूषार्थों का समर्थ साधन माना गया है ।

५. देश काल सम्बन्धी चिन्तन-इस चिन्तन का सीधा सम्बन्ध ज्योतिष से हैं । वैसे देश और काल पर थोड़ा-बहुत विचार हर दर्शन में हुआ है । काल की चक्रिक गति के स्वीकार का स्पष्ट प्रभाव ताल के स्वरूप पर हैं । देश का विचार संगीत शास्त्र के ग्रन्थ 'बृहद्देशी' में विशेष रूप से हुआ है । 'ध्वनि' का अनुभव 'देश' के अनुसार होता है, अर्थात् ध्वनि सामने -पीछे, बाएं-दाएँ ऊपर-नीचे कहाँ से आ रही है, इसका अनुभव होता है । इसलिए ध्वनि देशी होती है, इस चर्चासे इस ग्रंथ का आरम्भ होता है । फिर मार्ग के प्रतियोगी (काउन्टर पार्ट) 'देशी' का सम्बन्ध भी देश-देश में रहने वाले जनों से हैं । रागों की भाषाओं

(प्रकारों) की एक कोटि भी देशजा है, जिसमें–सैन्धवी, गुर्जरी, सौवीरी, कालिङ्गी, सौराष्ट्री जैसे नाम मिलते हैं। नाट्यशास्त्र की १८ जातियों में से आन्ध्री नाम तो सीधे देश से जुड़ा है, शेष नामों में भी 'गान्धार' और 'उदीची', ये दो घटक देश–वाचक कहे जा सकते हैं, यद्यपि गान्धार स्वर–वाचक भी है। तात्पर्य इतना ही है कि देश का विचार संगीतशास्त्र में बराबर होता रहा है। काल तो संगीत का मूल तत्त्व है ही, क्योंकि 'श्रव्य' की निष्पत्ति काल में ही होती है। सुनना क्रमिक होता है। इसलिए उसमें काल अनिवार्य है।

६. **दर्शन सम्बन्धी चिन्तन**–वेदान्त और सांख्य दर्शनों का प्रभाव संगीतशास्त्र में पिण्डोत्पत्ति अर्थात् जीव द्वारा शरीर–धारण की प्रक्रिया में और सत्त्व–रजस्–तमस् इन तीनों गुणों के सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादन में प्रमुख रूप से दिखाई देता है। पूर्व–मीमांसा का प्रभाव विषय–प्रतिपादन में 'विधि' 'परिसंख्या' जैसे शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट होता है। (देखिए डा० विमला मुसलगाँवकर की पुस्तक–"भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन")।

उपसंहार–इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय संगीत शास्त्र में भारतीय चिन्तन की अनेक धाराओं का घुला-मिला रूप प्राप्त होता है। ये सभी धारायें परस्पर जुड़ी हुई हैं। भारतीय संस्कृति की जीवन के प्रति अखण्ड दृष्टि संगीतशास्त्र में भली-भाँति उजागर होती है।

नादार्चन–१९९४ से साभार

●

परिशिष्ट -४

Music As An Effective Means of Sadhana

(Elaborated on the lines indicated by SWAMI PRATYAGATAMANANDA SARASWATI)

Prem Lata Sharma

Banaras Hindu University varanasi, U.P.

A salient feature of Indian Sangitashastra is that it's texts have numerous references to the importance of music, particularly song, in the religious life. These references may be grouped under the following heads.

(i) Eulogy to *Nada* :

"*Varna* (Syllable) is manifested from *Nada*, from *Varna* is manifested *pada* (word) and from word is manifested sentence, which is the means of communication. The world is, therefore, controlled by *Nada.*"

(ii) Eulogy of *Nadopasana* :

"By the *Upasana* of *Nada*, *the Gods* Brahma, *Vishnu* and *Maheshwara* are propitiated, because they are '*Nadatmaka*' (of the nature of *Nada*, or composed of *Nada)* ".

(iii) The description of *Gita* ('Song') being dear to the different manifestations of Divinity :

"The Omniscient Lord *Parvatipati* is pleased by

Gita (song), the beloved of the *Gopis (Krishna)* is captivated by the sound of the flute, *Brahma* is engaged in singing '*Saman*', and *Saraswati* is attached to the *Vina*".

(iv) '*Gita*' is the only menas to the attainment of *Moksha* (Liberation) as well as for attaining *Dharma* (righteousness), *Artha* (prosperity), and *Kama* (passion) : "Who could speak of the greatness of *Gita* ? It is the only means for attaining *Dharma, Artha, Kama,* and *Moksha*".

Apart from the text of *sangitashastra*, the *Smritis, Puranas,* and allied literature are full of eulogistic passages with reference to music, a few of which are reproduced *below*:

"One who knows the substance of *Vina-playing,* who knows the *Shrutis* and *Jatis* as well as *Tala,* attains the path to Liberation. If a singer cannot attain the highest state (of Liberation) through his song, he can enjoy the company of *Rudra* as his *servitor*"

A well-known *Puranic* passage runs as follows :

"*Dhyana* excels worship, *Japa* excels *Dhyana,* and *Gana* excels *Japa.* But there is nothing to excel *Gana.* ".

Analysing the above passages, one could infer that :

(i) Music is not only a means of *Upasana* or *Sadhana,* but a very effective means par excellence.

(ii) The various manifestations of Divinity (Gods) are not only fond of music, but can best be conceived

as being composed of *Nada* (vibration).

(iii) There are different levels of musical culture, the lower levels leading to *Dharma, Artha, Kama,* and the highest level leading to Liberation (Moksha).

IMPLICATIONS

We shall try to understand in some detail the implications of these three aspects of the traditional eulogy of music, and thereby try to find out the metaphysical basis of this tradition. As the above-noted three aspects are closely inter-linked, it may not be possible to consider them individually (in isolation), but while concluding we shall try to correlate our points with the same.

The foundational Being, or Reality, is called *Brahman,* and that is the Alogical Absolute in Itself. This reality is self-revealed in our highest experience as *Asti* (Pure Unconditioned Being), *Bhati* (Consciousness) and *Priyam* (Bliss), also known as *Sat,* Chit, and *Ananda* respectively. With respect to *Ananda, Brahman* is also called '*Bhuman*', and sometimes 'Madhu'. As such it is Supernal Joy-Consciousness.

Rasa or *Ananda* is the All-pervasive background of all that is or *becomes,* like the limitless Akasha with respect to whatever exist and moves in the Universe, or like an unbounded Ocean with respect to the waves and eddies that may rise on it. Of these two similes, the *Akasha* aspect especially indicates *Sat and Chit,* whereas the Ocean *(Arnava)* aspect indicates *Ananda.* The two aspects, however, are not to be isolated; the former *(Akasha)* indicates the stressless

(Nispanda) background *(Adhisthana)*, the latter *(Arnava)* indicated the fundamental 'heaving' of the 'sea' as 'Mulaspanda'. That which renders the Basic silence *(Mahamauna)* as original *Vak* is *Mahanada*, or in other words, *Omkara* or *Pranabrahma*. Thus *Mahanada* as *Omkara* is the first Creative Manifestation, not only of *Sat* and *Chit, but also of* Ananda. As *Ananda* is directly associated with the *Mulaspanda*, and *Sat/Chit* form the background, *Ananda* is spoken of as the source, sustainer, and repose of all Creation.

Mahanada is the Original Self-rendering of *Bhuman*, which is the same as *Rasa* or *Ananda*. It is the Grand Integral, or consummation, of the basic 'thrill' *(Spanda)* from which Creation start, on which it function, and into which it relapses. *Rasa* or *Ananda*, is the '*Hrit*' (core-essence) of all Creation. Music could be an effective means of realising this '*Hrit*' because : (i) It is directly composed of sound, which could be a pleasant and accessible means of realising the original *Spanda* or *Mahanada*. (ii) Even at the *grossest* level, music can be experienced as the most natural and universal expression of Joy. Of course for the above realisation the appropriate attitude, purity of mind and body, as well as single-minded devotion, is absolutely necessary.

This much about the beginning of Creation. As regards creative manifestation, it is notable that it is not a straight *(Riju)*, even (*Sama*), and continuous *(Akhanda)* process. Rather it takes on a wave-like, cyclic, or spiral pattern, as, for example, the growth of a tree from a seed, and the

culmination of the tree in seed being in a cyclic pattern. Accordingly *Mahanada* becomes the germinal seed (*Bindu*), as also systematic aspects or phrases of creative manifestation (Kalas). All the three above-noted patterns are explicitly perceptible in music : The sound-waves give the wave-like pattern, *Tala* is a cyclic pattern, and the relationship of octaves can be approximated to a spiral pattern.

By this basic scheme of creative evolution, *Mahanada* or *paranada* renders Itself as a manifestation, according to a varied, yet harmonised norm or pattern *(Sushama Chhandasa Abhivyakti)*. This combination of variety and unity is beautifully manifested in Indian music, both in *Raga* and *Tala*.

Rasa or *Ananda*, which is fundamentally Joy of Self-Absorption or *Ananda Samadhi* (which can be described as 'Svalasita'), becomes or renders itself as Ullasita or Vilasita. Speaking of music, Om as Paranada renders itself as svaragrama (Sa, Re ga, Ma, etc.) or Gamut. This is the svalasita level. for *Ullasa Svara* becomes '*Sura*' or drone, for *Vilasa* it becomes the mystic beatific '*Dhuna*' or melody. This process of manifestation, starting from one undifferentiated sound, can be realised on the grossest level of music perceptible by the senses, and also on the subtler levels of Yogic experience.

The process of manifestation, and the reverse process of merging, can be realised through music, perhaps in a much easier way than through any other human pursuit. In view of the objective of this realisation, in the 'doing' of any '*Raga*,

it is not enough to show the '*Svara*' or '*Surakala*' in their proper affinity relations; it is essential to show them on the 'canvas' or background of *Nada,* which embodies the process of manifestation, and also as relapsing into *Vilaya* or merging-matrix of '*Bindu*'. *Nada* stands for the screen of the perfect *potent* state, and *Bindu* stands for the 'secreted real' of perfect *potent* or latent state.

The objective of spiritual culture through music is to realise the process ov *Vitana* (or elaboration) and *Vilaya (*or submerging). The scheme of *Nadawise* manifestation (*Svarodaya)* and *Bindu-wise* submerging (*Svara-vilaya)* must have a Matra or 'measure'. The 'unmeasured' has to get a 'measure'. This is the foundation of the '*Tala*' in music.

Coming back to the varied, yet harmonised Norm or Pattern *(Sushama Chhandasa Abhivyakti)*, it may be observed that the essence of 'Liberation' is that all conflicts have to be resolved at the physiological and psychological planes. We are 'thrown' on a *Vishama (discordant, uneven) plane, and have to rise to* Sushama and *Sama (*harmonised, even) from this. The uneven plane of our existence is depicted in the Yogic tradition by the *Vakra Gati* (curved movement) of *Ida* and *Pingala.* '*Sushumna*' is the 'Direct or Straight Homeline'. Music can become a means of Liberation if it helps the opening up of this path, and the functioning of the *Kula-Kundalini*, the dormant 'Serpent-Power'. For the fulfilment of this purpose '*Raga*' is a mystic formula, and implies the pristine significance of *Svarachhandah Sadhana* : i.e. the cultivation of *Svara* and *Chhanda,* which is music.

RAGA AND TANTRA

By the Nirukta method the three components of the word *Raga* :viz *Ra,* 'A' and 'Ga' may be interpreted as follows :

'Ra' could be a representation of 'RAM', which is the *Bijakshara (*germinal 'seed') of '*Agni*' (Fire). In the human body, *Agni* or Tejas is located in the *Manipura Chakra* (Navel centre), from whence (in music also) *Nada* should rise. Prior to the rise of *Nada* the *Agni* has to be 'kindled' at the Base centre *(Muladhara)*, and must acquire 'fluidity' at the *Svadhishthana* centre (which stands for 'Ap' : Water). As different from true music, our ordinary *Vak* function from the 'throat' and is regulated by the constraining and fluctuating ratio of *Ida* and *Pingala* which are the instruments for the functioning of the *Chandra* (lunar) and *Saura (*Solar) Vayu. This ratio has to be made equal, as nearly as possible *(Pranapanau Samau Kritya)*, for without this equalisation the path of *Sushumna,* with its Supra-energetic principle of *Agni,* Will not open. And if this is not opened, the *Kula-Kundalini* will not function, and the '*Sushumna Agni*' will not forge its way into the ultra region of *Bindu+Nada+Kala* (the process of manifestation) or *Kala* + *Nada* + *Bindu* (the reverse process of submerging).

The 'A' in the middle of 'Ra' and 'Ga' indicates that 'Ra' is not a static closed functioning, but rather, it manifests as *Paranada, Para-Bindu* and *Sushama Kalas.* And 'Ga' stands for '*Gati*', and just like '*Kam Brahma*' *(Bhuman)* or '*Kham Brahma*' (*Akasha*), '*Gam Brahma* is '*Prana brahma*'.

The 'Ga' in *Raga* ' therefore shows that '*Prana Brahma*' as '*Mukhya Prana*' must disentangle itsely from the Servitude of the so-called twofold 'Prana' and must as Pristine Energy, 'rouse' '*Ardhamatra (*ever-increasing', 'ever-expanding') or *Kula-Kundalini* so that ascent can be had from the lower levels of *Rajas* and *Tamas* to the higher power-levels of *Prajnana* and *Ananda. 'Raga'*, if properly cultivated, could help this process of ascent. Thus 'Raga' at the highest level, is the direct approach of *Rasa* or *Ananda,* from its apparant Alasita (Unmanifest) condition to the higher planes of *Ullasita, Vilasita,* and *Svalasita. Raga* could thus stand for *Ananda Samadhi*, or *Mahabhava,* which is the Supreme End.

CORE—ESSENCE

Coming back to the *Hrit* (core-essence) of all creation, which is Rasa or *Ananda,* it may be said that this *Hrit* has its own '*Hrillekha*' (core-picture). The core-picture can be regarded in relation to time *(Kala)* as an unobstructed flow, or in relation to space, as a settled or realised situation. The former, which is dynamic, functions as *Ritam,* and the latter, which is static, functions as *Satyam*. By such duplication *Hrit* becomes *Hridaya* (dynamic) and Hriddesha (*static).*

In compositional patterns of Hindu music, e.g. in '*Dhrupada*' the *Dhruva* or *Sthayi* stands for the *Hriddesha* (static, always recurring), and the other sections of the song, like *Antara, Sanchari, abhoga* etc., which are not recurring stand for *Hridaya* (dynamic). In *Raga again, a certain* Svara has to become the primary one, known as *Vadi, Amsha,* or

Sthayi according to the ancient tradition, and others are its *Samvadis* or *Anuvadis.* Now the *Vadi* or *Sthayi svara* of a *Raga* is its *Hriddesha* (Static), and it must render itself as *Hridaya,* implying the evolving of *svalasita Rasa* as *Ullasita* and *Vilasita*. Such rendering needs the interpretation of *Nadabrahma Bindubrahma* as *Kalas (Sushama Kalavitana).* In this process of the manifestation of Kalas, *Svara* is 'married' to *Chhanda,*—the 'unmeasured' is wedded to the 'measured'

The foundation of the art and science of Hindu music can be traced in metaphysics as indicated already. It may be of interest to cite a few more instances as follows.

(i) The *Kalani Shakti* (the power of creative evolution) in *Kalas* works upon a basic six fold scheme embodied in 'Ram', 'Lam', Vam etc. *Ragas* are also basically six, both according to the *Raga-Ragini* system, and according to the *Gramaraga* system (six *Shuddha Ragas)*. This number of *Ragas* is also connected with the six *Chakras,* or psycho-physical centres in the human body. *Sushumna* is at the centre of all these *Chakras.* The six *Ragas* (of the *Raga-Ragini* system) could be related to the six *Bijaksharas,* -e.g. : 'OM VAM' could be the matrix of '*Megha Raga*' which is associated with rain, as 'VAM' stands for water. Similarly 'OM RAM' could be the matrix of '*Dipaka Raga*', as 'RAM' stands for *Agni* (Fire).

(ii) '*Gamaka*' or tonal embellishment, plays an important role in Hindu music. It is by '*Gamaka*' that the self-satisfied 'trance' of *Nada* is broken into the 'dance and play' of actual

'*Alapa*'.

(iii) '*Murchhana*' is a concept of cardinal importance in the ancient tradition of Hindu music. The root '*Murchha*' has two meanings-viz : to swoon, and to rise. Both the meanings are pertinent in the musical '*Murchhana*'. It is by '*Murchhana*' that the '*Murchha*' (Swoon) of '*Alasita*' *Rasa* of ordinary speech is churned up or awakened. *Murchhana* rouses *Nada* from its inert latency in the sleeping *Avyakta Bijarupa Bindu*, the unmanifested germinal seed, and makes it evolve the *Kalas* in harmony. In technical language, *Murchhana* brings out the potentialities of the seven svaras of the grama. In the reverse process, *Grama* becomes latent again. The example of the unfolding of the petals of the blooming lotus, and their folding back, may be apt here. In the process of manifestation *Akhanda* (undivided) and *Amatra* (unmeasured) *Rasa* becomes *Khandita* (divided) and *Matrika* (measured), and in the reverse process the *Khandita* and *Matrika Rasa* becomes *Akahanda* and *Amatra* again.

Referring once again to '*Priyam*' or '*Rasa*' as the 'Hrit' of *Asti* (Being and Becoming) and *Bhati* (Awareness, or Consiousness), a question may be raised about the role of this *Hrit* in Cosmic emergence and self emergence. In one word its role is to act as harmony (not in the sense of Western music) or *Madhucchhanda*', which is the life or 'heart' of music.

Creation in substance is a dance (*Nritya*) in immaculate rhythm, a 'Play' (*Vadana*) in innermost rapport, a song (*Gana*)

in overflowing ecstasy. Dance and play (*Nritya* and *Vadana)* imply *Matra (*Measure), flawless of course, and song (*Gana*) implies a consummation of that 'pair' in unmeasured rapture. The first two (dance and play) deal in *Sushama Kalas,* the last one is the union of *Nada* and *Bindu* whence *Kala issues forth. If in dance and play,* Vyasavritti (differentiation) with respect to duration and situation dominates, In song *Samasa* or *Samahriti (*integral reproachment) should be the keynote. The rhythmic outflow of *Pranana* (the functioning of *Prana)* is *Nritya,* the rapport on accordance of *Vadyas* could be equated to *Manana* (standing for validity), and *Gana* could be described as the *Gati*, Bhavana, and *Ahladana* in one word *Value* of the first two. Thus speaking in terms of the Vedic traid of *Vak*, *Prana*, and *Manas,* it could be said that *Prana* is predominant in *Nritya*, *Manas* in *Vadya*, and *Vak* in *Gana.* Nritya *could be related to our 'brawn' (body)*, *Vadya* to our 'brain' and *Gana* to our heart' (core of being). Hence the excellence of *Gana* in the Hindu tradition. In *Gana* again, *Alapa* affords the highest mode or mood of the self-rendering (*Samvedana Avedana)* of *Raga*, because it represents unification or consummation in the highest possible state.

Before concluding it is necessary to point out that in a short paper like this it is possible only to indicate some illustrative points about the Vedic and Tantric (Yogic) origin of the concepts of Hindu music. It is in no way possible to do justice to the subject. Suffice it to say that Hindu music is very closely related on the one hand to the *Hatha* Yoga system (which starts with the body), and on the other hand to the

Rajayoga system (which starts with the mind). Music being a harmonisation of *Vak*, *Prana*, and *Manas* at all its levels, lends close affinity to any spiritual culture that starts with the body, mind and speech.

In conclusion, let us recapitulate the three points made in the beginning : viz, (i) Hindu music is a very effective means of *Sadhana*, because its concepts are tuned to Vedic metaphysics, Yoga and Tantra; (ii) the various embodiments of Divinity can best be conceived of *Nada, because* Nada is both the basic manifestation, and its germinal seed (Bindu), and (iii) The Hindu musical tradition conceptually lends itself to all levels of musical culture-highest and lowest. Liberation is naturally related to the highest level.

●

A Study of history is a study of the Process of change and the thread of Continuity. History is neither total change nor total continuity. It will be a falsehood if we say that whatever we do today is just the same as what was done in Bharat's time. But we must say that there is a thread of continuity. What that thread is, to retrieve that thread, to reconstruct that thread of continuity, to understand the losses or gains or whatever the deviation, or departures, if possible, even assign reason for that, all this is the task of history.

Prof-Prem Lata Sharma from JIMS

Volume 32. Page 22-23

बहनजी के निवास स्थान
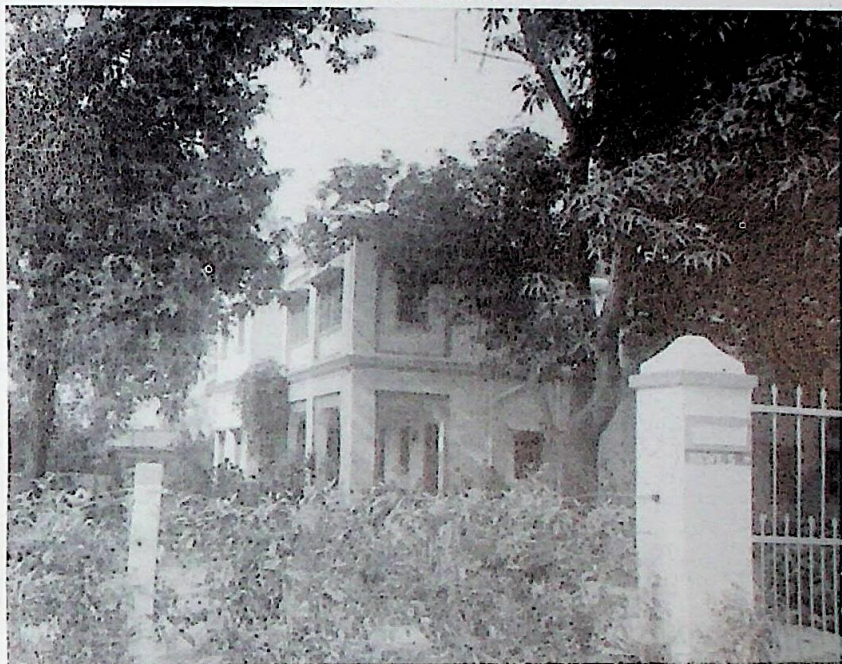
ई-५, जोधपुर कालोनी, का.हि.वि.वि., वाराणसी
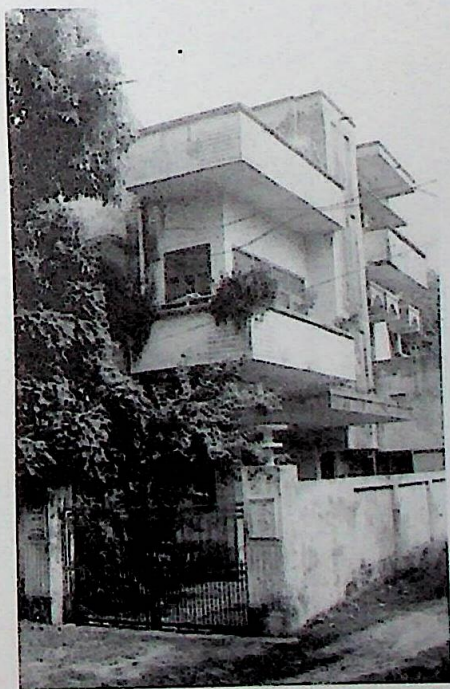
आम्नाय, करौंदी, पोस्ट का.हि.वि.वि., वाराणसी

बहनजी का कार्यस्थल

गुजरात हाउस, संगीत शास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी

परिशिष्ट –५

MASTER'S COURSE IN MUSICOLOGY[1]

The degree will be called M. Mus. (Musicology)

1. OBJECTIVE

To Prepare well equipped research scholars and teachers in the field of Musicology. It will lay emphasis onSangita Sastra and also encompass modern developments in the discipline. The course of studies for this degree has been structured to reflect inter disciplinary approaches.

The course shall be open to those who have passed the following :—

(i) The B. Mus. Examination of the B. H. U. or any other Statutory University securing 55% and above marks in theoretical subjects. The minimum qualification in general education shall be I. A. or I. Sc or an equivalent examination with English as a compulsory subject. Preference will be given to those who have offered Musicology as an optional subject at the B. Mus. Level.

(ii) The B. A. examination of any Statutory University with Music as an optional subject securing 55% and above marks in music.

(iii) The B.A. or B. Sc. Examination of any Statutory

---

1. This syllabus is taken from the prospectus of 1987-88 of B.H.U. Varanasi-Later on it was revised.

University or an equivalent examination and any one of the following music examinations of non-statutory bodies, securing at least 55% marks in the latter (the music Examination).

1. Sangit -Visharad of Bhatkhande Sangit Vidyapeeth, Lucknow.
2. Sangit-Prabhakar, Prayag Sangit Samiti, Allahabad.
3. Sangit Visharad of A. B. Gandharva mahavidyalaya, Bombay.
4. A Comparable degree/ diploma in Karnatic music from recognised institutions.
5. The M. A. or M. Sc. examination of any Statutory University or an equivalent examination and a Diploma in Music of at least two years' duration from a statutory University or a recognised institution seruring 60% and above marks in the Diploma Examination.

N. B. Admission will be given on the basis of the candidate's Performance in the admission test to be conducted by the Department.

In this course no candidate can appear privately. The course will be spread over four semesters. There will be four written papers of 75 marks each and two practicals of 100 marks each at the end of each semester. For each written paper there will be 25 marks under sessionals consisting of seminars, papers and written or oral test. Thus the total of marks in each

semester will be as follows:—

Written papers	Sessionals (attached with written papers)	Practicals
300	100	200
(Four papers of 75 marks each)	(25 marks of each papers)	(Two of 100 marks each
		Total 600 marks

Minimum Passing marks would be 35% of the aggregate and 25% in each individual item viz. Written paper, sessional, practical.

Scale of marks for award of Division :—

35% and above	III Division.
50% and above	II Division.
60% ,,	I Division.
75% ,,	Distinction.

Notwithstanding anything contained to the contrary anywhere, the marks secured by a candidate at a higher semester/annual examination may be made available to the candidate even if he has not passed the lower semester/ annual examination or examinations. Provided that the words 'Passed or Promoted or Failed', appearing in the higher semester/ annual examination marks-sheet shall be scored and in its place the words, The candidate has not yet passed.....'Semester (s) Annual examination' appropriate insertions, shall be written.

2. SEMESTERWISE SYLLABUS

N. B. Relevant books and articles will be selected from time to time for those papers where they are not indicated. This is to enable the teachers to select from uptodate publications on the subject matter. However, original textual sources will be part of required reading wherever indicated.

SEMESTER I

(A) Written Papers :

PAPER—I

Introduction to Musicolgy

The numbering under each paper reflects unit organisation).

1. History of Musicology.
2. Sangita Sastra.

Systematic Musicology-Pt I

PAPER—II

1. Musical Accoustics
2. Physiology
3. Psychology

PAPER—III

Musical Palaeography

1. Ear training and sight-singing
2. History of Indian notational Systems :

(i) Ancient

(ii) Medieval

(iii) Modern.

3. History of the Development of Western music notation.

PAPER—IV

Languages

The choice of the language to be offered by a student will depend on the languages known to him/her as indicated in the following chart:

KNOWN	TO BE OFFERED
1. Hindi or any other Modern Indian language, English	Sanskrit
2. Hindi or any other modern Indian language, English, Sanskrit	Bengali/Marathi/Telegu Tamil/urdu/Persian/ Other than mother tongue.
3. Any foreign language other than English	English
4. English only	Hindi/Sanskrit

1. SANSKRIT

A. Grammar

B. Text

2. OTHER INDIAN LANGUAGES

The choice of language under this heading will depend on the availability of teaching facilities in the B. H. U. The student will be expected to cover the Certificate Course in the chosen language.

3. **ENGLISH**

A. Grammar

B. Text

(B) PRACTICAL

Practical I :

Sight-Singing —50

Dictation in Notation —50

Practical II : Performance (Vocal or Instrumental and Viva Voce in the items prescribed herein).

(i) Knowledge of the Characteristic features of any eight Ragas to be selected by the students in consultation with the teacher concerned and with the approval of the Head of Dept. at least two Ragas should be selected from each group.

GROUP I

(Ragas with Shuddha Svaras and Komal ni)

Saraparada bilvala, Devegiri Bilavala, natabilavala Khambhavati .

GROUP II

(Ragas with Shuddha Svaras and two Madhyamas, combined with Suddha and/ or Komal ni)

Kamod, Chhayanata, Shyamakalyana, Marubihaga. Bihagada, Natabihag, Shuddha-kalyana, Purva-kalyana, Jaita kalyana, gaudsarang.

GROUP III

(Ragas with two varieties of Ri ga dha or with all Komal

Swaras).

Komal Asavari, Gandhari, Devagandhara, Desi.

(ii) Two bada Khayalas or instrumental compositios (pairs of slow and fast) in any two out of the above eight Ragas.

(iii) One composition of dhrupada Anga or instrumental composition in a Tala other than Tritala in any Raga other than those selected under (ii) above (iv) One Tarana or Chauturanga in any Raga or any instrumental composition in any Tala not covered under (ii) and (iii) above.

(iv) One Tarana or Chauturanga in any Raga or any instrumental composition in any Tala not covered under (ii) and (iii) above

(v) Brahmatala, Mattatala (knowledge of vibhaga Talikhali etc,)

(vi) Practical knowledge of division 2/3, 4/3

SEMESTER II

(A) WRITTEN PAPER :

PAPER I

History of Theory of Indian Music (Pt. I)

1. Ancient Concepts pertaining to Svara and raga.
2. Medieval development of the above concepts.
3. Modern classfication of svara and raga (Hindustani and Karnatak).
4. Improvisation and Embellishment.

BOOK PRESCRIBED

1. Naradiya Siksa
2. Natay Sastra (Selections)
3. Sangita Ratnakara (Selections)

Besides the above books, scholarly thoughts on the content of the paper by the following authors will also be required reading:—

V.N. Bhatkhande, Alain Danielou, Omkarnath Thakur K.C. D. Brahaspati, Mukund Lath, Yudhisthir Mimamsak.

(This list will be up-dated or supplemented by the teachers as and when necessary)

PAPER II

History of Textual tradition

1. Indroduction to the idea of History
2. Periodisetion :
   (i) Ancient Sources : non musical.
   (ii) Ancient period : Musical texts from B.C. to 1000 A. D.
   (iii) Early medieval period : Text from 1000 A.D. to 1500 A.D.
   (iv) Late medieval period : Texts from 1500 A.D. to 1750 A. D.
   (v) Modern Period : Texts and important articles written between 1750 A.D. to contemporary times.
3. Dance as the third component of Sangeeta.

N.B.:Relevant texts of individual periods will be critically studied.

PAPER III

Systematic Musicology Part II

PHILOSOPHY

1. Anubandhas (four). Drsta-Adrsta phala.
2. Padarthas, Karanas (Samavayi-A samavayi and Nimitta). Concept of Karana (Arambhavada, Parinamavada etc.) Sambandha (Samyoga, Samvaya, Tadatmya) Pramana (3, 6 and 8) Vyapti (Avyapti, Ativyapti).
3. Anthakarana, Cittavritti, Aavarana-Viksepa, Parinama. Abhasa Pratibimba. Brahma-Lakshana (Asti, Bhati, Priyam or Sat, Cit, Ananda) Avasthas of Chaitanya (Jagrat, Svapna, *Susupti*, Turiya). Threefold Satta (Pratibhasiki Vyavahariki, Paramarthiki) Nirvikalpa Savikalpa Gyana. Pratibha, Prajna, Vak (Fourfold), Prana, Manas. Panchakoshas.
4. Triguna, Camatkara, Prakasa, Vimarsa, Astanga (Yoga) Five Bhutas (order of their manifestation), Tanmatras.
5. Nada-bindu (in Tantra). Sphota.

PAPER IV

A Analytical Approach to the two performing traditions-Hindustani and Karnatik.

1. Melodic analysis
2. Rhythmic analysis
3. Forms
4. Instruments.

(B) PRACTICALS I:

PRACTICAL I:

1. Demonstration of topics studied in Paper I — 50 Marks
2. Demonstation of topics studied in Paper IV — 50 Marks

PRACTICAL II — 50 Marks

As in Semester I, out of the following Ragas:—

GROUP I

(Kafi Anga) Sindura, Patamanjari, Hansakinkini, Malagunji.

GROUP II

(Kanhada Anga) Darbari Kanhada, Nayaki Kanhada, Suha. Sugharai, Shahana Kanhada, Kausika Kanhada Bageshri Kanhada.

GROUP III

(Malhara Anga) Miyan Malhar, Gauda Malhar, Meghamalhara. Suramalhar.

(ii), (iii) and (iv) As in Semester 1.

Savari Tala (Knowledge of Vibhaga, Tali, Khali etc.) (vi) Practical knowledge of matra-division : 1/5, 2/5, 4/5.

(C) MUSIC CRITICISM — 60 Marks

SEMESTER III

(A) WRITTEN PAPERS:

PAPER I

Western Music-Part I

HISTORY—Theory and Aesthetics of:

1. Medieval
2. Renaissance
3. Early Baroque

PAPER II

Systematic Musicology : Part III

AESTHETICS

1. Values in Indian Music-Bhukti, Bhakti, Mukti, Sangita as a Means to 'Trivarga' and 'Moksha', the 64 kalas (various versions)
2. Rasa-Bhava. their ingredients. The application of traditional Rasasastra to Music. The number of Rasas (1, 8, 9, 10, 11, 12). Three Gunas (Ojas, Prasada, Madhurya).
3. The Sandhis and Avasthas of Drama; the ten Rupakas Nayika-Nayaka aspect of Raga-dhyana and Thumari.
4. Four natya-Vrittis. Four Ritis. Three Varna-Vrittis.
5. Vyanjana and Dhvani in Music (incidentally Abhidha, Lakshana).

BOOKS PRESCRIBED :

1. Natyasastra.
2. Kavyaprakasa.
3. Dhvanyaloka.

N.B. : Relevant sections of the above books will be required reading.

PAPER III

History of Theory of Indian Music (Part II)

1. Ancient Concepts of Tala, Chandas and forms.
2. Medeival Developments of the above concepts.
3. Modern Understanding of the above concepts in Hindustani and Karnataka traditions.
4. Improvisation and embellishments in Indian Music.

PAPER IV

Well-known Indian Musicians and Composers

1. Medeival musicians and composers (1100 A. D. to 1750 A. D.)
2. Modern Musicians and Composere of Hindustani Tradition (1750 A. D. to date)
3. Modern Musicians and Composers of Karnatik Tradition (1750 A.D. to date)

B. PRACTICALS

PRACTICAL I :

1. Analysis of Materials studied in Paper I 50 Marks
2. Demonstration of Materials studied in

Paper III 50 Marks

Practical II NO CHANGE

B PRACTICAL:

PRCTICAL I : Sight-reading and dictation in musical notation.

PRACTICAL II : Performance (vocal or Instrumental and Viva-Voce in the items prescribed herein.

(i) knowledge of the characteristic features of any eight Ragas to be selected by the students in consultation with the teacher concerned and with the approval of the Head of Dept. At least two Rages should be selected from each group.

GROUP I

Bhairav, Ramkali, Gunkali, Jogiya, Saurastra Bhairav.

GROUP II

Purvi, Puriya Dhanashi, shri, Vasanta, Marwa, sohini.

GROUP III

Lalit, Bhatiyar, Lalit Pancam, Ahira-Lalit.

(ii) Two Khayalas or instrumental composition (pairs of slow and fast) in any two out of the above eight Ragas.

(iii) One composition of Dhrupada Anga or instrumental composition in a Tala other than Tritala in any Ragas other than those selected under (ii) above.

(iv) One Tarana or Chauturanga in any Raga or any instrumental composition in any Tala not covered under (ii) and (iii) above.

(v) Lakshmitala, Mattatala (knowlege of Vibhaga, Tali-khali etc.)

(vi) Practical knowledge of mantra divisions 1/7, 2/7 and 3/7.

(C) MUSIC CRITICISM 40 Marks

SEMESTER IV

(A) WRITTEN PAPERS:

PAPER I

Western Music (Part II)

History, Theory and Aesthetics of

1. Later Baroque
2. Classical
3. Romantic
4. Contemporary

PAPER II

Asian Music

1. Music of East Asia
2. Music of South-East Asia
3. Music of west Asia.

PAPER III

Organology

1. Indian Classification of Music Instruments.
2. History of Music Instruments from Ancient Texts upto 1500 A.D.
3. History of Music Instruments from Medieval Texts upto 1750 A.D.

PAPER IV

Seminar on

1. Selected Text OR
2. Selected Author

B. PRACTICALS :

PRACTICAL I:

1. Analysis of materials studied in Paper I 50 Marks

2. Viva-voce on Paper IV

PRACTICAL II :

(I) Knowledge of the characteristic features of any four Ragas (Two Ragas each to be selected out of the following two groups) :

GROUP I

(Gauri Aanga) : Gauri, Malagauri, Chaitti Gauri, Lalita Gauri.

GROUP II

(Sarang Anga) Malhara (Miyan Ki) Sarang, Madhamad (Madhyamadi) Sarang, Shuddha Saranga, Lankadahana Saranga.

(ii) One classical composition each in any two of the above Ragas.

(iii) One composition each of type of Thumari, Tappa. Bhajan and Gita in any four of the following. Ragas which are fit for light-classical rendering Khamja, Jhinjhoti, Pahadi. Tilang, Desh, Tilakakamoda, Kafi, Barawa, Pilu, Mand, Bhairavi.

(iv) Sheshatala (knowledge of Vibhaga Tali, Khali etc.)

(v) Practical knowledge of Matra-divisions : 1/9, 2/9, 4/9.

●

DIPLOMA COURSE IN MUSIC APPRECIATION

1. OBJECTIVE

1. To arouse interest in enjoyment of Music, to equip the students for perceptive listening and to impart such knowledge as would help them respond to the classical traditions of Indian Music.
2. This course is in the nature of extension service and it is hoped that students from other Faculties of the B.H.U. will take advantage of it for an insight in to their cultural heritage.

Regarding tution fees the rules for other diploma courses in the Faculty will apply. An applicant who is successful in the aptitude test held by the Admission Committee of the department shall be eligible for admission to this course.

2. DURATION

The course will be of three years duration. There will be written and practical tests at the end of each year as follows :—

Written test	Practical test	Total
One paper of 50 Marks	50 Marks	100 Marks

Regarding division and pass-percentage, the scale of Marks prescribed for the Master's Course will apply.

3. YEARWISE SYLLABUS

I Year-II Year-III Year

Note : The topics to be covered with suitable illustrations will be the same for the three years of the Diploma period. However, each year will take the subject matter into greater depths.

Topics

1. Svara-raga.
2. Matra-tala.
3. Anibaddha forms.
4. Nibaddha forms.

●

This curriculum of M.mus. (Musicology) was prepared by Prof. Premlala Sharma, in consultation with late Thakur Jaidev singh. This was the first department of musicology in India and M.mus. in musicology was first introduced in B.H.U. Varanasi. Later on the curriculum was revised by Prof. Rangnayaki Ayengar and Prof. Subhadra chaudhari.

The three years Diploma course in music Appreciation was later on changed to one year certificate course.

It is Painful to note that this department is closed since six long years after retirement of Prof. Subhadra chaudhari, as there is no appointment done by the University in the department. Let us hope that soon the vacant Posts will be filled and the department will again function and rise to its Past glory.

परिशिष्ट–६

प्रो० प्रेमलता शर्मा द्वारा रचित संस्कृत एवं हिन्दी पद्य रचना

भारतीय संस्कृति की भारत में दुर्दशा

(१)

आचार्यप्रवर ऋषिकल्प सन्त विनोबाजी ने भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्व-रूप के 'पञ्चगकार' (ग-अक्षर से प्रारम्भ होते पाँच तत्त्व) कहे थे–गो, गीता, गोविन्द, गायत्री, गङ्गा । उन पाँचों की आज कैसी दुर्दशा है इस पर यह पद्य रचा गया है–

गोघाते निरता वयं प्रतिदिनं, गङ्गाऽपि हा ! दूषिता ।
गीता विस्मृतिगर्तगाऽनुदिवसं, गोविन्दचर्चा कुतः ।।
गायत्री नही गीयते बत कथं त्रायेत घोरात् कलेः ?
लोपं हन्त गता गकारविततिः, पुण्या विनोबाऽऽहृता ।।

गोवंश की तो हत्या करने में हम दिन-पर दिन लगे हुए हैं । भीषण प्राणिसंहारक एवं अशुचि गन्दगी गङ्गा (एवं उनके सदृश अन्य भी लोकमाता नदियों) में डाल-डाल कर हमने परम पावन गङ्गाजल को दूषित कर डाला है । श्रीमद्भगवद्गीता (में कहे गये विश्वहितकारी चिन्तन एवं शिक्षण) को विस्मृति के गर्त में धकेल दिया है, और प्रतिदिन उससे मुँह मोड़ते जा रहे हैं । जीवन का रहस्य समझाने वाले जीवनतत्त्व के समग्र-रसमय प्रतीकरूप 'गोविन्द' की तो चर्चा ही कहाँ ? 'गायन्तं त्रायते इति गायत्री' (गाने वाले का रक्षण (अहित से बचाना) करने वाली) कही गयी गायत्री (परब्रह्म का सविता रूप में ध्यान व प्रार्थना–ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्

सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ।।) का गान (अर्थचिन्तन व भावन सहित सस्वर उच्चारण) किया नहीं जाता, तो वह मन्त्र इस घोर कलिकाल के दुष्प्रभाव से बचाये कैसे ? इस प्रकार विनोबाजी द्वारा एक साथ कहे गये ये पाँचों 'ग' जो स्मरण व सेवन से पावन करते हैं–हाय! आज वे लुप्त हो गये हैं ।

(२)

महात्मा गांधीजी ने भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये लघु-उद्योग, ग्रामोद्योग तथा कुटीरोद्योगों के संरक्षण की आवश्यकता बताई थी, और बहुत बड़े पैमाने पर चलने वाले बृहत्काय यन्त्राधारित उद्योगों को बढ़ावा न दिया जाय–इसी में भारत की भलाई कही थी । इसके साथ ही उन्होंने गो-सेवा और कृषि-कर्म का संयोग बनाये रखने का हितकारी सुझाव व निर्देश दिया था । किन्तु उस सबके सर्वथा विपरीत ही आज भारत में बड़े उद्योगों की विपुलता है, गो-सेवा को छोड़कर (गोवंश की हत्या, और-) रासायनिक खाद के लिये बड़ा भारी आयोजन जोर-शोर से किया जा रहा है, फिर कीट-नाशक-रसायनों के विष से मनुष्यजीवन का विपुल संहार (कीड़ों के साथ मनुष्यों का भी नाश) घटित हो रहा है । फिर कहो तो गान्धीजी की आत्मा हमारे इस भारत में कैसे दिखाई दे ?–यही इस पद्य में कहा गया है ।

औद्योगीकरणं न याति विरतिं, खादी विकारं गताः
गोसेवा नहि रोचतेऽद्य विहिता रासायनीयौर्वराः ।
कीटानां शमने मनुष्यमरणं, 'कार्बाइडे' नाहितम्,
आत्मा गाँधिमहात्मनां वद कुतो दृश्यते नो भारते ? ।।

(३)

भारत-सरकार ने 'शिक्षाविभाग' और 'संस्कृतिविभाग' ऐसे दो अलग विभाग बना कर शिक्षा और संस्कृति का वियोग करा दिया है । इस

वियोग का दुष्परिणाम क्या सामने आया है, और कोरा अक्षरज्ञान ही 'शिक्षा' नहीं है–इस तथ्य को या दृष्टि को भुला देना अनर्थकारी है–यह इस पद्य में वर्णित हुआ है–

शिक्षासंस्कृतयोर्वियोग इति या नीतिः समासादिता
नो तत्रास्ति सुशिक्षणं तनुमनोवाचो न संस्कारिताः ।
शिक्षा नाक्षरबोध इत्यपि न हा सूक्ष्मो विवेकः श्रितः
नो शिक्षा, न हि संस्कृतिर्न विमला बुद्धिर्नवोदीयते ।।

{ शिक्षा और संस्कृति का वियोग कराने वाली जो नीति अपनायी गयी है। इसमें न तो अच्छा शिक्षण हो पाता है, न शरीर-मन-वाणी को सम्यक् एवं हितकर संस्कार ही मिल पाते हैं । केवल कोरा अक्षरज्ञान ही 'शिक्षा' नहीं है–इतना सा सूक्ष्म विवेक भी नहीं रखा गया । इसलिये न शिक्षण हो पाता है, न संस्कृति की रक्षा हो रही हैं, न विमल बुद्धि और उसके नये उन्मेषों का उदय होने की आशा रह गयी हैं । }

(४)

एक बार मैं 'रथयात्रा' दिन दर्शन के लिये श्रीजगन्नाथपुरी गयी थी। वहाँ देखा कि ध्वनिविस्तारक यन्त्रों द्वारा कान फोड़ता हुआ सा विकट नाद (शोर) फैलाया जा रहा था, उसमें श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा महान् भक्तिभाव से सब श्रोताओं-दर्शकों के हृदयों को रस-विभोर करने वाले शुद्ध-रमणीय-श्रुतिमधुर सङ्गीतमय श्रीहरिनाम-सङ्कीर्तन के बदले चाहे जो-चाहे जैसा शोर-गुल ही हो रहा था । और पूरी यात्रा (जुलूस) के अन्त में पीछे धीमे-धीमे चलते हुए कुछ थोड़े से वृद्ध लोग क्षीण स्वर में हरिकीर्तन गाते आ रहे थे । तब मेरे मन में एक प्रश्न उठा, वहीं इस पद्य में व्यक्त है–

आसीद् यात्रा परमविकटा कर्णविस्फारियन्त्रैः
मन्दं मन्दं हरिगुणगणः कीर्त्यते स्मातिवृद्धैः ।
क्वासि त्वं भो ! सरलसुभगे संस्कृते भारतीये ?

घोराद्घोरेऽतितुमुलरवे ? क्षीणकाये स्वने वा ।।

(अरे ! हमारी सरल सुभग भारतीय संस्कृति ! तुम कहाँ हो भला ? यह जो कान फोड़ने वाली अति तुमुल कोलाहल जैसी घोर से भी घोर ध्वनि (आवाज-शोर) है– वहाँ हो क्या तुम ? या इससे दबे हुए अतिशय क्षीण उस हरिकीर्तन-स्वर में तुम हो ?)

(५)

स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के पश्चात् भारत-शासन ने विविध प्रकारों से भारतीय कलाओं के रक्षण-पोषण-प्रसारण के लिये (अपनी बुद्धि से) यत्न करने की नीति अपनांयी । किन्तु वे यत्न वस्तुतः समुचित एवं सही दिशा वाले हैं या नहीं ? यह बड़ा विचारणीय प्रश्न है । उसी की बात यहाँ कही गयी है–

लोको जीवति वा न वोत्सवगणे भूयोऽपि संयोजिते ।
भ्रष्टा वा महिला कला सुविहितैः सम्मानदानक्रमैः ।
शिल्पानां विनयेऽपि कुत्र चिदहो शङ्का समुद्भूयते
क्वास्ति क्वास्ति कला विकारशमनी सत्त्वातिरेकं गता ।।

(तरह-तरह के (कला प्रदर्शक-) 'उत्सवों' का जो बड़े स्तर पर आयोजन-संयोजन हो रहा है, उनके द्वारा वास्तव में 'लोक' जी रहा है या नहीं ? (या समाप्त ही हो रहा है ?) कलाओं को प्रोत्साहन देने के नाम पर जो 'सम्मान' दिये जा रहे हैं, उनके द्वारा वस्तुतः कला की महिमा बढ़ाई जा रही है या कि उन्हें भ्रष्ट किया जा रहा है ? (कला में समर्पित जीवन जीने वाले कलाकारों के चित्त में पैसे और तदाधारित प्रतिष्ठा का लोभ व स्पर्धा जगाकर और आधुनिक समाज के दूषणों का सङ्ग करवा कर कलाकारों का मूल अहित ही सम्भावित है) । इसी प्रकार अत्याधुनिक परिवेश में जो शिल्पों की शिक्षा दी जाती है–उसमें भी शिल्पशिक्षा होना शङ्कास्पद ही है । अहो ! सत्त्वातिरेक में ले जाने

वाली एवं समस्त विकारों का शंमन करने वाली यह भारतीय कला कहाँ है ? कहाँ है वह अब ?

(६)

केन्द्रीय शासन का नवीन गठन होने से जनसमुदाय बहुत आशान्वित हुआ है। मेरे मन में एक ही आशा सबसे ऊपर झाँक रही है कि जिस बात पर स्वराज्यभावना के उद्गाता (एवं स्वराज्य पाते ही पहला कार्य गोरक्षा, गोवधबन्दी करना चाहने वाले) लोकमान्य तिलक, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी एवं जिसके लिये जीवन की आहुति चढ़ाने वाले सन्त बिनोवाजी एकमत थे–एकस्वर से जो (गोवधबन्दी तुरन्त करने की बात) कहते थे–उन महानुभावों की घोर विडम्बना (जो ४२ वर्ष तक होती आयी–वह) क्या अब समाप्त हो पायेगी ? इस नवीन शासनतन्त्र में क्या शीघ्र से शीघ्र गोरक्षा सिद्ध हो सकेगी ?----

गांधी-विनोबा-तिलकोऽपि यत्र ह्येकस्वरास्तत्र विडम्बनं किम् ।

नाशं व्रजेद् भो ! नवशस्ततन्त्रे गोरक्षणं स्यात् त्वरितं सुसिद्धम् ?

(आकाशवाणी, वाराणसी से २९ दिसंबर १९८९ को प्रसारित संस्कृत कवि-गोष्ठी में डॉ० प्रेमलता शर्मा द्वारा ये स्वरचित पद्य पढ़े गए थे।)

उपरोक्त पद्य बहनजी की संस्कृत भाषा में पद्य रचने की क्षमता दर्शाते हैं। आपने संस्कृत तथा हिन्दी में अनेक पद्यों की रचना की है।

●

प्रणव परिवार

बैठे हुए (बांये से) पं. कनक राय त्रिवेदी, श्रीमती वसुन्धरा भट्ट, पं. बलवन्त राय भट्ट, प्रो. प्रेमलता शर्मा, प्रो. एन. राजम्, डॉ. सोमटक्के
खड़े हुए (बांये से) डॉ. अर्चना दीक्षित, प्रो. प्रदीप कुमार दीक्षित, प्रो. चितरंजन ज्योतिषी, श्री रमाशंकर, श्री योगेन्द्र, डॉ. राजेश्वर आचार्य, डॉ. दामोदर होता, डॉ. वनमाला पर्वतकर

गाय और गुरु के साथ

बछड़े को प्यार करती

पूज्य गुरु पं० ओंकारनाथ ठाकुर के चरणों में

ॐ

गोकुल का आशीर्वाद

{ वध-स्थल पर ले जाये जाते हुए गाय और बेल के बीच संवाद }

{ १ = गाय २ = बैल }

१. आओ बैठो, बात करें कुछ दुख-सुख की, जीने-मरने की।
२. बातों से अब क्या होना है, किसको फुर्सत है सुनने की ? ।।१।।
नक्कारों की धड़-धड़ में औ' आपा-धापी की भगदड़ में।
तूती के-से क्षीण स्वरों को, कौन सुनेगा उठा-पटक में ।।२।।

१. कहते हो तुम ठीक, परन्तु फिर भी, चुप रहने से अच्छा।
मरने से पहले अपना 'जीवन-रहस्य' कह लें हम सच्चा ।।३।।
२. चलो यही अब होने दो, हम-मूकों की भाषा सुनने को
मिलें नरों को नये कान औ' संवेदन के गुर पढ़ने को ।।४।।
१. वैदिक युग की याद करो तो 'जब तुम ब्रह्मज्ञान कहते थे।
सत्यकाम जाबाल-संग, वन-में स्वच्छन्द विचरते थे ।।५।।
२. अरे ! कहाँ की याद दिला दी ! वह सब सपना-सा लगता है।
फिर क्या लौट सकेंगे वे दिन ! दुख का अन्त नहीं दिखता है ।।६।
१. माना, लौट नहीं सकते दिन, कालचक्र आगे चलता है।
फिर भी आस्था की धरती का सूरज कभी नहीं ढलता है ।।७।।
२. क्या कहती हो ? आस्था के अब दिन लद चुके, न कुछ कहना ही। उत्तम है, उसकी बातों का मन ही के मन में रहना ही ।।८।।

१. फिर भी याद नहीं मिटती है, 'जाति-स्मृति' पेंगे भरती है ।
कुछ भी कर लो, आस्थाओं की गहरी जड़ें नहीं मरती हैं ।।९।।

२. तो फिर चलों, जड़ों को सींचों शायद दिन कुछ फिर ही जाएँ ।
भूली भटकी भाव-बदरियाँ जनमानस में घिर ही आएँ ।।१०।।

१. वेदों से कुछ आगे बढ़कर [२]नाट्यशास्त्र की बात करें हम
प्रेक्षागृह में हम लोगों के प्रथम वास की याद करें हम ।।११।।

२. हाँ, वह तो 'अदृष्ट'[३] कथा है उस को भला कौन समझेगा ?
आज 'दुष्ट' का युग है भद्रे ! वह सब कोई क्यों समझेगा ?।।१२।।

१. हाँ, 'अदृष्ट' तो 'गोष्ठी'[४] के भी नामकरण में छिपा हुआ है ।
'दृष्टादृष्टों' की जोड़ी में युग का चिन्तन भरा हुआ है ।।१३।।

२. छोड़ो, 'दृष्ट' पकड़ कर ही हम अद्यतनों से बात करें कुछ ।
जो भाषा वे समझें, उसके वर्णों की पहचान करें कुछ ।।१४।।

१. अच्छा, लो, कृषि से हम सबका योगदान किसको भूला है ?
गोबर हम-तुम दोनों का, औ' हल तुम पर ही नित झूला है ।।१५।।

२. हल औ' हलधर तो चुनाव-चिन्हों में शोभा पाता है ।
धरती जोते 'ट्रैक्टर' तो ही 'सभ्य' जनों के मन भाता है ।।१६।।

१. ट्रैक्टर को जो खाद्य चाहिए उसकी तो निश्चित सीमा है । वहाँ कहाँ
'मण्डलमय' गति[५] जो जीवन की सच्ची महिमा है ।।१७।।

२. सीमा की तो कौन कहे ? तत्काल काम चल जाने दो अब । मांस
हमारा निर्यातित कर 'तेल' करें आयातित, लो सब ।।१८।।

१. बलिहारी इस मति की, जिसके जीवन के प्रति नेत्र मुँदे हैं ।
मण्डलमय गति भूली जिसको, तम से जिसके मार्ग रूँधे हैं ।।१९।।

२. जीवन की अवगणना ही तो सब दोषों की जड़ में दिखती ।

उससे तरू में 'काष्ठ-राशि' और 'मांस-राशि' हम-तुम में दिखती ।।२०।

१. सच कहते हो, वृक्ष-लता भी हम-तुम-सम काटे जाते हैं ।
दोनों से पैसे जो मिलते, आपस में बाँटे जाते हैं ।।२१।।

२. पैसा ही क्या चरम 'अर्थ'[६] है ? हा ! यह कैसी विडम्बना है !
पशु औ' तरू तो मानव के चिरसङ्गी, नहिं नवीन घटना है ।।२२।।

१. लगता है यन्त्रों के मद में मानव 'अर्थ' भुला बैठा है ।
जो 'साधन' है, 'साध्य' उसे कह सब सन्तुलन गँवा बैठा है ।।२३।।

२. नर-बल पशुबल का सहचर बनकर ही यन्त्र सही चलता है,
है इतिहास सभ्यता का यह इसमें सबका हित पलता है ।।२४।।

१. आज इसी को तोड़ चला नर जीवन-विमुख खड़ा होने को ।
नर-केन्द्रित यह नई व्यवस्था विष का बीज चली बोने को ।।२५।।

२. यह विष केवल हम-तुम को ही, नहिं, नर को भी ले डूबेगा ।
[७]रक्तबीज के सदृश यही नित-नये अनर्थों को सिरजेगा ।।२६।।

१. क्या कोई भी तरणोपाय न आज बचा है इस विनाश से ?
देर हो चुकी बहुत, पर कहो, कैसे छूटे नर कुपाश से ? ।।२७।।

२. बहुत कठिन है, ठहरो लेकिन बात अभी रह गई अधूरी ।
यन्त्र-सभ्यता की विनाश-लीला की कथा हुई नहिं पूरी ।।२८।।

१. अच्छा ! अब तुम मुखर हो उठे, पहले तो कुछ कतराये थे ।
मुझे बड़ा सुख इसमें भैया ! कब-से तुम सहते आये थे ।।२९।।

२. तुमने जब से छेड़ दिया है, तब से सत्य कथा कहने को ।
मचल उठा है जी, सब कुछ ही लाग-लपेट बिना कहने को ।।३०।।

१. यह शुभ है, हम दया न माँगें, पर मनुष्य को उसका ही हित
कह डालें, फिर जो चाहे सो करें, रहें हम सदा सत्य रत ।।३१।।

२. हम दोनों की बातें सचमुच नर के ही हित कही गई हैं ।
उसके और हमारे हित में कुछ भी तो टकराव नहीं है ।।३२।।

१. चलों, आज के ही युग का इतिहास बन्धु तुम कह डालो ।
भारत में कितना वचनभङ्ग है घटित हुआ, तब कह डालो ।।३३।।

२. पहले कुछ इतिहास पुरातन कह लूँ तब फिर अधुना की ।
बात करेंगे हम-तुम मिलकर वचनभङ्ग की घटना की ।।३४।।

१. चलो बढ़ो फिर आगे, सुन लूँ, क्या कहने को शेष रह गया ?
दुर्गति की लम्बी यात्रा में कौन पड़ाव विशेष रह गया ? ।।३५।।

२. हम तुम थे अवध्य घोषित, कुछ मुस्लिम युग में हुआ प्रहार ।
उसका सिक्खों ने डटकर प्रतिकार किया था, सत बल धार ।।३६।।

१. सभी प्रहारों के विरोध में सिक्खों का उज्ज्वल बलिदान ।
भूल नहीं सकते हम-तुम गुरू-गोविन्द सिंह का यशोगान ।।३७।।

२. सच है पर भूले अकबर को, जिसका निकला था फरमान ।
हमें अवध्य पुनः घोषित कर जिसने पाया था बहुमान ।।३८।।

१. याद करो फिर अंग्रेजों के, शासन में नव-तन्त्र चला था ।
हिन्दू-मुस्लिम को बिलगाने का नवीन षड्यन्त्र चला था ।।३९।।

२. उस कुचक्र में सच हम लोगों का शोषण भरपूर हुआ था ।
हमें बनाकर मुहरा, अंग्रेजों ने अपना काम किया था ।।४०।।

१. लोकमान्य था तिलक कि जिसने अँग्रेजों को था ललकारा ।
'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार' दिया, उसने यह नारा ।।४१।।

२. 'स्वराज्य होते ही गोहत्या पाँच मिनट में बन्द करेंगे ।'
ऐसा भी वह कहता था, हा ! कैसे उसको भूल सकेंगे ? ।।४२।।

१. उसके बाद महात्मा गांधी क्या कहते थे—याद किसे हैं ?

'गोहत्या मेरी हत्या है'-चिन्ता उसकी आज किसे है ? ।।४३।।

२. स्वामी करपात्री जी औ' प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने भी ।
कितने सत्याग्रह-उपवासों की शृङ्खला महान् बना दी ।।४४।।

१. सन्त विनोबा भी आखिर में सब कुछ तज गोरक्षा के ही ।
व्रती बने थे, पर उन को तो 'भारतरत्न' बना करके ही ।।४५।।

२. शासन ने दे दी तिलाञ्जलिः कभी 'धर्म' तो कभी 'अर्थ' की
आड़ लिया करते शासकजन शङ्कायें बस उठा व्यर्थ की ।।४६।।

१. देवनार[८]-सत्याग्रह अब भी सतत चला करता है, देखो ।
'गो-गीता-पदयात्रा' कितनी निकली हैं–इनको भी देखो ।।४७।।

२. कहीं किसी की पूछ नही है जिनके हाथों में अधिकार ।
उनको केवल 'अर्थ' सूझता, अल्पदृष्टि कैसी दुर्वार ।।४८।।

१. चलो, अर्थ को ही समझे हम, ऊर्जा और उर्वरक लेकर ।
इन दोनों में गो-कुल द्वारा जो कुछ सम्भव उसे कूत कर ।।४९।।

२. अधुना अर्थ-व्यस्था में तो पूँजी की ही है भरमार ।
उसमें जो पूँजी विदेश की, उसकी तो नित-नई बहार ।।५०।।

१. कीटनाशकों-उर्वरकों के रसायनों के बृहदुद्योग ।
अरबो-खरबों की पूँजी से चलते, उनका जो उपयोग ।।५१।।

२. आज हो रहा, वह जीवन का महावधिक है, यह मत भूलो ।
त्वरित लाभ की मृगमरीचिका, उसके धोखे में मत फूलो ।।५२।।

१. सच कहती हो, धीमी गति से ये सब हरते जीवन-सार ।
दुर्घटना हो जाए-तब तो करते अमित जीव-संहार ।।५३।।

२. गोबर-मूत्र हमारे उर्वरकारी, कीट-विनाशक भी हैं ।
धरती को देते नवजीवन दोषरहित, गुणधारक भी हैं ।।५४।।

१. इतना ही नहिं, विकिरण को भी रोक सके वह शक्ति भरी है ।
हम लोगों के गोबर में औ, श्वासक्रिया में, बात खरी है ।।५५।।

२. यह सब तो है ठीक, किन्तु यह पूँजी का जो निकृष्ट वैभव ।
उसके चलते गुण-दोषों की विवेचना बन गई असम्भव ।।५६।।

१. सार यही सब तो निकला अब, हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न नहीं है ।
पूँजी औ' श्रमजीवन के बिच किसे चुने ? बस प्रश्न यही है ।।५७।।

२. यह विश्लेषण सच्चा है, पर कौन इसे देखे-समझेगा ?
सब ने पूँजी का मद चाखा, कौन इसे परखे-समझेगा ? ।।५८।।

१. तुमने ही तो कहा कि मरने से पहले सब कुछ कहना है ।
फिर क्यों घोर निराशा के स्वर ? हमें अविचलित ही रहना है ।५९

२. ठीक कहा तुमने, हमको तो सत्य बात कह जाना है ।
कुछ भी करे मनुष्य हमें तो सत्पथ पर ही जाना है ।।६०।।

१. तब तो, बातें बची-खुची जो उनको भी कह डालें हम ।
हम लोगों पर बीता जो अन्याय उसे कह डालें हम ।।६१।।

२. याद मुझे आता हम लोगों के खाद्यों का निर्यात ।
जिससे हमें पालना दूभर, यह कैसा अति-मार्मिक घात? ।।६२।।

१. कानून बने जो गोरक्षा-हित उनमें छिद्र भरे कितने ?
उन छिद्रों की आड़ ले रहे मनुज छल-भरे हैं कितने ? ।।६३।।

२. गाय 'दूध का यन्त्र' नहीं है, उसकी सत्ता है व्यापक ।
उसे यन्त्र समझो मत मानव ! यह चिन्तन जीवन-घातक ।।६४।।

१. यह तो है ही, फिर हम लोगों की नस्लों का किया विनाश ।
नस्ल विदेशी बढ़िया मानी यह भी कैसा सत्यानाश ।।६५।।

२. यदि विदेश की नस्ल बड़ी है, धरा यहाँ की यदि घटिया है ।

तब तो मनुजों को विदेश की नस्ल मिले-यह भी बढ़िया है ।।६६।।

१. सच कहती हो किन्तु आज भी मनुज कहाँ इस धरती का है ?
चिन्तन-भावन सब कुछ उसका बाहर की ही धरती का है ।।६७।।

२. बाहर की धरती में भी तो टॉलस्टॉय रस्किन जैसे ।
उपजे जीवन-रसिक कि जिनकी सुध भी नहीं हमें, कैसे ? ।।६८।।

१. स्वातन्त्र्योत्तर-काल बली है, जिसमें यह सब कुछ निपजा है ।
जो विदेश के शासन में हो सका न, वह सब अब उपजा है ।।६९।।

२. चिन्तन का दासत्व सुनो प्रत्यक्ष गुलामी से बढ़कर है ।
उसका ही परिणाम बोलता 'सभ्य'-जनों के सिर चढ़कर है ।।७०।।

१. इसीलिये गोधन की चिन्ता दकियानूसीपन कहलाती ।
'बाघ-शेर-सूअर की चिन्ता 'जीवदया' का दर्जा पाती ।।७१।।

२. क्यों भूले हो-हम 'बहुसंख्यक', 'अल्पसंख्यकों को लेकर ।
हमें भूलना ही 'फैशन' है, इसे त्याग दें जन क्योंकर ? ।।७२।।

१. उतरन-चिन्तन से उबरें जब शासक, नेता, बुद्धिधनी ।
तब कुछ बिगड़ी बात बनेगी । पनपेगी न कुमति इतनी ।।७३।।

२. तब यह भी मति उपज सकेगी किस प्रकार नव-तकनीकों से
निर्मल यन्त्र-व्यवस्था सम्भव, मेल रखे जो हम-जैसों से ।।७४।।

१. छोड़ो, किन्तु कहीं तो शायद कुछ भारत का सत्त्व बचा हो ।
उसे हमारी बात समर्पित जिसको जीवन-तत्त्व पचा हो ।।७५।।

२. जय बोलें हम समग्र जीवन की ! शुभ-सुन्दर-चिन्मय की !
जिसके साथ सदा पनपी है अभिन्नता शुचि मृण्मय की ।।७६।।

१. चलो कह लिया जो कहना था, अब हममें दुख-लेश नहीं है ।
मरना तो है ही, पर अब कुछ कह देने को शेष नहीं है ।।७७।।

२. चिन्ता है बस एक किं यदि हम नष्ट हुए तो नर-समुदाय ।
नष्ट हो रहेगा, यह निश्चित उसका कहीं न तरणोपाय ।।७८।।

१. स्थूल ही नहीं, सूक्ष्म नाश की बात कही है, यह समझे तो ।
शायद उपजे बुद्धि कि जिससे जीवन-मर्म कहीं समझे वो ।।७९।।

२. एक बात अन्तिम कहता हूँ मानव ! तुम तो मतवाले हो ।
घोर प्रकृति-दोहक बनकर तुम हाय ! भयङ्कर मद पाले हो ।।८०।।

१. शाप नहीं देते हम, नर ! तुम स्वयं सत्य को भजो परख कर ।
हम तो नित्य असीसेंगे ही तुमको मनु का पुत्र समझ कर ।।८१।।

टिप्पणियाँ

---

१. छान्दोग्य उपनिषद् (४/४-५) में उल्लेख है कि सत्यकाम जाबाल को गुरू-आचार्य ने चार सौ गायों के साथ वन भेज दिया था, और कहा था कि ये एक सहस्र हो जाय, तब यहाँ लौटना । जब वे एक सहस्र हो गयीं, तब एक बैल ने ही सत्यकाम को बताया, और ब्रह्मोपदेश भी दिया ।

२. सर्वलक्षणसम्पन्ने कृते नाट्यगृहे शुभे । गावो वसेयुः सप्ताहं सह जप्यपरैः द्विजैः ।। (ना०शा ३/१) कहा गया है कि नाट्यगृह (सभी सुलक्षणों से युक्त, विधान के अनुसार) बन जाने पर उसमें सबसे पहले एक सप्ताह तक गायें निवास करें, उनके साथ गायत्री-जप करते हुए ब्राह्मण वहाँ रहें । इस प्रकार गायों के श्वास व गोबर आदि से वह स्थान बाह्य रूप से शुद्ध होगा, एवं गायें निश्चिन्त भाव में बैठेंगी–सुख से रहेंगी, तब ब्राह्मणों द्वारा गायत्री-जप व घोष होता रहेगा एवं शुद्ध चिन्तनमय जीवन जिया जायेगा–तो उस स्थान के वायुमण्डल में शुद्ध स्पन्दन बने रहेंगे । इस प्रकार उस भवन एवं भूमि की अन्तर्बाह्य शुद्धि होने पर ही वह स्थान कलाकार्य के योग्य बनेगा ।

३. भारतीय चिन्तनधारा में प्रत्येक कर्म के दो स्तरों के फल उत्पन्न होना देखा गया है । **१. दृष्ट**–जो स्थूल रूप से दिखाई देता है–जैसे गायों के श्वास-

गोबर-मूत्र आदि से वातावरण की शुद्धि (कीटाणु-रहित होना, आणविक-दूषण से रहित होना, त्वचा मुलायम एवं नीरोग होना इत्यादि) २. **अदृष्ट**–फल वह है जो सूक्ष्म है, बाहरी इन्द्रियों को दिखाई नहीं देता, तुरन्त पकड़ में नहीं आता, और कब, कैसे, कहाँ वह फलेगा–इसका कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता। किन्तु किसी न किसी रूप में वह फल मिलता अवश्य है, उसे स्थूल भाषा में 'पुण्य' या 'पाप'–रूप से कहा गया। यों भी–जिस धरती पर अच्छे कार्य होते रहे हों वहाँ बाद में भी रहने वालों को सुख-अनुभव होता है, चित्त प्रसन्न रहता है, अच्छे विचार आते हैं, और जहाँ क्रूर-व हिंसक घटनायें होती रही हों वहाँ वातावरण में बेचैनी, दुःख, क्रूरता-भरे स्पन्दन तैरते हैं यह अनुभवसिद्ध है।

४. **'गोष्ठी'** शब्द का भी अर्थ है वह स्थान जहाँ पर गायें बैठती हों। प्राचीन-काल में ऋषि-मुनि एवं चिन्तक-मनीषी जन चिन्तन एवं चर्चा के लिये, ग्रन्थ-प्रणयन के लिये वह स्थान चुन कर बैठते थे जहाँ पर वन में विचरति गायें स्वाभाविक रूप से आकर बैठती-विश्राम करती–आराम से उठती-बैठती-जुगाली करती रही हों। उसी स्थान पर चिन्तन करने से, प्रश्नोत्तर व चर्चा-विचारणा करने से बुद्धि सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों तक कार्य करने या पहुँचने में समर्थ बनेगी ऐसा अनुभव था। ऐसे सूक्ष्म-चिन्तन के लिये होने वाली बैठकों को ही 'गोष्ठी' कहा गया था।

५. **मण्डलमय गति**–बीज से वृक्ष, वृक्ष से पुनः बीज उत्पन्न होने के समान चक्र चलना। गोवंश के रूप में (बहुत स्थूल दृष्टि से भी देखें तो) ऊर्जा की मण्डलमय गति बनी रह सकती है–आगे-आगे बछड़े-बछिया-गाय-बैल पैदा होते रहने से उनके गोबर -मूत्र आदि से खाद व इंधन, दूध से पोषण, बैलों द्वारा खेती और भार-वाहन आदि का अक्षय क्रम चलता रह सकता है।

६. **अर्थ**–इस शब्द का पहला अर्थ है चाहने योग्य या चाही गयी वस्तु, या वह वस्तु जिससे कामना पूरी होती हो, आवश्यकता की पूर्ति होती हो। उसका एक साधन या माध्यम होने के नाते ही 'धन' को 'अर्थ' कहा गया। धन भी केवल 'पैसा' नहीं,–'जीवन का उपाय' धन शब्द का अर्थ है। सम्यक् व

स्वस्थ मानव जीवन के लिये सबसे पहला उपाय गायों का दूध व गोबर-मूत्रादि तथा बैल आदि को समझा गया–इसीलिये धन का पहला पर्याय 'गोधन' हुआ था, समृद्धि की गणना या माप की इकाई गोधन ही बना था।

७. **रक्तबीज**–'दुर्गासप्तशती' में आये एक असुर का नाम–जिसकी गर्दन या कोई अङ्ग काटने पर जितने रक्तबिन्दु धरती पर गिरते थे उतने ही नये असुर (उसी पहले के समान बलशाली) पैदा हो जाते थे। उनको भी काटने पर फिर उनके रक्त की बूँदों से और-और उतने वैसे ही राक्षस पैदा होते जाते थे। रक्त का कण ही मानो बीज बन जाता था। इसी दृष्टान्त को लेकर एक से असंख्य की उत्पत्ति में 'रक्तबीज' की उपमा दी जाती है।

८. **देवनार-सत्याग्रह**–बम्बई के निकट 'देवनार' नामक स्थान पर–जहाँ बड़े पैमाने पर बैलों के वध का कत्लखाना है (बहुत बड़ी संख्या में प्रतिदिन वहाँ बैलों का वध हो रहा है) वहाँ–सन्त विनोबाजी ने ११ जनवरी १९८२ से सतत सत्याग्रह (वध रोकने के लिये) आरम्भ कराया था। महाराष्ट्र-गुजरात एवं देशभर से गोरक्षा-कार्यरत सर्वोदय-सेवकों का वहाँ जाना एवं क्रमिक श्रृंखला में सत्याग्रह अब तक सतत चल रहा है, पर उसकी कोई परवाह शासनतन्त्र को नहीं रही है।

९. बाघ-शेर जंगली सूअर आदि वन्य पशुओं की तथा व्हेल आदि समुद्री प्राणियों की सुरक्षा के लिये 'जीवदया' के नाम से बड़े समारम्भ से प्रयत्न हो रहे हैं, वह भी होने ही चाहिये इसमें सन्देह नहीं किन्तु उसके साथ ही उस राशि का दसवाँ-बीसवाँ भाग भी यदि गोवंश की रक्षा गाय-बैलों की उत्तम भारतीय नस्लों की सुरक्षा के लिये व्यय हो तो मनुष्य जाति के लिये बहुत उपकारी होगा।

निवेदन

काव्य नहीं यह, बारह वर्षों का मन्थन है उफन चला।
घुटन भरी थी जो अन्तस् में उसका लावा बह निकला ।।
समानधर्मा होंगे जो भी, उनको यह रूचिकर होगा ही।

उदासीन जन को शायद कुछ विचलित कर डाले अब भी ।।
सत्याग्रह आत्मीयों के हित ये बरसे हैं शोले ।
उनकी दीर्घ तपस्या अब तो फल लाये, मधुरस घोले ।।
शासन को है स्मरण दिलाना वादे पूरे करने का ।
बिना कठोर सत्य को पाले, यह कलङ्क नहिं मिटने का ।।
बरस अठारह तक गोसेवा का प्रसाद छक-छक पा कर ।
मेरा अन्तस् भीग उठा है गौ की करूणा को छू कर ।।
भीगे अन्तस् की वाणीः यह मरूओं का सिञ्चन कर दे ।
संस्कृति के चिन्तक-भावक जन के मानसघन को भर दे ।।
कुमति दूर हो, भावजगत् में सुमति-समीर सदा सरसे ।
सूखी बंजर धरती में भी गौ की करूणा नित बरसे ।।

'आम्नाय' निवेदिका
२०९/१, नन्दनगर के पास, करौंदी प्रेमलता शर्मा
वाराणसी–२२१ ००५

यह कविता एवं संस्कृत पद्य 'जीवन परिमल' त्रैमासिकी के १९९० के अंक में छपे थे उससे सादर उद्धृत ।

●

भारतीय चिंतनमें जीवनमें भौतिकताको इतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना सद्विचार को ! गायत्री मंत्रमें हमने 'धन' 'संपत्ति' की याचना नहीं की, केवल सद्बुद्धि मांगी । गौ, गंगा एवं गायत्री तीनों जीवन की निर्मलता के प्रतीक है ।

परिशिष्ट–७

प्रो० प्रेमलता शर्मा की हिन्दी हस्तलिपि

मालविका की चतुष्पदी

दुल्लहो पिओ मे,
तस्सिं भव हिअअ णिरासं।
(दुर्लभः प्रियो मे - तस्मिन् भव
हृदय निराशम्)।
अम्हो अवांगो मे,
परिप्फुरइ किंवि, वामओ॥
(अहो अपाङ्गो मे,
परिस्फुरति किमपि वामकः॥)
एसो चिरदिट्ठो,
कहं उवणइदव्वो॥
(एष चिरदृष्टः,
कथं उपनेतव्यः॥)
णाह मां पराहीणं,
तुइ गणअ सतिण्हम॥
(नाथ!, मां पराधीनां,
त्वयि गणय सतृष्णाम्)

परिशिष्ट-७

प्रो० प्रेमलता शर्मा की अंग्रेजी हस्तलिपि

(3)

The 'Svatā' or Autonomy of 'Svara' According to Abhinavagupta

Prem Lata Sharma

The word swara stands both, for vowel in language and ~~musical~~ 'note' or tone in music. In language, vowel 'shines forth' or manifests by itself (swayaṁ), whereas vyañjana (consonant) inevitably needs the support of vowel. (vide Mahabhasya)

This word is split as 'swa' and 'ra'; 'swa' standing for self-sufficiency and 'ra' for rājate (shines forth or manifests) ~~and~~ in language; and rañjayati ~~in~~ (delights) in music.

परिशिष्ट -८

प्रो० प्रेमलता शर्माजी की जन्म कुण्डली

बहनजी के संपूर्ण व्यक्तित्व तथा कृतित्व का वर्णन पढ़ने के पश्चात् ज्योतिष की दृष्टि से भी बहनजी के ग्रह आदि के विषय में किसी किसी पाठक को अवश्य जिज्ञासा रह जायगी। उनकी संतुष्टि हेतु तथा फलित ज्योतिष के अभ्यासार्थियों के लिए डॉ० उर्मिला शर्मा द्वारा दी गई बहनजी की कुण्डली नीचे दे रही हूँ।

नाम-प्रेमलता शर्मा

जन्म तारीख-१० मई १९२९

जन्म स्थान-नकोदर,

जिला-जालंधर, पंजाब

अथ लग्नचक्रम्

अथ राशिचक्रम्

परिशिष्ट –९
मेरी बहनजी

प्रो० प्रदीप कुमार दीक्षित

७ जुलाई १९५४ को, पू० पापाजी (संगीत मार्तंड पं० ओम्कारनाथजी ठाकुर) के साथ, जब वाराणसी मोटरकार द्वारा पहुँचा तो उनके विश्वविद्यालयीय निवास स्थान पर उसी दिन (प्रो०) प्रेमलता शर्माजी पू० गुरुजी से मिलने आईं और पापाजी ने उनसे मेरा परिचय करवाते हुए कहा, "प्रदीप ! यह तुम्हारी बहनजी है–दीदी है–नमस्कार करो ।" उनकी ओर देखकर कहा, "प्रेम ! यह तुम्हारा छोटा भाई है–उसका सब तरह से ख्याल रखना ।" तब से ५ दिसंबर १९९८ (आ० प्रेम बहनजी की मृत्युकी तारीख) तक ४४ वर्ष यह सम्बन्ध बना रहा ।

मैं सूरत से हाईस्कूल उत्तीर्ण करके आया था तथा आगे संगीत और अन्य शिक्षा इसी विश्वमान्य विश्वविद्यालय में पू० पापाजी के साथ रहते हुए प्राप्त करनी थी । यह सोचा गया कि यू०पी० बोर्ड की, इन्टरमिडियेट परीक्षा 'व्यक्तिगतरूप' से (Privately) उत्तीर्ण करने के बाद बी०ए० विश्वविद्यालय में दाखिला लेकर किया जाए । 'श्री कला संगीत भारती' में द्वितीय वर्ष 'गायन में मैंने दाखिला पाया और उस समय इन्टरमिडियट में संगीत के उपरान्त कौन से विषय लिये जाए ? क्या पढ़ना है ? कैसे पढ़ना है ? किससे पढ़ना है तथा परीक्षा के लिये किस प्रकार अपने को तैय्यार और सक्षम करना है ? उन सब बातों में मुझे आ० बहनजी का मार्गदर्शन तथा सब प्रकारका सहयोग प्राप्त हुआ । उनके निर्देश से मैं इन्टरमिडियट परीक्षा अच्छी तरह उत्तीर्ण हो गया ।

एक ओर आर्टस कालेज में बी० ए० में दाखिला मिल गया तथा दूसरी ओर संगीत संकाय में 'सिनियर डिप्लोमा' में दाखिला हो गया। संगीत संकाय में प्रायोगिक पक्षकी कक्षाएं आ- मामाजी (पं० बलवन्तराय भट्ट 'भावरंग') तथा आ० कनकभाई लेते थे तथा सैद्धान्तिक (Theory) की कक्षाएँ आ० प्रेमबहिनजी लेती थीं। यह क्रम १९६१ तक मेरे एम०म्यूज० अन्तिम वर्ष पूरा करने तक चलता रहा। वोही स्नेह, वोही आत्मीयता, वोही पथ-प्रदर्शिकाकी महत्त्वपूर्ण भूमिका बहनजीने निभाई।

हमदोनों के 'चीनी-प्रेम' का एक उदाहरण का उल्लेख आवश्यक है। २ अक्टूबर १९५५ को, गांधी जयन्ती के अवसर पर, पू० पापाजी का काबुल (अफघानिस्तान) जाना हुआ। बंगले पर, रह गये बहनजी और मैं और कुछ नौकर। एक दिन शामको 'शाही टोस्ट' (चासनी में डुबोई हुई मलाईदार डबलरोटी) बना। उसे किसके साथ खाया जाए ? दूध साथ में 'मीठा' रहे या 'फीका' ? बहनजी के पूछने पर मैंने कहा, 'फीका दूध भी कोई दूध होता है ?' अन्त में 'शाहीटोस्ट' मीठे दूधके साथ खाया गया। ऐसा था हमदोनों का 'चीनी प्रेम'। इतनी व्यस्तताओं में, अध्ययन के साथ बहनजी की खाना बनाने की रुचि शौक-कौशल यथावत् बना रहा। खाने की शौकीन-खिलाने की शौकीन थी हमारी बहनजी। 'स्वयं अपने हाथों से बनाये' व्यंजनों की बात ही कुछ और होती थी। विभाग की संगोष्ठियों में आये सभी अतिथियों को कम से कम एकबार घर पर निमंत्रित करके स्वयं अपने हाथों से अपने बनाये हुए व्यंजन खिलाने में बहनजीको विशेष आनन्द आता था।

समय का चक्र चलता रहा। आ० बहनजी प्रवक्ता, फिर 'रीडर' फिर 'प्रोफेसर' बनीं और फिर ईन्दीरा कला संगीत विश्वविद्यालय (खैरागढ) में 'वाइस चान्सलर' भी बनीं और निवृत्ति के बाद केन्द्रीय संगीतनाटक अकादमी की उपाध्यक्षा भी बनीं। सम्बन्ध वोही सरलता सभर,

आत्मीयतापूर्ण और निश्छल बने रहें । विद्वत्ता, ज्ञान, अनुभव बढ़ता रहा-बढ़ता गया । स्वभाव की सरसता-सरलता बनी रही ।

१९६१ से १९६४ के दौरान मैंने तत्कालीन प्राचार्य महोदय प्रो० बी०आर० देवधरजी के निर्देशनमें, डी० म्यूज० (Doctorate in Music) किया तब भी मेरे लघु शोध-प्रबन्ध, 'नायक नायिका भेद और राग-रागिणी का तुलनात्मक अध्ययन' को प्रस्तुत करने में बहनजी ने महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया तथा बाद में, इसको ग्रंथ के रूपमें प्रकाशित करने के समय भी पर्याप्त सहायता प्रदान की थी ।

किसी भी कक्षा के किसी भी छात्र-छात्राको शास्त्राध्ययन में रुचिकर ढंग से पढ़ानेका, मार्गदर्शन देनेका बहनजी को बहुत अच्छा लगता था । विभिन्न प्रकारकी शैक्षणिक, कार्यालय विषयक तथा अन्य प्रकारकी व्यस्तताओं के साथ पढ़ाना उनका पहला शौक था । निवृत्ति के बाद भी मुझे याद नहीं कि, कोई भी शोधार्थी, देशी-विदेशी किसी भी छात्र-छात्रा ने बहनजी से मदद मांगी हो और उन्होंने मना किया हो । सदैव तत्पर-सभी के लिये सहज उपलब्ध ।

अपनी विद्वत्ता के लिये, अपनी कर्त्तव्यपरायणता के लिये, अपनी छात्र-वत्सलता के लिये तो बहनजी सदैव सम्मानपूर्वक याद की जाएंगी किन्तु, मानवीय गुण भी प्रचुर मात्रा में थे ।

जैसे परिपक्व फलोंसे लदा वृक्ष झुकता जाता है ऊसी प्रकार जैसे-जैसे नितनई उपलब्धि होती गई, आ० बहनजी के ज्ञान में वृद्धि होती गई, उनकी सोचमें परिपक्वता आती गई वैसे वैसे बहनजी का सहज विनयशील स्वभाव अधिकाधिक विनयशील होता चला गया ।

कई बार तो आश्चर्य होता था कि बहनजी सदृश वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध, किसी बात को निर्णयात्मक रूपसे क्यों नहीं कहतीं ? उनके द्वारा अधिकारपूर्ण ढंग से कही बात का कितना अधिक प्रभाव, कितना

व्यापक प्रभाव, कितना गहन प्रभाव हो सकता था । यह बात अच्छी तरह से जानते-समझते हुए भी कई बार निर्णयात्मक रूप से, उनके द्वारा सोची समझी दृढ मंतव्य पर पहुँच चुकी हों ऐसी बात के लिये भी मौन रह जाती थीं या कहती भी तो आग्रह नहीं रखती थीं । कई भ्रान्तियाँ संगीत सम्बन्धी विषयों के बारे में आधे-अधूरे लेखकों की अधकचरी बातों द्वारा फैली हुई है । यदि बहनजी सदृश विदुषी महिला ने अपना संकोची स्वभाव छोड़कर संगीतके हितमें ही बिना किसी पर आक्षेप या दोषारोपण किये कुछ ठोस बातें निर्णयात्मक रूप से कही होती, लिखी होती, तो मेरी रायमें संगीत जगत् पर यह उनका बहुत बड़ा उपकार होता । जिन्हें सोच-समझकर लिखना चाहिए वे कुछ भी बोलते-लिखते चले जाएं और बहनजी सदृश अधिकारी विदुषी चुप्पी साध लें तो तो आश्चर्य होगा ही ।

बहुत सारे, विविध प्रकारके कार्य बहनजी अपने जिम्मे ले चुकी थीं । दूसरे शब्दों में इतने सारे विविध विषयों पर अधिकार रखती थीं कि सभी बहनजी पर अपना-अपना अधिकार समझते थे । उनसे परामर्श, सहयोग, सक्रिय सहयोग की अपेक्षा रखते थे और बहनजी सबको पूरा पूरा न्याय करने का समय निकाल ही लेती थी । सबकी शंकाओं का यथा सम्भव समाधान-निराकरण कर ही लेती थीं । उनकी विविध विषयों की पकड़, अनवरत कार्य करते रहने की क्षमता और प्राचीनों के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुए भी वर्तमान संदर्भ में उनका पुनः अवलोकन करने को कटिबद्ध रहने की तैयारी ही उनकी स्वभावगत विशेषता थी ।

कुछ लोगों को किसी खास पदार्थ का व्यसन होता है । बहनजी को 'क़ार्य करते रहने' का व्यसन था (workoholic) 'कई बार स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए कार्य करती रहीं-करती गईं ।

बहनजीके विविध प्रकार के कार्यकलापों की एक झलक इस प्रकार

है । पढ़ना-पढ़ाना, अन्यान्य विषयों पर लिखना (पुस्तक-लेख) अनुवाद करना, अनेकानेक विषयों की नई-पुरानी कई पुस्तकों का टिप्पणी सहित संकलन, अनेकविध विषयों पर राष्ट्रीय तथा अन्ताराष्ट्रिय स्तर की विचार गोष्ठियाँ आयोजित करना, संस्कृत नाट्य-परम्परा का पुनरुद्धार, उसमें वर्णित 'पूर्वरंग' की पुनःप्रतिष्ठा, विध-विध संस्कृत-हिन्दी पदों की रचना तथा उनकी स्वर संयोजना, गण्य-मान्य कवियों के संस्कृत-हिन्दी पदों को संगीतबद्ध करना, उनका मंचन करवाना, गोसेवा, जरूरतमंद छात्राओं की मदद करते हुए उन्हें सही शिक्षण-संस्थाओं में भेजकर शिक्षा-व्यवस्था करना, कई बार विभिन्न कारणों से सरकारी-गैर सरकारी कार्यों से विदेश यात्राएं, देश में भी विभिन्न कार्यों से उत्तर से दक्षिण-पूरब से पश्चिम की अनेक यात्राएं ! आखिर शरीर कितना सहन कर पाएगा ?

वैसे प्रेमबहिनजी लम्बी-चौड़ी भारी-भरकम शरीर वाली, गेहुँए रंग की तंदुरस्त महिला थी । बढ़ती जाती वय तथा क्षीण होते जाते शरीर तथा हृदयरोग के हमलेने बहनजी को शरीर से भले ही कमजोर किया हो (किया अवश्य था) किन्तु जीवन के अन्तिम क्षण तक मनसे पूर्ण रूपेण स्वस्थ थीं । बौद्धिक शक्तियाँ, स्मरण शक्ति, अन्तिम समय तक अक्षुण्ण बनी रही ।

भले ही कोई पुरस्कार विशेष ('पद्मश्री' आदि) से बहनजी को सम्मानित नहीं किया गया । भलेही उनकी विद्त्ता का कोई प्रचार-प्रसार न हुआ हो । भलेही उनकी अद्वितीय प्रतिभा व ज्ञान सीमित वर्ग के ध्यान में आयें हों किन्तु, यह निर्विवाद है कि गुणियों में, विद्वानों में सभी बहनजी की प्रभूत प्रतिभा के कायल थे, उनकी विद्वत्ता का लोहा सभी मानते थे । उपलब्धियों से सभी प्रभावित थे । उनकी विपुल ज्ञान-राशि से सभी लाभान्वित होना चाहते थे ।

चवालीस वर्षों के परिचय में, व्यक्ति के अनेक पहलुओं का पता चल जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में खूबियाँ और खामियाँ होती है। बहनजी के व्यक्तित्व के भी अनेक पहलू थे। सभी ज्ञान के पुंज, मानवीय गुणों से सभर, सभी सच्चे और अच्छे पहलुओं से समृद्ध।

भगवान सबको सब कुछ नहीं देता। उनकी कृपा से किसी किसी को विशेष शक्ति मिली होती है। असाधारण प्रतिभा के घनी होते हैं यह लोग। भगवान के विशेष लाडले होते हैं यह लोग। बहनजी उन्हीं विशिष्ट 'कृपापात्र' वर्ग में आती थीं। शारीरिक श्रम करने की क्षमता, मानसिक विशिष्ट प्रकारकी योग्यता, असाधारण स्मरण शक्ति, विविध विषयों के योग्यतम गुरुओं का मिलना, प्राचीनों के प्रति आस्था, नवीनता को परखने पहचानने की-आवश्यकतानुसार स्वयं को बदलने की क्षमता, नवीन प्रयोग करने का उत्साह और सबसे ऊपर 'महामानवोचित मानवीय गुणों का पुंज'।

कल को कुछ लोग आ० बहनजीकी विद्वत्ता की चर्चा करेंगे। कुछ लोग उनके विविध विषयों में निपुणता का स्मरण करेंगे। कुछ लोग उनके लेखों-पुस्तकों से लाभान्वित होंगे। कुछ उनसे सीखे छात्र-छात्राएं अध्यापन-लेखन में जुटकर उनका पुण्य स्मरण करेंगे। किन्तु एक बात ध्रुव सत्य है कि आ० बहनजी के किंचित मात्र संपर्क में आनेवाला व्यक्ति उनके सभी महामानवोचित गुणों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अपना कोई परिवार न होने पर भी सभी की आत्मीय बहनजी, अपनी कोई संतान न होने पर भी छात्र-छात्राओं के विशाल परिवार से समृद्ध बहनजी अपनी विद्वत्ता के कारण, अपनी कर्त्तव्य निष्ठा के कारण, अपने बहुमुखी बहुआयामी लेखन-प्रतिस्थापना के कारण तो याद की ही जाएंगी, किन्तु, मेरी राय में अपने विशिष्ट मानवीय गुणों की बहुलता, समृद्धता तथा सक्षमता के कारण सदैव स्मरण की जाएंगी। यह सच है

कि उनकी 'रजत जयंती', स्वर्ण जयन्ती' या 'हीरक-जयन्ती' नहीं मनाई गई। यह भी सच है कि बहनजी की योग्यता के अनुरूप उनको प्रतिष्ठा नहीं मिली, या बहुत देर से मिली। यह भी सच है कि जिस सम्मान की वह सच्ची अधिकारी थी वह उनको नहीं मिल पाया। फिर भी उनके संपर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनके सहज सरल स्वभाव से उनके आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से, उनकी उदारता से अभिभूत हुए बिना नहीं रह पाया है। उनके दिलों में बहनजी के प्रति स्नेहादर सदैव बना रहेगा।

प्रो० प्रदीप कुमार दीक्षित
निवृत प्रोफेसर, गायन विभाग
का०हि०वि०वि० वाराणसी

●

संगीत में स्थान भेद से, उच्चारण भेद से और गतिभेद से जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें काकु कहते हैं। एक ही स्थान में एक ही स्वर भिन्न भिन्न रूप से उच्चारा जाए, जिससे भिन्न-भिन्न अर्थों की अभिव्यक्ति हो, उसे 'काकु' कहना चाहिए। कभी मन्द, कभी बुलन्द, कभी आघात, कभी कम्प, कभी दोलायमान, कभी स्थिर इत्यादिक स्वरभेद, भावाभिव्यंजना के लिए कंठ में प्रयुक्त हों, वह 'काकु' हैं।

पं० ओम्कारनाथ ठाकुर
'प्रणवभारती' प्रथमसंस्करण पृ० २५९

परिशिष्ट –१०

प्रो० प्रेमलता शर्माजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष को विस्तार से समझने के लिये मैंने उनकी भगिनी, उनके शिष्य-प्रशिष्य, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के प्राध्यापक तथा संगीत नाटक अकादमी की ऑफीसर से भेट की । मैंने उनके संगीत शिक्षक पं० बलवंतराय भट्टजी से भी बात की । नीचे उन महानुभावों के नाम एवं संक्षिप्त परिचय हैं जिनसे मैंने संपर्क किया तथा साक्षात्कार किया ।

१. डॉ० उर्मिला शर्मा : प्रो० प्रेमलताजी की कनिष्ठ भगिनि । आप स्वयं भी संस्कृत की परम विदुषी हैं । परम वैष्णव हैं । आपसे अनेक बार मिलना हुआ । आप से बहनजी के पारिवारिक जीवन के विषय में जानकारी मिली । आपसे अन्य सहायता (हस्ताक्षर, फोटो, कुण्डली आदि) भी मिली ।

२. प्रो० सुभद्रा चौधरी : प्रो० प्रेमलताजी की गुरू बहन, विद्यार्थिनी तथा अत्यंत निकटवर्ती । आप पं० ओम्कारनाथजी की शिष्या हैं । खैरागढ में तथा बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आप संगीत शास्त्र विभाग की अध्यक्ष रह चुकी है । अनेक पुस्तकों की लेखिका हैं । आपसे तीन-चार बार मिलना हुआ जिसमें बहनजी के शिक्षिका रूप, तथा संगीत शास्त्रवेत्ता रूप के संबंध में

जानकारी मिली ।

३. पं० बलवंतराय भट्ट 'भावरंग' - पं० ओम्कारनाथजी के प्रमुख शिष्य । आप प्रेमलताजी के शिक्षक भी रह चुके हैं । बहनजी आपको 'भैयाजी' संबोधित करती थीं तथा अत्यन्त सम्मान देती थीं । आप एक विशिष्ट वाग्गेयकार हैं । का०हि०वि०वि० में गायन के वरिष्ठ आचार्य के पद से निवृत्त हैं । आपसे बहनजी के विद्यार्थी जीवन के विषय में जानकारी मिली ।

४. प्रो० इंद्राणी चक्रवर्ती - बहनजी की विद्यार्थिनी, वर्तमान में, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ में कुलपति । आपके वाराणसी निवास पर आपसे साक्षात्कार किया ।

५. प्रो० राधेश्याम जायसवाल - इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ के संगीत शास्त्र के वरिष्ठ शिक्षक । आपसे बहनजी के खैरागढ़ के कार्यकलाप के बारे में बातचीत हुई ।

६. डॉ० ऋत्विक् सान्याल बहनजी के शिष्य एवं पुत्रसमान । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मंचकला संकाय में गायन विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष । बहनजी के ध्रुवपद उत्थान कार्य की जानकारी आप से प्राप्त हुई ।

७. डॉ० कृष्णकांत शर्मा एवं डॉ० स्वरवंदना शर्मा - वर्तमान में, डॉ० कृष्णकांत शर्मा का०हि० वि०वि० में संस्कृत के वरिष्ठ प्राध्यापक हैं तथा डॉ० स्वरवंदना शर्मा वसंत कन्या महाविद्यालय वाराणसी में गायन की प्राध्यापिका हैं । आप दोनों बहनजी के प्रिय थे । आप दोनों का विवाह बहनजी ने ही करवाया था । बहनजी की नाट्य-प्रवृत्ति के विषय में आपसे बहुत जानकारी मिली ।

८. डॉ० सुधाकर भट्ट - बहनजी के शोधछात्र एवं निकटवर्ती । आपने प्रत्येक हृदयाधात के समय बहनजी को अस्पताल पहुँचाया । अंतिम समय भी आप साथ थे । वर्तमान में का०हि०वि०वि० में सितार के प्रोफेसर हैं ।

९. डॉ० नीरज़ कुमार - बहनजी के शोधछात्र तथा संगीतशास्त्र विभाग में रीसर्च असीस्टेंट के रूप में कार्यरत । आपने बहनजी के कर्मचारियों के साथ व्यवहार के विषय में बताया ।

१०. श्रीमति उषा मलिक - संगीतनाटक अकादमी की सेक्रेटरी थीं तथा बहनजी की स्नेहभाजन थीं । बहनजी के अकादमी के कार्यकलाप के विषय में इनसे जानकारी प्राप्त हुई । आपसे मेरे पति प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित ने नई दिल्ली में साक्षात्कार किया था ।

११. प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित - बहनजी के शोधछात्र (डी०म्यूज की थीसिस के समय) गायन विभाग, का०हि०वि०वि० के निवृत्त प्रोफेसर । बहनजी से चवालीस साल का परिचय । पं० ओम्कारनाथ ठाकुर के स्नेहभाजन, पारिवारिक सदस्य और शिष्य ।

●

अभिनवगुप्त नाट्य की व्याख्या करते हुए बताते है कि "नाट्य लोक के आधार पर किया जाता है फिर भी वह लौकिक नहीं है । नाट्य मिथ्या भी नहीं है, सत्य भी नहीं है । नाट्य अनुकरण, प्रतिबिंब, आलेख, सदृश्यता, आरोप (impose) अध्यवसाय, उत्प्रेक्षा (एक चीज देख के दूसरे की कल्पना करना) स्वप्न, माया, इंद्रजाल आदि कुछ भी नहीं है । नाट्य इन सबसे विलक्षण हैं । नाट्य एक शास्त्र है तथा नाट्य वेद भी है । शास्त्र है इसलिये नट (प्रयोगकर्ता) का शासन करता है तथा वेद होने से कवि (कल्पना करने वाला सर्जक) प्रयोगकर्ता (कलाकार या नट) तथा ग्रहण करनेवाले (श्रोता एवं दर्शक) सब को चारो पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) प्राप्त कराने वाला साधन भी है ।

प्रो० प्रेमलता शर्मा के निवास स्थान पर
कक्षा में व्याख्यान से
दि० २१-३-९८

संदर्भ ग्रंथ एवं पत्रिकाओं की सूची

पुस्तकों के नाम		लेखक
१. संगीतांजलि भाग-१	(प्रत्येक संस्करण)	पं० ओम्कारनाथ ठाकुर
२. संगीतांजलि भाग-२	(प्रत्येक संस्करण)	पं० ओम्कारनाथ ठाकुर
३. संगीतांजलि भाग-३	(प्रत्येक संस्करण)	पं० ओम्कारनाथ ठाकुर
४. संगीतांजलि भाग-४	(प्रत्येक संस्करण)	पं० ओम्कारनाथ ठाकुर
५. संगीतांजलि भाग-५	(प्रत्येक संस्करण)	पं० ओम्कारनाथ ठाकुर
६. संगीतांजलि भाग-६	(प्रत्येक संस्करण)	पं० ओम्कारनाथ ठाकुर
७. प्रणवभारती	(दोनों संस्करण)	पं० ओम्कारनाथ ठाकुर
८. सहसरस	संकलनकर्ता	डॉ० प्रेमलता शर्मा
९. संगीतरत्नाकर भा०१	अंग्रेजी में अनुवादकर्ता	डॉ० प्रेमलता शर्मा एवं डॉ० रवीन्द्रकुमार श्रृंगी
१०. संगीतरत्नाकर खण्ड-२	अंग्रेजी में अनुवादकर्ता	डॉ० प्रेमलता शर्मा
११. चित्रकाव्यकौतुकम्	संपादक	डॉ० प्रेमलता शर्मा
१२. सख्य संवाद	संकलन, संपादन	डॉ० प्रेमलता शर्मा
१३. संगीतशास्त्र का इतिहास		ठाकुर जयदेव सिंह
१४. रस सिद्धांत		डॉ० प्रेमलता शर्मा
१५. नाट्यशास्त्र का २८वां स्वराध्याय		डॉ० कैलाशचंद्र देव बृहस्पति
१६. भारतीय संगीत में ताल और रूप-विधान		डॉ० सुभद्रा चौधरी
१७. संगीत में अनुसंधान की समस्याएँ और क्षेत्र		संपादिका डॉ० सुभद्रा चौधरी

१८. भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शन परक अनुशीलन — डॉ० विमला मुसलगांवकर

१९. Indian aesthetics and musicology edited by — Dr. Urmila Sharma

२०. स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान — डॉ० इंद्राणी चक्रवर्ती

२१. भावरंगलहरी भाग-१ — पं० बलवंतराय भट्ट

२२. भावरंगलहरी भाग२ — पं० बलवंतराय भट्ट

२३. वाग्गेयकार पं० ओम्कारनाथ ठाकुर — प्रो० प्रदीपकुमार दीक्षित

पत्रिकाएँ

१. नादरूप भाग-१ — श्री कला संगीत भारती का०हि०वि०वि० द्वारा प्रकाशित १९६१ ।

२. नादरूप भाग-२ — श्री कला संगीत भारती का०हि०वि०वि० द्वारा प्रकाशित १९६२ ।

३. 'ध्रुवपद वार्षिकी' के दस अंक — महाराजा बनारस विद्यामंदिर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित १९८६ से १९९५

४. 'श्रुति' फरवरी ९९

५. नादार्चन (वार्षिक पत्रिका) — संपादक डॉ० आदिनाथ उपाध्याय १९९०-१९९४

६. संगीत एवं दर्शन परिचर्चा स्मारिका । मंचकला संकाय, का०हि०वि०वि० में 'संगीत एवं दर्शन' विषय पर आयोजित सेमीनार के प्रपत्र मार्च १९८६ ।

७. जर्नल आफ दि इंडियन म्यूजीकोलोजीकल सोसायटी-बड़ौदा १९९९-२००१ ।

●

डॉ0 अर्चना दीक्षित

नाम : श्रीमती अर्चना दीक्षित

जन्मस्थल : सूरत (गुजरात) जन्म तारीख 5-10-44

शिक्षा : बी0 ए0 (अर्थशास्त्र एवं इतिहास) एम0 म्यूज0 (गायन)
डाक्टरेट इन म्यूजिक (गायन)
एम0 फिल0 (संगीतशास्त्र)
संगीत प्रभाकर (सितार)
राष्ट्रभाषा 'कोविद' (हिन्दी)

उपाधि एवं पदकः

1. एम0 म्यूज0 में का0 हि0 वि0 वि0 स्वर्णपदक
2. 'सुर सिंगार', मुंबइ द्वारा 'सुरमणि'
3. गुजरात सं0 ना0 अकादमीकी प्रतियोगिता में विजेता
4. संस्कृति मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा सीनियर रीसर्च फेलोशीप

पद एवं कार्य : का0 हि0 वि0 वि0 के संगीत संकायमें बीस वर्षों से गायन का अध्यापन । देश विदेश में शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम एवं सोदाहरण व्याख्यान
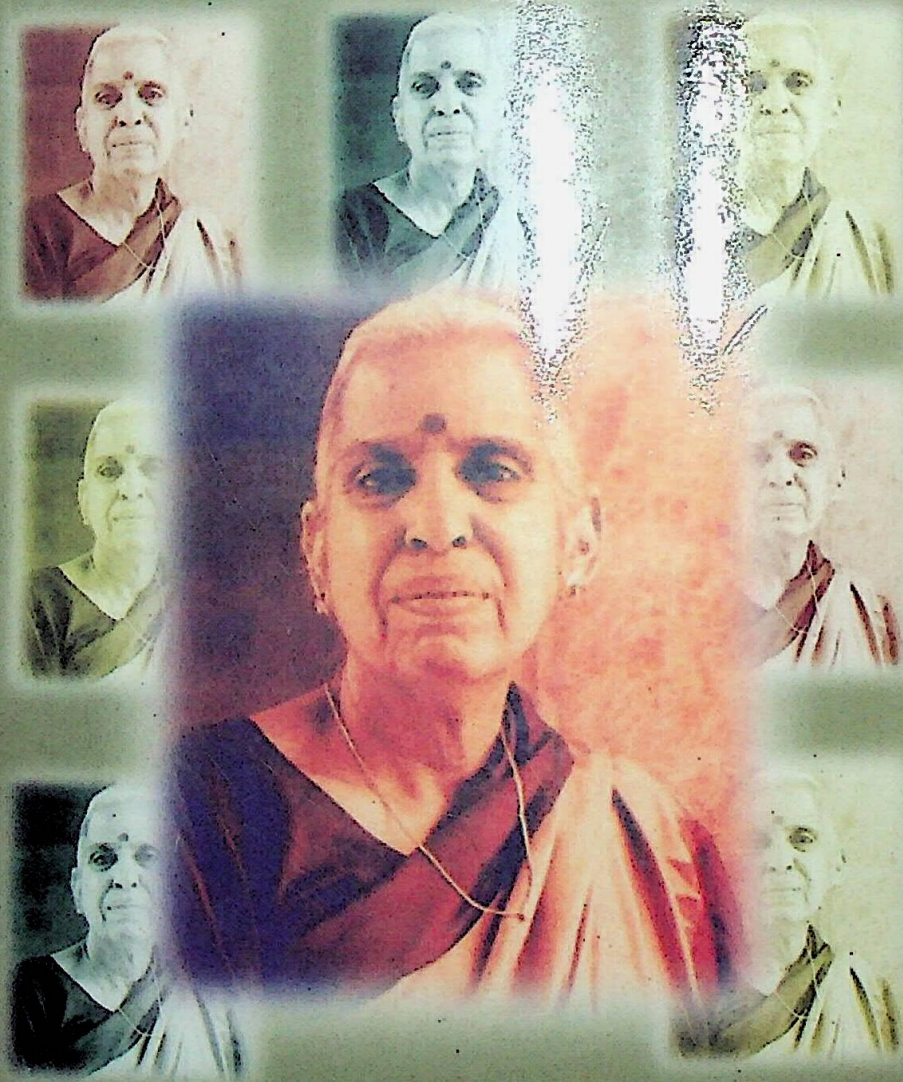
श्रेष्ठ गुरु अपने शिष्यों को सभी प्रकार के बंधनों से विमुक्त रखते हैं। शिष्य के विवेक दीप को प्रज्वलित करते हैं। शिष्यों की संख्या से अधिक उनके सत्वशील व्यक्तित्व निर्माण को ही प्रधानता देते हैं।

आवरण: हीरालाल प्रजापति